राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अपेक्षाओं के अनुरूप शिक्षक– शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक छात्राध्यापक को इस प्रकार समर्थ बनाना है कि वह–

- बच्चों का ख्याल रख सके और उनके साथ रहना पसंद करे।
- सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सके।
- व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने को अधिगम अर्थात सीखना समझे।
- सीखने के तरीके समझे, सीखने की अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के संभावित तरीके जाने तथा सीखने के प्रकार, गति तथा तरीकों के आधार पर विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को समझे।
- ज्ञान को, चिंतनशील सीखने की सतत् उभरती प्रक्रिया माने।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के वाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखे।
- उन सामाजिक, पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भो के प्रति संवेदनशील हो जिनमें उसे काम करना है।
- ग्रहणशील हो और लगातार सीखता रहे, समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सके।
- वास्तविक परिस्थितियों में न केवल समझदारी वाले रवैये को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास करे बल्कि इस तरह की परिस्थितियों का निर्माण करने के भी योग्य बने।
- उसके भाषायी ज्ञान और दक्षता का आधार ठोस हो।
- व्यक्तिगत अपेक्षाओं, आत्मबोध, क्षमताओं, अभिरूचियों आदि की पहचान कर सके।
- अपना पेशेवर उन्मुखीकरण करने के लिए सोच समझ कर प्रयास करता रहे। यह विशेष परिस्थितियाँ अध्यापक के रूप में उसकी भूमिका तय करने में मदद करेंगी।

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व-अधिगम सामग्री

कला व कला शिक्षण

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष -2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,छत्तीसगढ़, रायपुर

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व–अधिगम सामग्री

कला एवं कला शिक्षण

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष–2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,
छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष – 2013
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् रायपुर छत्तीसगढ़

राज्य कार्यक्रम प्रभारी
अनिल राय (भा.व.से)
संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

राज्य समन्वयक
ए.लकड़ा,
संयुक्त संचालक,राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वय
आर. के. वर्मा
यू.के. चक्रवर्ती
डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

विषय संयोजक
नीलम अरोरा,
डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

तकनीकी सहयोग एवं सामग्री संकलन
छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर (छ.ग.) एवं एकलव्य भोपाल (छ.ग.)

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

''अनिवार्य एवं निःशुल्क बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009'' के निर्देशानुसार समस्त अप्रशिक्षित सेवारत प्रारंभिक शिक्षकों को 5 वर्ष की समय सीमा में प्रशिक्षिण प्राप्त किया जाना है। राज्य के समक्ष यह एक बड़ी चुनौती है,साथ ही एक बड़ा अवसर भी है उन शिक्षकों के परस्पर साथ आने का,अपने अनुभवों को साझा करने का जो पूर्व से ही स्कूलों में बच्चों के साथ कार्य कर रहे हैं। इसी अनुक्रम में राज्य में सेवारत अप्रशिक्षित प्राथमिक शिक्षकों को डी. एड. प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर डी.एड. दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उपलब्ध कराया जा रहा है।

आज निश्चित ही शिक्षक की भूमिका में काफी बदलाव आया है। इस बदलती भूमिका के लिए उनको बेहतर तरीके से तैयार करने की आवश्यकता है। दूरस्थ शिक्षा से डी.एड.प्रशिक्षण का यह कार्यक्रम इसी दिशा में एक प्रयास है, जिसे आप सबके सकारात्मक सहयोग से निश्चित ही सफलता मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस कार्यक्रम के माध्यम से आप अपने अनुभवों को एक दूसरे के साथ साझा करेंगे तथा और अधिक संवेदनशीलता के साथ स्कूल में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकेंगे, बच्चों को उनकी विशेषताओं के साथ बेहतर ढंग से समझ सकेंगे और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निर्धारित कर सकेंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है कि ''वे सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में,उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएँ।''

राज्य में कुछ वर्षों पूर्व से ही डी.एड. का नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री तैयार कर सेवा पूर्व डी.एड. प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु लागू कर दिया गया है। डी.एड. पाठ्यसामग्री को स्व–अधिगम सामग्री में परिणित कर इसे सेवारत शिक्षकों के अनुरूप तैयार किया गया है।

प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में इन छः विषयों को सम्मिलित किया गया है–

1. ज्ञान शिक्षाक्रम व शिक्षण शास्त्र।
2. बाल विकास और सीखना।
3. शाला व समुदाय।
4. कला व कला शिक्षण।
5. गणित व गणित शिक्षण।
6. भाषा व भाषा शिक्षण।

इस पाठ्यसामग्री का फोकस विषयवार समझ विकसित करने की अपेक्षा एक एकीकृत समझ विकसित करने में है, किसी विशेषीकृत शिक्षण विधि से हटकर एक समग्र शिक्षण विधि जो बच्चों को सीखने में मदद करें।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से लेकर अनुदित की गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई.आर.टी. सहित जिन भी लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके ह्रदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई.टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर.टी. और डाइट के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

स्व–अधिगम पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने तथा पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक–प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

कोई भी पाठ्यक्रम सम्पूर्ण नहीं होता इसमें सुधार की असीम सम्भावनाएं होती है तथा निंरतर परिवर्तन जीवित होने का एक प्रमाण भी है। अतः आपसे अनुरोध है कि सम्पूर्ण पाठ्य–सामग्रियों को पढ़कर अपने सुझाव हमें अवश्य भेजे ताकि पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार कर इसे जीवित रखा जा सके।

धन्यवाद।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
इकाई – 1	**कला क्या है, कला शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?**	
	1. कला क्या है ?	**1–5**
	2. शिक्षा में कला का स्थान – नंदलाल बसु	**6–11**
	3. कला शिक्षण क्यों? – देवी प्रसाद	**12–27**
	4. सृजनात्मक क्षमता की हत्या–गिजुभाई	**28–36**
	5. बच्चों की नज़र से – देवी प्रसाद	**37–42**
इकाई– 2	**गीत गाना,चित्र बनाना, अभिनय करना**	
	रंग–बिरंगा रंगमंच	**43–54**
इकाई– 3	**कबाड़ से कला कृति**	
	1. खिलते अक्षर खिलते अंक, विष्णु चिंचालकर	**55–69**
	2. मेरी अपनी दुनिया	**70–74**
	3. ओरीगेमी– एक आधार अनेक आकार, रविन्द्र केसकर	**75–91**
इकाई– 4	**बच्चों में चित्रकला का विकास**	
	1. बच्चों के चित्रों के विकास क्रम, देवी प्रसाद	**92–104**
	2. शिक्षा पद्धति, देवी प्रसाद	**105–120**
	3. कला–परिचय, देवी प्रसाद	**121–124**
इकाई– 5	**नाटक व कठपुतली**	
	प्राथमिक कक्षाओं में नाटक का उपयोग, सारा फिलिप्स	**125–150**
इकाई– 6	**भारतीय चित्रकला की कहानी**	
	भारतीय चित्रकला की कहानी	**151–173**
इकाई– 7	**रिपोर्ट तैयार करना**	
	स्थानीय वास्तुशिल्प, चित्रकला, लोकगीत ,नाटक, प्राकृतिक सौन्दर्य से परिचय	**174–175**

कला शिक्षण के उद्देश्य

1. छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका को कला शिक्षण के कुछ बुनियादी सिद्धांतों से परिचय कराना ताकि वह अपने छात्र–छात्राओं में कलात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे सके।

2. छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका की अपनी कलात्मक प्रवृत्तियों को उभारना ताकि कला के विभिन्न विधाओं के प्रति उनकी झिझक टूटे। चित्रकला, नाटक, मूर्तिकला एवं संगीतकला– इनमें से किसी एक विधा में विशेष हुनर हासिल करे।

3. छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका को भारत व विश्व के कलात्मक धरोहरों से प्रारंभिक परिचय कराना ताकि वह उत्कृष्ट कलाकृतियों का रसास्वादन कर सके।

4. छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका को अपने ही परिवेश के सांस्कृतिक व सौन्दर्य के धरोहरों को पहचानने व रसास्वादन में मदद करना।

5. छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका की सृजनशीलता को नये आयाम देना – ताकि कबाड़ से सुन्दर चीजें बनाना, कक्षा या शाला को सौन्दर्यबोध के साथ सजाना आदि की ओर प्रेरित हों।

इकाई –1

1. कला क्या है, कला शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?

पठन सामग्री 1

कला क्या है ?

प्रस्तावना

कला क्या है, और यह मनुष्यों के अन्य क्रियाकलापों से कैसे अलग है या दोनों क्या संबंध है– इन बातों पर कोई निर्णायक टिप्पणी नहीं की जा सकती है। इनकी कई बारीकियां हैं, इन पर विद्वानों के अलग अलग मत व विचार हैं। हर व्यक्ति को इन पर अपना ही मत बनाना पड़ता है। इस संक्षिप्त लेख में हमने कला के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया है ताकि आप इन पहलुओं पर खुद विचार करके अपना मत बना पायें।

पठन सामग्री की रूपरेखा

- कला मानव निर्मित है
- कला में सृजनात्मक अभिव्यक्ति होती है
- कला और सौन्दर्य
- कला और इन्द्रियां
- कला व दैनिक जीवन
- लोक कला व शास्त्रीय कला
- कला और शिल्प

ज्यादातर कलाकार यह मानेंगे कि कला को परिभाषित करना उचित नहीं है। कला को परिभाषित करने का मतलब उसे सीमित करना होगा जो किसी कलाकार को स्वीकार्य नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक इंसान कला की कुछ तो समझ रखता ही है और अपने जीवन में आजमाता है। इस कारण कला का तात्पर्य हर समाज, हर इंसान तथा समय के लिए अलग होगा।

फिर भी कला किन बातों से संबंध रखती है, इसका हम कुछ खुलासा कर सकते हैं ताकि आपको इसके बारे में सोचने व अपनी समझ को विकसित करने में मदद मिलेगी।

1. सबसे पहले तो निस्संदेह हम कह सकते हैं कि कला मनुष्य व मानव समाज द्वारा निर्मित है और प्राकृतिक नहीं है। प्रकृति में हम सुन्दरता देख सकते हैं या प्रकृति से कलात्मक प्रेरणा ले सकते हैं लेकिन कला का निर्माण मनुष्य अपने श्रम व कल्पना से करता है। कई लोग मानते हैं कि प्रकृति या सृष्टिकर्ता खुद एक महान कलाकार है, मगर ऐसा मानना उस पर मनुष्यत्व आरोपित करना होगा।

2. कला का संबंध सृजनात्मकता व सृजनात्मक अभिव्यक्ति से है। मनुष्य की एक खास पहचान है कि उसे जिस प्रकार की दुनिया मिली है वह उसे रास नहीं आती है और वह एक बदली दुनिया की कल्पना करते है और उसे साकार करने के लिए प्रयास करता रहता है। अगर आपको किसी चीज में कल्पना या सृजनशीलता की कमी लगती है तो आप उसे कम कलात्मक मानेंगे। यूं तो हमारी हर क्रिया या उत्पाद हमारी अभिव्यक्ति होती है, मगर कला के माध्यम से हम अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। यूं कह सकते हैं कि कला स्वांतः सुखाय नहीं होती है। लेकिन इस विचार को लेकर मतभेद हो सकता है क्योंकि कई परंपराओं में कला को व्यक्ति व परतत्व को जोड़ने वाला माध्यम माना गया है जिसमें दूसरे मनुष्य के लिए कोई भूमिका नहीं है।

2. कला का संबंध कहीं न कहीं सुन्दरता व सौन्दर्यबोध से है। शायद हर मनुष्य किसी न किसी रूप में सौन्दर्य की खोज में रहता है और उसे अपने कृतियों में उतारना चाहता है। लेकिन यहां एक पेंच है। मानव समाज अक्सर सुन्दरता का मापदण्ड निर्मित कर देता है, और उसकी मदद से सौन्दर्य को आंकने का प्रयास करता है। लेकिन मनुष्य इस माप या परिभाषा से बंधना पसंद नहीं करता है, और सतत् सौन्दर्य के नए आयामों को खोजता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी बात को जिसे आज समाज कुरुप या भद्दा मानता है, वह एक नए सौन्दर्यशास्त्र का आधार बन जाता है।

प्रश्न 1.

क्या हर कलाकृति को सुन्दर होना चाहिए। इस पर अपना विचार उदाहरण सहित दीजिये।

सृजनात्मक अभिव्यक्ति क्या है?

कांकेर जिले के शा.मा.शाला ठेमा की बात है। शिक्षिका ने कक्षा 8वीं के सभी बच्चों से कहा, आप सभी अपनी मर्जी से चित्र बनाओ। सभी छात्रों ने अलग अलग चित्र बनाये जैसे किसी ने दो पहाड़ों के बीच उगते हुए सूरज, नदी का तो किसी ने गुलाब के फूल का, किसी और ने उड़ती हुई चिड़िया का आदि। शिक्षिका ने नीरज को चित्र बनाते हुए देखा कि वह किसी महिला का चित्र बना रहा है। उन्होंने तुरन्त ही नीरज से पूछा किसका चित्र है नीरज? उसका जवाब था मेरी मां का। शिक्षिका ने दुबारा सवाल किया चित्र में तुम कान बनाना भूल गये। नीरज का जवाब था मैंने अपनी मां का कान बनाया ही नहीं। शिक्षिका ने फिर पूछा, क्यों? नीरज का जवाब था कि मेरी मां मेरी बात सुनती ही नहीं, इसलिए मैंने उनका कान नहीं बनाया। नीरज ने बिना कुछ बोले चित्र के माध्यम से अपनी मन की बात अभिव्यक्त की। इसके अतिरिक्त कला के कई और माध्यम होते है अपनी अभिव्यक्ति के।

3. कला ऐंद्रिक होती है यानी हम अपने इन्द्रियों से कलात्मक चीजों निर्माण करते हैं और अपने इन्द्रियों से इन्हें देख, सुन, छू, सूंघ, चख भी सकते हैं। यानी कला केवल कल्पना या सोचने की चीज़ नहीं है। वह ठोस निर्माण भी है। रंग, आकार, आवाज़, स्वाद, गंध कला के माध्यम से इनके नए–नए आयामों को हम खोलते रहते हैं। इससे हमारी इंद्रियां और परिष्कृत व बारीक बातों के प्रति संवेदनशील होती जाती हैं, हम हर पल नए रंग, नई आकृति आदि को देखने लगते हैं।

प्रश्न 2.

यदि किसी व्यक्ति की दोनों आखें नहीं है तो उसमें कला बोध होगा या नहीं उदाहरण सहित अपने विचार लिखें?

5. कला को मनुष्य जीवन के बाकी अंगों से अलग नहीं किया जा सकता है। उसके उत्पादन कार्य से, उसकी जीवन यापन क्रियाओं से, उसकी अपनी आत्म छवि से सामाजिक संघर्षों व विडंबनाओं से– कला इन सब को प्रभावित करती है प्रतिबिंबित करती है और उनसे प्रभावित होती है। लेकिन इन सबके बीच कोई यांत्रिक प्रभाव का रिश्ता नहीं है– यह रिश्ता बहुत जटिल व द्वंदात्मक है।

6. ''कलाकार कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं होता है मगर हर व्यक्ति एक विशिष्ट कलाकार होता है''। – यह महान कला चिंतक आनन्द कुमारस्वामी का कथन है, इस कथन पर गौर करें।

7. जीवनशैली में कलात्मकता – हम सब अपने दैनिक जीवन को किसी न किसी रूप में कलात्मक बनाने का प्रयास करते हैं। हमारे मन में व आचरण में एक खास सौन्दर्यबोध व कलाबोध निहित होता है। आमतौर पर यह परिष्कृत या सचेत नहीं होता। हम अपने घरों को कैसे सजाते हैं, लिपाई पुताई कैसे करते हैं, किस तरह के कपड़े पहनते हैं, बिस्तर, पलंग कैसे रखते हैं, कैसे बर्तन इस्तेमाल करते हैं, उन्हें किस तरह से जमाते हैं, चूल्हा चौका कैसे रखते हैं, पूजा आराधना के जगह को कैसे रखते हैं, इन सब में गहरी कलादृष्टि समाई रहती है। लेकिन हम इनके बारे में सचेत नहीं होते हैं, हम उनके बारे में सोचते नहीं हैं और उनके नष्ट होने

का अहसास भी नहीं करते हैं। आधुनिक जीवन में हमारे ऊपर लगातार नए कलात्मक प्रभाव पड़ते रहते हैं– अगर हम कलात्मकता के बारे में सचेत होकर चुनाव नहीं करते हैं तो हम बेतरतीब कला खिचिड़ियों का शिकार हो सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि हम विभिन्न जीवनशैलियों, परंपराओं में कलाबोध के बारे में और खासकर हमारी अपनी सांस्कृतिक परंपरा के सौन्दर्यबोध के बारे में सचेत होकर समझें। जो भी चुनाव करें उसे सोच समझकर करें।

प्रश्न 3.

अपने घर में उपयोग में लिये जाने वाले बर्तनों में या माल ले जाने वाले ट्रकों में किस तरह का कलाबोध दिखता है, इसकी उदाहरण सहित चर्चा करें।

8. लोक कला व व्यावसायिक कला –लोककला की खासियत यह है कि यह लोक जीवन का अभिन्न अंग होती है। लेकिन काफी रुढ़ परंपराओं से बंधी होती है। उस संस्कृति का हर व्यक्ति उसका अनायास साधक होता है। लोक गीत हर कोई गाता है, रंगोली या मांडना हर कोई कर लेता है, लोक नृत्य हर कोई नाचता है। हां यह जरूर है कि अक्सर कुछ विशिष्ट लोक कलाकार होते हैं, जो आम लोगों की कलात्मक जरूरतों को पूरा करते हैं, जैसे कोई पंडवानी गायक होगा या फिर कोई कुम्हार या सोनार या ठठेरा होता है। कई लोग मानते हैं कि लोक कला ही सभी व्यावसायिक व उच्च कला की अंतिम प्रेरणा का स्त्रोत हैं, और इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक पं. कुमार गंधर्व पर मालवी लोक गायन का गहरा प्रभाव था। या फिर उस्ताद बिस्मिल्ला खान के शहनाई वादन में पूर्वी लोक धुनों की अमिट छाप थी। तीजनबाई के पंडवानी गायन में छत्तीसगढ़ी संस्कृति की छाप दिखती है।

भारतीय कला परंपराओं में इस विभेद को देशी व मार्गी परंपरा के रूप में देखा गया है। देशी मतलब लोक कला व मार्गी मतलब शास्त्रीय व्यावसायिक कला।

मार्गी कला व देशी कला में शायद हम कई तरह के अंतर कर सकते हैं, (जैसे मार्गी कला का शास्त्र होता है, वह व्यावसायिक होती है, अधिक सृजनशील होती है, रुढ़िबद्ध नहीं होती है, उसका क्षेत्र विस्तार बड़ा होता है आदि। मगर उनमें से कई को तर्क के आधार पर सही ठहरा नहीं सकते हैं।

प्रश्न 4.

सुआ नृत्य को आप मार्गी कला व देशी कला में से किसके अन्तर्गत रखेंगे व क्यों, अपने विचार लिखें।

9. कला और शिल्प या कारीगरी : हर उत्पादक कार्य करने वाला कुछ कलाबोध रखता है और उसे अपने उत्पादन में अभिव्यक्त करता है। इस कारण बहुत सी परंपराओं में कला व शिल्प में विभेद नहीं किया जाता है। संस्कृत में मूर्तिकार या चित्रकार को शिल्पिन कहा जाता है। कुछ इस तरह की बात ग्रीक या लैटिन में भी हैं लेकिन आधुनिक पश्चिमी विचारधाराओं में सृजनात्मक ललित कला व शिल्प को अलग किया जाता है। कारीगर बार–बार एक ही तरह की चीज़ को बनाता है– जैसे कि एक कुम्हार या प्लास्टर आफ पैरिस से मूर्तियां बनाने वाले लोग। ऐसे में वह चीज़ तो कलात्मक होती है मगर वह कलाकार नहीं होता है। जैसे कि किसी महान चित्रकार के चित्रों की नकल बनाने वाले। यह माना गया है कि ऐसे कामों में सृजनात्मकता की कमी है। लेकिन इस बात को लेकर मतभेद जरूर है।

आधुनिक पाश्चात्य कला में सृजनशीलता व व्यक्तिवाद पर काफी ज़ोर दिया गया है। जिस काम में किसी खास व्यक्ति की सोच या खास व्यक्तित्व नहीं झलकता है व जो सृजनशीलता व नयापन का प्रमाण नहीं देता

है, भले ही वह सुन्दर व कलात्मक हो, उसे कलाकृति कहने से यह परंपरा कतराती है। इस विचार को किस हद तक आप स्वीकार करना चाहते हैं यह आप पर है। लेकिन हमें यह याद रखना होगा कि 1500 ईस्वी से पहले हम केवल इक्के–दुक्के कलाकारों के ही नाम जानते हैं। यानी कई कला परंपराएं हैं जो व्यक्तिवाद को कला का अभिन्न अंग नहीं मानती हैं।

प्रश्न

सोनू चित्रों को देखकर हुबहू चित्र बनाता है जबकि मोनू अपनी सोच के आधार पर चित्रों को बनाता है। इस उदाहरण को, कला के सम्बन्ध जिन बातों से होता है उस के आधार पर समझाइए।

गतिविधि

आप अपने हाथ में एक पेंसिल लीजिए, कोरे कागज या स्केच बुक उठाइये, अपने चारों ओर दृष्टि डालिए .....और अब आपको एक ऐसी वस्तु का चयन करना है जिसका चित्र बनाना सरल हो, पर वह सुन्दर न हो। इस वस्तु का अपने आस–पास से चयन कीजिए और उसका चित्र कोरे कागज पर बनाइये।

अब फिर दूसरा कागज या स्केच बुक का दूसरा पन्ना हाथ में लिजिए, फिर अपने चारों ओर नजर दौड़ाइए, चारों ओर के दृश्यों एवं सौंदर्य को ध्यान से देखिए। इनमें जो कुछ भी आपको सबसे सुंदर दिखे उसका चित्र कोरे कागज पर बनाइये। जैसा भी बने, बस बनाइये। आपके बनाये दोनों चित्र आपको कैसे लग रहे हैं और यह चित्र बनाने के बाद आपको कैसी अनुभूति हो रही है ? उसे अपनी नोट बुक में लिखिए और यह भी लिखिए कि चित्र बनाने के पूर्व और चित्र बनाने की अवधि में आपको कैसा लग रहा था। आपका ध्यान किस बात पर केन्द्रित था।

1. कला क्या है, कला शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?

पठन सामग्री 2

शिक्षा में कला का स्थान

नन्दलाल बसु

लेखक परिचय

नन्दलाल बसु हमारे देश के महान कलाकारों में से थे जो रवीन्द्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन में पढ़ाते थे। आज भी उनके चित्र शांतिनिकेतन और दिल्ली के राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। वे टैगोर व गांधीजी से बहुत प्रेरित हुए थे और राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी कला के साथ शामिल हो गये थे। इस लेख में वे कला शिक्षण की जरूरत पर जोर दे रहे हैं और कला विषय में रुचि जागृत करने के कुछ तरीके सुझाये हैं। उनके शिष्य देवी प्रसाद बाद में गांधीजी के सेवाग्राम में स्थापित बुनियादी शाला में कला पढ़ाते थे। (यह लेख अनौपचारिका पत्रिका के दिसम्बर 2008 अंक से लिया गया है।)

पठन सामग्री की रूपरेखा

- जीवन में कला का महत्व और शिक्षा में उसका स्थान
- क्या कला केवल धनी लोगों के लिए है?
- कला से पेट भरेगा क्या?
- कला शिक्षण की जरूरत और प्राथमिक उद्देश्य
- विद्यालयों में कला शिक्षण के लिए क्या करें?

प्रस्तावना

हमारे जीवन में ललित कलाओं का एक विशेष स्थान है जो उतना ही महत्वपूर्ण है जितना विज्ञान, साहित्य आदि हैं। कला शिक्षण के माध्यम से हम जनसामान्य में अपने ही समाज में निहित कलाबोध को आधार बनाकर सौन्दर्यबोध को विकसित कर सकते हैं। कला केवल भोग–विलास की चीज़ नहीं है, बल्कि वह शिल्प का आधार है जिससे हम स्वावलंबी बनकर अपनी जीविका कमा सकते हैं। स्कूली शिक्षा तथा विश्वविद्यालयीन शिक्षा का दायित्व है कि वे कला शिक्षण पर विशेष ध्यान दें। इस लेख में कलागुरू नन्दलाल बसु इन्हीं मुद्दों पर चर्चा करते हैं।

1. जीवन में कला का महत्व व शिक्षा में उसका स्थान

मनुष्य ने आनन्द की प्राप्ति और ज्ञान के लिए जितने उपायों का विकास किया है, उनमें भाषा का विशेष स्थान है। साहित्य, दर्शन, विज्ञान और प्रकृति के नाना विषयों की चर्चा भाषा को माध्यम बनाकर ही की जाती है। साहित्य मनुष्य को आनन्द देता है, पर उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित होता है! उसके उस अभाव की पूर्ति करती हैं ललित कलाएं– नृत्य, संगीत एवं दूसरी कलाएं। जैसे साहित्य की अभिव्यक्ति की अपनी विशिष्टता

है, वैसे ही नृत्य, संगीत एवं ललित कलाओं की भी। मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा बाह्यजगत की समस्त वस्तुओं का स्थूल ज्ञान एवं उनके प्रति रसानुभूति का अनुभव करता है और उसे ही कला के माध्यम से दूसरों के सामने प्रस्तुत करता है! शिक्षा के क्षेत्र में कला की चर्चा के कारण मनुष्य की अवधारणा एवं रसानुभूति दोनों उत्कर्ष को प्राप्त करती हैं और उसे कलात्मक अभिव्यक्ति पर अधिकार प्राप्त होता है। जिस प्रकार आंख का काम कान द्वारा नहीं हो सकता, उसी प्रकार चित्रकला, संगीत या नृत्य की शिक्षा केवल लिखने–पढ़ने से नहीं हो सकती।

यदि हमारी शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगींण विकास हो तो हमारे पाठ्यक्रम में कला का स्थान अन्यान्य पढ़ाई–लिखाई के विषयों के समान होना चाहिए। हमारे देश में विश्वविद्यालयों की ओर से अब तक जो व्यवस्था की गई है, वह नितान्त अपर्याप्त है। इसका एक कारण सम्भवतः यह है कि हमारे यहां अनेक लोगों की मान्यता है कि कला–साधना मात्र पेशेवर कलाकारों का काम है, साधारण आदमी को उससे कुछ लेना–देना नहीं है। बहुत से पढ़े–लिखे लोग तक कला के सम्बन्ध में अपने अज्ञान के कारण संकोच का अनुभव नहीं करते, जन साधारण की तो बात ही छोड़िए। वे तो फोटो और चित्र का अन्तर भी नहीं समझ पाते। वे बच्चों की जापानी गुड़िया को एक श्रेष्ठ कलाकृति मानकर उसे अवाक् देखते रहते हैं। महारद्दी लाल–नीले, बैंगनी रंगवाले रैपरों को देखकर उनके नेत्रों को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती। सच पूछिए तो उन्हें अच्छा ही लगता है। अधिक उपयोगिता की दुहाई देते हुए आसानी से उपलब्ध मिट्टी की कलसी के बदले टिन का कनस्तर इस्तेमाल करते हैं। उपर से देखने से विद्या के क्षेत्र में देशवासियों की जैसी सांस्कृतिक उन्नति परिलक्षित होती है, रसानुभूति के क्षेत्र में उनकी दीनता वैसी ही बढ़ती दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः यह स्थिति कष्टदायक हो उठी है। इससे मुक्त होने का एक ही उपाय है– आज के शिक्षित समाज के बीच कला की शिक्षा का प्रचलन, क्योंकि यह शिक्षित समाज ही जन साधारण का आदर्श होता है।

सौन्दर्य बोध के अभाव में मनुष्य केवल रसानुभूति से वंचित रह जाता हो ऐसा नहीं, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उसकी क्षति होती है। सौन्दर्यबोध के अभाव में जो लोग घर के आंगन और कमरों में दुनिया भर का कूड़ा जमा करके रखते हैं, अपने शरीर एवं वस्त्रों की गंदगी साफ नहीं करते, घर की दीवाल पर, रास्ते में, रेल के डिब्बों में पान की पीक थूकते चलते हैं, वे केवल अपने स्वास्थ्य को ही नहीं वरन् पूरे राष्ट्र के स्वास्थ्य को क्षति पहुंचाते हैं। जिस प्रकार उनके द्वारा समाज के शरीर में नाना रोगों के कीटाणु संक्रमित होते हैं, उसी प्रकार उनके कुत्सित आचरण का कु–आदर्श भी जन साधारण में फैल जाता है।

2. क्या कला केवल धनी लोगों के लिए है?

हममें से कुछ लोग ऐसे हैं जो कला–साधना पर विलासी एवं धनी लोगों का एकमात्र अधिकार मानते हैं और इस प्रकार उसे अपने दैनन्दिन जीवन से कोसों दूर रखना चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि सौन्दर्य ही कला का प्राण है, अर्थ की तुला पर कलाकृति को नहीं तोला जा सकता। गरीब संथाल अपनी छोटी–सी मिट्टी की झोपड़ी को लीप–पोतकर साफ करके रखता है, अपनी कथरी–गुदड़ी समेटकर रखता है और कॉलेज में पढ़ने वाला एक लड़का महल जैसे सुन्दर हॉस्टल या मेस के कमरे में महंगे कपड़े–लत्ते यों ही बिखेरकर मोड़–मुसड़कर रखता है। स्पष्ट है कि गरीब संथाल का सौन्दर्य–बोध उसके जीवन का अंग है, सजीव है, और धनी लड़के का सौन्दर्यबोध कपड़ों तक सीमित है, निर्जीव है। पढ़े–लिखे लोगों को कला–साधना के नाम पर कैलेण्डर में छपे मेमसाहब के चित्र को फ्रेम में मढ़वाकर एक सचमुच के अच्छे चित्र के बगल में टांगकर रखते हुए मैंने स्वयं देखा है। छात्रों में देखता हूं, चित्र के फ्रेम पर कपड़ा झूल रहा है, पढ़ने के टेबल पर चाय का कप, शीशा, कंघी आदि पड़े हैं और कोको के टिन में कागज का फूल लगा है। साज–सज्जा में धोती पर खुले गले का कोट, साड़ी के साथ उंची एड़ीवाला मेमसाहबी जूता–हर कहीं संगति और सौन्दर्य का अभाव दिखलाई पड़ता है। हमारे पास पैसे का अभाव हो या न हो, सौन्दर्यबोध का अभाव अवश्य है।

3. कला से पेट भरेगा क्या?

कुछ और लोग भी हैं जो कहते हैं – कला से पेट भरेगा क्या? यहां एक बात ध्यान में रखनी होगी। जिस प्रकार साहित्य के दो पक्ष हैं– एक आनन्द और ज्ञान का पक्ष तथा दूसरा आर्थिक पक्ष, उसी प्रकार कला के भी दो पक्ष हैं– एक जो आनन्द देता है और दूसरा जो अर्थ देता है। इनको ललितकला और शिल्प कहा जाता है। ललितकला दैनन्दिन दुख–द्वन्द्व से संकुचित हमारे मन को मुक्ति प्रदान करती है। शिल्प हमारे दैनन्दिन उपयोग में आने वाली वस्तुओं को केवल अपने जादुई स्पर्श से सुन्दर बनाकर हमारी यात्रा को सुखमय ही नहीं बनाता वरन् अर्थोपार्जन का आधार बनाता है। शिल्प की अवनति के फलस्वरूप देश की आर्थिक अवनति भी हुई है। अतः आवश्यकतानुसार कला तथा शिल्प का उपयोग न करने से देश की बहुत आर्थिक क्षति भी होती है।

4. कला शिक्षण की जरूरत और प्राथमिक उद्देश्य

कला शिक्षण के अभाव में न केवल हमारी वर्तमान जीवन–यात्रा असुन्दर हो गई है वरन् हमारे अतीत के रस–सृष्टि द्वारा निर्मित रचनाओं की सौन्दर्य–निधि से भी हम वंचित हुए जा रहे हैं। हम लोगों की परखने की दृष्टि तैयार नहीं हो सकी फलस्वरूप देश में चारों ओर बिखरी चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापना के सौन्दर्य को समझाने के लिए बाहर से विदेशियों के आने की आवश्यकता पड़ी। आधुनिक कलाकृतियों का भी जब तक विदेशी बाजारों में मूल्यांकन नहीं हो जाता तब तक हमारे यहाँ उनका आदर नहीं होता यह हमारे लिए लज्जा की बात है।

इनके निराकरण के लिए क्या किया जाए, इस पर विचार किया जाए। **कला शिक्षा की पहली मांग है कि प्रकृति को एवं अच्छी कलात्मक वस्तुओं को श्रद्धा सहित देखा जाए, उनके निकट रहा जाए और जिन व्यक्तियों का सौन्दर्य बोध जाग्रत है उनसे उस सम्बन्ध में चर्चा करके कलाकृति के सौन्दर्य को समझा जाए।** विश्वविद्यालयों का यह कर्तव्य है कि अन्य विषयों के साथ–साथ वे कला विषय को भी पाठ्यक्रम में रखें, परीक्षा की दृष्टि से कला को अनिवार्य विषय मानें और विद्यार्थी प्रकृति के निकट सम्पर्क में आ सकें, इसकी व्यवस्था करें। अंकन–पद्धति की शिक्षा से विद्यार्थियों की अवलोकन शक्ति का विकास होगा और इससे साहित्य, दर्शन, विज्ञान प्रभृति विषयों के क्षेत्र में भी उन्हें सत्य दृष्टि प्राप्त होगी। विश्वविद्यालयों की परीक्षा पास करने से ही कोई बड़ा कवि नहीं बन जाता। उसी तरह विश्वविद्यालय में कला की शिक्षा प्राप्त करके ही हर लड़का अच्छा कलाकार नहीं बन सकेगा। ऐसी आशा करना भूल होगी।

5. विद्यालयों में कला शिक्षण के लिए क्या करें?

सबसे पहले विद्यालय में, लाइब्रेरी में, पढ़ने के कमरे तथा रहने के कमरे में कुछ अच्छे चित्र एवं मूर्तियाँ तथा अन्यन्य ललित कला एवं दस्तकारी वाली कृतियां सजाकर रखनी होंगी। उनके अभाव में इनके अच्छे फोटो या नकल रखी जा सकती है। दूसरी बात, उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा ऐसी अनेक पुस्तकें लिखवानी होंगी जिनमें अच्छी कलाकृतियों के चित्र हों, उनका इतिहास हो और जो लड़कों को सहज ही समझ में आएं। तीसरी बात, बीच–बीच में फिल्मों के माध्यम से स्वदेश एवं विदेश की चुनी हुई अच्छी कलाकृतियों से विद्यार्थियों का साक्षात्कार कराना होगा।

चौथी बात, बीच–बीच में योग्य शिक्षकों के साथ पास के अजायब या आर्ट गैलरी में विद्यार्थियों को भेजना होगा ताकि वे श्रेष्ठ कृतियाँ देख सकें। स्कूलों में यदि फुटबाल मैच देखने के लिए भेजने का इंतजाम किया जा सकता है तो आर्ट गैलरा देखने के लिए क्यों नहीं? एक बात ध्यान में रखिए कि एक अच्छी कलाकृति को अपनी आंखों से देखकर एवं समझकर जितनी कला की परख

विकसित होती है उतनी एक सौ भाषण सुनकर भी नहीं होती। अच्छे चित्र या अच्छी मूर्तियां यदि बचपन से बच्चे देखते रहें तो कुछ समझ में आए या न आए, उनकी दृष्टि तैयार होगी। बाद में उनमें अपने आप अच्छी–बुरी कलाकृति का विवेचन करने की शक्ति पैदा होगी और उनका सौन्दर्यबोध विकसित होगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ नन्दलाल बसु

पांचवी बात, प्रकृति के निकट सम्पर्क में बच्चे आएँ, इस उद्देश्य से हर ऋतु में विशेष उत्सवों का आयोजन करना होगा। इन आयोजनों में इस ऋतु–विशेष में पैदा होने वाले फल–फूलों का संग्रह करना और काव्य तथा कला के क्षेत्र में उस ऋतु से संबंधित जो भी श्रेष्ठ रचनाएं उपलब्ध हैं, उनसे जहां तक सम्भव हो, विद्यार्थियों को परिचित कराना उचित होगा।

छठी बात, प्रकृति में जो ऋतु उत्सव चल रहा है, उससे विद्यार्थियों को परिचित कराना। शरद ऋतु में धान के खेत और कमल से भरे तालाब (अर्थात् कमल–वन) तथा वसन्त–ऋतु में पलाश और सेमल की बहार वे स्वयं अपनी आंखों से देख सकें, इसकी व्यवस्था करनी होगी। विशेषकर शहर में रहने वाले विद्यार्थियों के लिए यह व्यवस्था बहुत जरूरी है। गांव के विद्यार्थियों की दृष्टि इस ओर आकर्षित करवाना पर्याप्त होगा। इन सब ऋतु उत्सवों के लिए विशेष रूप से छुट्टी दे कर वनभोज की व्यवस्था करनी चाहिए। और ऋतु के उपयुक्त वेशभूषा एवं खेलकूद आदि का आयोजन करना चाहिए। प्रकृति के साथ एक बार सम्पर्क स्थापित हो जाने पर, प्रकृति से वास्तव में प्रेम हो जाने पर, विद्यार्थी के मन में रस का स्त्रोत कभी सूखेगा नहीं, क्योंकि प्रकृति युग–युगान्तर से कलाकार के लिए कला का आधार उपस्थित करती रही है।

अन्तिम बात यह है कि साल में किसी एक समय विद्यालय में एक कला महोत्सव करना होगा। उसमें हर विद्यार्थी कोई न कोई चीज अपने हाथ से बनाकर श्रद्धा सहित लाकर रखेगा–भले ही वह कितनी भी सामान्य हो। विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई वस्तुएँ उत्सव के प्रति अर्ध्य स्वरूप होंगी, उन्हें उसी रूप में ग्रहण करना होगा। संगीत, नृत्य, जुलूस (शोभायात्रा) आदि के द्वारा उत्सव को सर्वांग सुन्दर बनाने की चेष्टा करनी होगी। उत्सव के लिए कोई निश्चित समय तय करना कठिन है, देश–भेद के अनुसार वह भिन्न–भिन्न होगा। बंगाल के लिए शरत् ऋतु ही सबसे उपयुक्त लगती है।

जहाँ तक हमें पता है, हमारे देश में एकमात्र रवीन्द्रनाथ ने शिक्षा के क्षेत्र में कला–साधना को उपयुक्त स्थान दिया था। विश्वविद्यालयों में प्रचलित वर्तमान शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप उन्हें भी कदम–कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ा था। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में कला का प्रशिक्षण सम्मिलित न होने के कारण अभिभावकगण इसे सर्वथा अप्रयोजनीय मानते हैं। फलस्वरूप जिन बच्चों में बचपन में नाना कलाओं के प्रति अनुराग दिखाई पड़ता है, वे भी प्रवेशिका परीक्षा के साल दो साल पहले से कला की अप्रयोजनीयता के प्रति सजग हो उठते हैं और उनका कला प्रेम इस समय से कम होते–होते अंत में एकदम समाप्त हो जाता है। समय आ गया है, इस ओर हमारे सर्वविद्या एवं ज्ञान–चर्चा के केन्द्र विश्वविद्यालय विशेष ध्यान दें।

सीधी सी बात है, कला के सम्बन्ध में शिक्षित समाज एवं विश्वविद्यालय की उदासीनता कम होने से ही कला चर्चा का प्रसार होगा और उसके फलस्वरूप देशवासियों का सौन्दर्यबोध तथा उनकी पर्यवेक्षण शक्ति बढ़ेगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

सारांश

• जीवन में रस का अनुभव करने के लिए कला जरूरी है जिस प्रकार दुनिया को समझने के लिए विज्ञान या साहित्य की जरूरत है।

• कलाबोध से सौन्दर्यबोध उत्पन्न होता है जो हमारे दैनिक जीवन शैली को सुन्दर बनाता है तथा मानसिक संतुलन बनाने में मदद करता है।

• कला साधना मात्र पेशेवर कलाकारों का काम नहीं है वह तो समस्त मानव के लिए है।

• कला दो प्रकार की होती है– ललित कला और शिल्प कला। एक से आनंद की प्राप्ति होती है तो दूसरी जीविका कमाने का आधार भी होती है। शिल्प की उन्नति में देश की उन्नति निहित है।

• कला शिक्षा की पहली मांग है कि प्रकृति को एवं अच्छी कलात्मक वस्तुओं को श्रद्धा सहित देखा जाए और जिन व्यक्तियों का सौन्दर्य बोध जागृत है उनसे चर्चा किया जाए।

• कला शिक्षा के लिए शालाओं में कलाकृतियों को सजाकर रखना, कलाकारों से चर्चा करना, संग्रहालय व अन्य स्थानों पर जाकर कलाकृतियों को देखना, समय–समय पर कला उत्सवों तथा प्रकृति भ्रमण का आयोजन करना आदि उपयोगी होगा।

प्रश्न

1. दुनिया को जानने–समझने और उसका रसास्वादन करने या रस लेने में क्या आप कोई अंतर देखते हैं। कुछ उदाहरण सहित अपना मत समझाएं।

2. किसी किसान, कारखाने का मजदूर या सरकारी अफसर के जीवन में कला शिक्षा के अभाव से कोई कमी होगी क्या, अपना विचार तर्क सहित रखें।

3. नन्दलाल बसु कला शिक्षा की कमी के कारण देश की किस तरह की अवनति की ओर इशारा कर रहे हैं – समझाकर लिखें।

4. कला शिक्षण केवल पेशेवर कलाकारों के लिए जरूरी है, आम व्यक्ति के लिए नहीं है – इस कथन पर अपना विचार रखें।

5. कला शिक्षण के लिए नन्दलाल बसु कई सुझाव रखे हैं। आपके अनुसार इनके अलावा और क्या तरीके हो सकते हैं, उनका वर्णन करें।

6. उत्कृष्ट कलाकृतियों को देखना, कलाकारों से बातचीत करना तथा प्रकृति से जीवंत संबंध बनाये रखना, इन तीन बातों को नन्दलाल बसु क्यों महत्वपूर्ण मानते हैं। इनका कला शिक्षण में क्या महत्व होगा, अपना अनुभव व विचार प्रस्तुत करें।

7. अगर आपके गांव या शहर में संग्रहालय या आर्ट गैलरी नहीं हो तो बच्चों को कला भ्रमण के लिए कहां–कहां ले जा सकते हैं, उनका विवरण दें और अपना कारण भी दें।

प्रोजेक्ट शाला में करने के लिए

1. नन्दलाल बसु कला शिक्षण के जिन तरीकों का उल्लेख किया है उनमें से कम से कम दो तरीके को अपने शाला में उपयोग करें और उसका अनुभव विस्तार से लिखें।

Prasad, 1951. Drawing

2. अपनी पाठशाला की कक्षा को छात्र–छात्राओं की मदद से कलात्मक तरीके से सजाईए और उस अनुभव की विस्तृत रपट तैयार करें।

1.कला क्या है, कला शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं ?

पठन सामग्री 3

कला–शिक्षा क्यों?

देवी प्रसाद

लेखक परिचय

यह लेख प्रसिद्ध कला शिक्षक व शांति आंदोलन जी के कार्यकर्ता देवी प्रसाद की बहुत सुन्दर पुस्तक शिक्षा का वाहन : कला से लिया गया है। देवी प्रसाद रवीन्द्रनाथ शांतिनिकेतन में महान् चित्रकार नन्दलाल बसु के शिष्य थे। बाद में सेवाग्राम में गांधीजी द्वारा स्थापित नई तालीम पाठशाला में कला शिक्षक के रूप में काम करते रहे। यह पुस्तक इन्हीं अनुभवों के आधार पर लिखी गई है। इस लेख को कई बार पढ़ें और हर अंश का सारांश या मुख्य बातों को लिखने का प्रयास करें। फिर विचार करें कि आप उनसे कहां तक सहमत हैं और कहां असहमत हैं। ध्यान रहे कि छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखकर इस लेख के कई अंश काटे गए हैं। जो लोग पूरे अंश को पढ़ना चाहते हैं, वे कृपया मूल पुस्तक से पढ़े।

मूल पुस्तक . देवी प्रसाद, शिक्षा का वाहन कला, एन बी टी, दिल्ली, 1999

***

पठन सामग्री की रूपरेखा

- कला शिक्षण का व्यापक उद्देश्य
- रोजाना जीवन में सौंदर्य
- कलाबोध का ह्रास
- कला और जीवन के बीच विच्छेद: ''ललित कला व उपयोगी कला''
- आधुनिक भारत में कलाबोध का ह्रास

कला शिक्षण के उद्देश्य

- वस्तुओं के निर्माण में कला–बोध
- प्रकृति से परिचय व बंधुत्व
- प्रकृति से परिचय व संचेतना
- आंख की शिक्षा
- लावण्य–निर्माण
- उपयोगिता व सुन्दरता

प्रस्तावना

कला शिक्षा के पीछे, व्यक्ति के चरित्र उसके सामाजिक बोध और सौंन्दर्य बोध का विकास करने का उद्‌देश्य है। कला का जीवन मे क्या महत्व है? कला शिक्षा किस प्रकार से हमारे जीवन को प्रभावित करती है, इस बात को समझना। प्रकृति (अपने आस–पास के वातावरण) से जुड़ाव बनाना व उसके साथ बंधुत्व को अनुभव करना। भौतिक जीवन के सौंदर्य ने किस तरह हमारे पारंपरिक सौंदर्य को प्रभावित किया है।

1. कला शिक्षण का व्यापक उद्देश्य

इस अध्याय में कला से संबंध रखनेवाले सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्शों को समझने का प्रयत्न करेंगे। आज एक आम रिवाज–सा हो गया है, शिक्षा का काम करनेवाले कहते हैं कि कला बालक के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। इसी तरह शिक्षाक्रम में और भी विषय जोड़े जाते हैं पर यह बात कि अमुक विषय के द्वारा अमुक कारण से विकास होता है, बहुत कम शिक्षक सोचते हैं। अगर सोचते भी हैं, तो कुछ ऊपरी बातों पर ही ध्यान देते हैं। इतिहास में

देखा गया है कि जबसे शिक्षा की योजना सोच–समझकर बनने लगी, तभी से ऋषियों और चितंको ने शिक्षा के विषयों को, उनके द्वारा होने वाले विकास के बारे में अच्छी तरह सोचकर ही रखा। गणित सिखाने का अर्थ यह नहीं हैं कि उससे व्यावहारिक जीवन में लाभ हो, क्योंकि अधिकतर लोगों के व्यावहारिक जीवन में उच्च गणित के सिद्धांतों से कोई मतलब नहीं पड़नेवाला होता, फिर भी उसे अच्छे शिक्षण का आवश्यक अंग माना गया है। इसका कारण है कि गणित की शिक्षा से एक विशेष मानसिक विकास होता है, जो किसी अन्य विषय के सिखाने से नहीं होता। किंतु अगर गणित सिखाने पर भी उसका यह लाभ न हो, तो उसे शिक्षा में स्थान देने का कोई अर्थ नहीं होता। इसलिये शिक्षक को अपने विषय के व्यावहारिक और चारित्रिक दोनों पहलुओं के बारे में खूब गहराई से चिंतन कर लेना चाहिए।

इसी तरह कला सिखाने का मतलब केवल हाथ के काम में दक्षता हासिल करना नहीं होता; कुछ चित्र और दस्तकारी की खूबसूरत चीजों का निर्माण मात्र उसका ध्येय नहीं होता। कला–शिक्षा के पीछे व्यक्ति के चरित्र, उसके सामाजिक बोध और सौंदर्य–बोध का विकास करने का उद्देश्य होता है। कला–शिक्षा में हाथ का काम (कला–कौशल) तो साधनमात्र है, साध्य तो गुण–विकास है। इसी विचार को सामने रखते हुए हम कला का जीवन में क्या महत्व है, इसकी विस्तार से चर्चा करेंगे।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

1.क. लेखक के अनुसार पाठशाला में कला शिक्षण का उद्देश्य कुशल कलाकार बनाना या छात्रों में कलात्मक नजरिया विकसित करना है?

2. रोजाना जीवन में सौंदर्य

सबसे पहली और स्थूल बात तो सभी कहते हैंः 'कला के द्वारा हमारे जीवन में सौंदर्य–निर्माण होता है', यानी रोजाना के जीवन में इस्तेमाल होने वाली चीजें सुंदर बनें, यह कला का एक ध्येय है। जब लोग किसी पुरानी संस्कृति के बारे में कुछ कहते हैं, तो पुरातत्व–विभाग द्वारा खोज निकाली गई वस्तुओं के आधार पर ही कहते हैं कि अमुक संस्कृति या सभ्यता उच्च कोटि की थी या नहीं। सिंधु–सभ्यता एक परिपक्व सभ्यता थी, यह मोहनजोदड़ो में मिली वस्तुओं की बुनियाद पर ही कहा जाता है।

आज भी बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियों में जो वस्तुएं बनें, वे सुंदर बनें, इस विचार से कलाकारों की मदद ली जाती है। इसके पीछे प्रयत्न यही होता है कि हम जो कुछ भी बनाएं या इस्तेमाल करें, वह सुंदर हो। यह काम कला का है। इसलिये जहाँ–तहाँ वस्तुएँ बनती हैं, चाहे फिर वे बड़ी फैक्ट्रियों में बनें या कारीगरों की कर्मशालाओं में, वहां कलाकारों को नियुक्त कर दिया जाता है। इन कलाकारों का काम होता है–कारीगरों को आकार, रंग आदि के बारे में मार्गदर्शन देना। अगर जीवन में सौंदर्य का इतना महत्वपूर्ण स्थान है, तो कला–शिक्षा का आम शिक्षा का एक अंग हो जाना लाजिमी हो जाता है।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

2.क लेखक के अनुसार कला का उद्देश्य सजावटी कलाकृतियां बनाने की बजाय और क्या है।

2.ख. रोजाना इस्तेमाल वाली चीज़ों के कारखानों में कलाकारों को क्यों नियुक्त किया जाता है।

3. कलाबोध का ह्रास

किंतु आज हालत क्या है? क्या जो चीजें हमारे घरों में, बाजार में, दफ्तर में या कहीं भी हम इस्तेमाल करते हैं, वे सुंदर होती है? दुख के साथ कहना पड़ता है कि जिस देश की परंपरा अत्यंत ऊंचे स्तर की कलात्मकता

की थी, आज वहां बिलकुल नीचे दर्जे की रुचि की वस्तुओं से जीवन घिरा है। शरीर पर पहनने के कपड़ों को ही लें। वस्त्र–कला की कहानी अगर लिखी जाए, तो जहां पट्टन के पटोले, संबलपुरी, चंदेरी, पैठनी, बालूचरी आदि का जिक्र किया जाएगा, वहां आज स्त्रियां वायल, जार्जेट आदि की हलकी रुचि की साड़ियां पहनने में गर्व महसूस करती हैं। जिस देश में काँसे के अत्यंत कलात्मक बर्तन बनते थे और आज भी बनते हैं, वहां एल्यूमिनियम आदि के बर्तन फैशनेबल माने जाते हैं और बेचारे काँसे के बर्तन बनानेवाले कारीगर आधा पेट भूखे रहकर दिन गुजारते हैं। छोटी–से–छोटी चीजों को ही लें जैसे बच्चों के खिलौने। शायद ही दूसरा कोई ऐसा देश होगा, जहाँ खिलौनों की परंपरा इतनी समृद्ध और कलात्मक हो। पर हालत यह है कि साप्ताहिक बाजारों में प्लास्टिक के खिलौनों की भरमार रहती है। अगर देशी खिलौने बेचने के लिए कोई कारीगर भूला–भटका वहाँ भी जाए, तो उसे उन्हें पीठ पर लादकर वापस घर ले जाना पड़ता है।

हमारे समाज की रुचि इस तरह की हो गई है। सुंदर और बदसूरत वस्तु को परखने की शक्ति बिलकुल दिखती ही नहीं। ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने खूब धन खर्च करके घर में प्राचीन कला–कृतियों का अच्छा खासा संग्रह कर लिया है। इसलिए उन्हें समाज में आजकल अधिक सभ्य भी माना जाता है और 'कला के जानकार माना जाता है। किंतु यह आवश्यक नहीं कि उनके जीवन में इस्तेमाल होनेवाली चीजें सचमुच खूबसूरत हों। जीवन में लावण्य और लालित्य की बात तो छोड़ ही दें।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

3.क. लेखक के विचार में कलाबोध के ह्रास के इनमें से क्या उदाहरण हैं – उचित वाक्यों पर सही का निशान लगाएं

- **घर व दफ्तरों में बेतरतीब तरीके से सामान रखना**
- **चूल्हों की जगह गैस का उपयोग**
- **घोड़ागाड़ी की जगह मोटरगाड़ी का उपयोग**
- **हाथकरघे के सूती या रेशमी कपड़ों की जगह नायलॉन या टेरिकॉट कपड़े पहनना**
- **मिट्टी या कांसे के पारंपरिक बर्तनों की जगह अल्युमिनियम या प्लास्टिक के बर्तनों का उपयोग–**
- **कुओं से पानी भरने की जगह नल से भरना**
- **पारंपरिक खिलौनों की जगह प्लास्टिक के खिलौनों का उपयोग**

3.1 कला और जीवन के बीच विच्छेद "ललित कला व उपयोगी कला"

इस अभाव का क्या कारण है? यही कि कला का जीवन के साथ जो समन्वय होना चाहिये था, वह टूट गया है। इस समन्वय के टूटने का मुख्य कारण औद्योगिक–युग में है। इसमें यंत्र–युग को दोष देने की बात नहीं, परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से यंत्र–युग को ही कला और जीवन के इस विच्छेद की जिम्मेवारी का साझीदार होना होगा। यंत्र–युग में वस्तुओं के निर्माण करने के साधन एकदम बदल गए। हर व्यक्तिगत् वस्तु कारीगर के अपने हाथ से न बनाकर मशीन द्वारा हजारों, लाखों की संख्या में बनने लगी। मनुष्य का हाथ तक उनमें लगने की जरूरत नहीं रही एक ही नाप, परिमाप आदि की एक ही जैसी एक से अधिक संख्या में वस्तुएँ बनाना उसका ध्येय होता है। पर जब कारीगर प्रत्येक वस्तु को अपने हाथ से बनाता है, तो प्रत्येक वस्तु में उसके उस क्षण के व्यक्तित्व का प्रकाश होता है। यहाँ तक कि कुम्हार के चाक पर बनाए बर्तन, जो उनमें से हर एक कुछ–न–कुछ अलग होगा। यानी उपयोगिता और सुंदरता का विच्छेद, जो यंत्र–युग से पहले ही जमींदारी और सामंती जमाने में शुरू हो चुका था। यंत्र–युग में आकर बिलकुल ही स्पष्ट हो गया। यह सब यूरोप में घटा।

कला में एक नया वर्गीकरण शुरू हुआ। कला की उस प्रवृत्ति को, जिसके द्वारा 'उपयोगी' (इस्तेमाल की चीजें) वस्तुएं नहीं बनतीं, 'फाइन आर्ट' (ललित–कला) कहा जाने लगा। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, कविता और वास्तुकलाएँ आती हैं। वह कला, जिसके द्वारा उपयोगी वस्तुओं का निर्माण होता है, उसे 'अप्लाइड आर्ट' (उपयोगी कला) नाम मिला।

हिन्दुस्तान में आरंभ से ही कला के कोई अलग विभाग नहीं थे। प्राचीन शास्त्रों में कलाओं की कई सूचियाँ मिलती हैं। बौद्ध–ग्रंथों में 84 कलाएँ बताई हैं, जैन–ग्रंथों में 72 और वात्स्यायन के ग्रंथ में 64 इससे यह स्पष्ट है कि कलाओं की कोई निश्चित संख्या नहीं हो सकती। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात देखने की यह है कि इन सूचियों में संगीत, नृत्य, श्रृगाँर, बढ़ई–काम, सिलाई आदि सभी कलाएँ एक ही सूची में एक ही स्तर पर दी गई है। पर मध्यकाल में कला के जो दो वर्ग यूरोप में बने गये, उनके कारण सच्ची कला और जीवन में विच्छेद पड़ गया।

यूरोप में भी मध्ययुग से पहले कला का उद्धेश्य हमेशा किसी–न–किसी उपयोगिता के साथ जुड़ा हुआ रहा, चाहे वह उपयोगिता आध्यात्मिक, धार्मिक हो या व्यावहारिक। परंतु 16वीं शताब्दी से कला का एक ध्येय अमीरों का मनोरंजन आदि भी हो गया। जो कलाकार शक्तिशाली होते थे, उनका झुकाव इस कला की तरफ, जिसे 'शुद्ध कला' भी कहा गया, हो गया। जो शक्ति अभी तक हर तरह के निमार्णात्मक कामों में लगती थी– चाहे वह चित्र बनाने का काम हो, चाहे इस्तेमाल की चीजें–वह अब केवल ललित–कलाओं में लगने लगी। कारीगरों में से जो सृजनात्मक शक्ति रखते थे, वे भी धीरे–धीरे ललित–कला की ओर जाने लगे और इस तरह इस्तेमाल की चीजों का कलात्मक स्तर धीरे–धीरे नीचा हो गया। 'फाइन आर्ट' के विपरीत दूसरा शब्द बना 'अप्लाइड आर्ट'। हिंदी में इसका अनुवाद 'उपयोगी कला' किया गया, जो शब्द का ठीक अनुवाद नहीं है। 'अप्लाइड आर्ट' शब्द का अनुवाद करना कुछ कठिन है। जब कि कोई वस्तु सृजनात्मकता के पैमाने से नीची बनेगी और उसे 'कलात्मक' बनाना जरूरी होगा, तो उस पर कला को ऊपर से चिपकाना पड़ेगा। यानी 'अप्लाइड आर्ट', 'आर्ट अप्लाइड' हो जायेगा। वही आज होता है। बाजार में वे ही चीजें सुंदर मानी जाती हैं, जिसे पर कला को ऊपर से खूब अंलकृत हो; जिनमें सच्ची कलात्मकता के बदले दस्तकारी की कुशलता अधिक दिखे। वह चीज, जिसका केवल आकार या अलंकार–रहित रूप सुंदर न हो, जो 'कला की कृति' न हो, लेकिन अलंकार से भरी हो, सुंदर मानी जाने लगी। इसका नतीजा दोहरे मायने में नुकसानदेह हुआ। एक तो यह कि जीवन में इस्तेमाल आनेवाली वस्तुएँ ठीक अर्थ में सुंदर नहीं रहीं। उससे भी अधिक गहरा हानिकारक असर यह हुआ कि समाज को सच्चे कलाकारों की सेवा से वंचित रहना पड़ा। ये कलाकार केवल धनी वर्ग के मनोरंजन के काम में लग गए।

समझ के लिए प्रश्न

3.1 क. **हाथ से चीज़ें बनाने तथा बड़े पैमाने से बनाने से उनकी कलात्मकता पर क्या प्रभाव पड़ता है।**

3.2 ख. इनमें से आपके अनुसार ललित कला कौन होगी और उपयोगी कला कौन होगी – छांटकर लिखेः

खाना बनाना, नाटक, गणेश उत्सव के लिए गणेशजी की मूर्ति बनाना, बांसुरी बजाना, लकड़ी के फर्नीचर बनाना, लकड़ी की मूर्ति बनाना, मटके बनाना, कांसे के बर्तन बनाना, कांस्य मूर्ति बनाना.....

3.3 ग. क्या ललित व उपयोगी कलाओं के बीच इस तरह का विभेद प्राचीन भारत या मध्यकालीन यूरोप में था।

3. 2 आधुनिक भारत में कलाबोध का ह्रास

भारतवर्ष में परिस्थिति अलग थी। क्योंकि यहाँ यंत्र–युग का असर बाद में आया और यूरोप की हलकी नकल करते हुए आया, इसलिए पुरानी परंपराएं बिल्कुल टूटने लगीं। आज तो वे परंपराएं लगभग पूरी–पूरी टूट गयी हैं। जो कुछ बचा है, वह दो कारणों से बचा है। एक तो इसलिए कि हमारा देश गांवों का देश है। साथ ही देश गरीब है, इसलिए यंत्र–युग को अंदर तक प्रवेश करने में समय लगना स्वाभाविक ही है। दूसरा कारण यह है कि पुरानी परंपराएं इतनी ठोस थीं कि उन्हें आसानी से फेंका नहीं जा सकता। इस देश की संस्कृति की बुनियाद इतनी गहरी रही है कि आज के जमाने में भी ऐसी बातें हैं, जो आधुनिकतम शिक्षा पाया हुआ व्यक्ति भी कहीं–कहीं बनाए रखने में गर्व महसूस करता है। पुरानी दस्तकारी की कितनी ही वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनका मुकाबला करने में आधुनिकतम 'डिजाइनर्स' भी झिझकेंगे। परंतु यह सांस्कृतिक कलात्मक अवशेष अब कुछ खस्ता हालत में है। चालू शिक्षा–प्रणाली बड़ी सफलता पूर्वक उन्हें काफी रफ्तार से मिटा देने की गति में है। जितनी गति से 'शिक्षा का प्रसार' होगा (और जो हो रहा है), उतनी गति से ही हमारे जीवन का परंपरागत सौंदर्य खत्म होता जाएगा– इस्तेमाल की वस्तुएं बदसूरत होती जायेगी। बचा–खुचा जो संग्रहालयों में स्थान पा रहा है, वह भी देखने को नहीं मिलेगा।

जो चीजें आदमी बनाए, वे खूबसूरत हों, इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता है कि समाज के हर व्यक्ति को सुंदर वस्तु चुनने की विवेक–बुद्धि हो। पुराने जमाने में यह बात आसान थी, क्योंकि परपंरा के कारण व्यक्ति चुनना जानता था और समाज की शिक्षण पद्धति में भी यह शिक्षा आ जाती थी। साथ ही एक कारण यह भी था कि जो वस्तुएँ उपलब्ध थीं, उनमें से अधिकतर स्थानिक होती थीं। हर व्यक्ति हर कारीगर को अच्छी तरह जानता था। कला, कलाकार और ग्राहक की आत्मीयता के कारण कला, बोध की शिक्षा स्वाभाविक ही मिलती रहती थी। परंतु आज कला, बोध में यह विप्लव (केओस) घट चुका है और हर व्यक्ति के सामने सारे संसार की चीजें उपस्थित होती हैं, इस स्थिति में ठीक चुनाव करने की शक्ति का निर्माण असंभव ही है। यह तभी संभव होगा, जब शिक्षा में सुंदर और असुंदर को पहचानने की तालीम देने की योजना बनेगी।

समझ के लिए प्रश्न

3. लेखक के अनुसार भारत में कलाबोध का ह्रास को धीमी करने वाले तत्व क्या थे। उनके अनुसार शालाओं की इस प्रक्रिया में क्या भूमिका रही है।

3. बाज़ार में इस्तेमाल की जाने वाली अत्यधिक सामग्री मिलने के कारण कला–बोध पर क्या प्रभाव पड़ा।

4. कला शिक्षण के उद्देश्य

4.1 वस्तुओं के निर्माण में कला–बोध

कला–बोध कैसे निर्माण होगा, इसकी चर्चा आगे चलकर विस्तार से की गई है। यहाँ वस्तुओं के निर्माण से जो पहलू संबंध रखता है, उसे समझने का प्रयत्न करेंगे। कोई भी कारीगर जब कुछ बनाना चाहता है, तब या तो वह पुरानी चली आई भांत से इस वस्तु को बनाये या अगर कुछ नया बनाना है, तो उसे नई भांत का निमार्ण करना होगा। आज प्रश्न नई भांत के निर्माण करने का है। दरअसल हर कारीगर या कलाकार बिलकुल नए आकारों का निर्माण नहीं कर सकता। बिलकुल मौलिक दृष्टि से नवीन भांत के निर्माण करनेवाले कलाकार हर युग में इने–गिने ही होते हैं। पर मनुष्य की 'नवीनता' की भूख की तृप्ति करनेवाली नई–नई भांत बनाने की शक्ति अच्छी ट्रेनिंग से हासिल की जा सकती है इसका एक तरीका यह है कि दूसरे प्रांतों और देशों की अच्छी–अच्छी वस्तुओं की बुनियाद पर नयी भांतें बनायी जाए। इससे सौंदर्य–बोध भी बनेगा और 'नवीनता' का पहलू भी सधेगा।

इस सिलसिले में यह बात कह देना आवश्यक है कि हमारी पारंपरिक वस्तुओं की बार–बार वकालत करने से गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। हम इस बात को बिलकुल ही नहीं मानते कि आज भी पुराने आकारों और भांतों को ही खींच–तानकर जीवित रखें और नई–नई डिजाइन न बनाए। इसमें कोई शंका नहीं कि जैसे–जैसे समय बदलता है, वैसे–वैसे कला के आकार, पैटर्न आदि भी बदलते हैं। परंतु यह एक साधारण–सी बात है कि चूँकि एक सचमुच सुदंर वस्तु, जो उपयोगी भी है पर पुरानी है, इसलिये उसे अपनाना नहीं चाहिये, यह मानना मूर्खता हैं। कला–बोध का अभाव ही मनुष्य को ऐसी भावना देता है। अगर सचमुच नयी भांतों का आविष्कार करना है, तो कलाकार को परंपरागत कला और प्रकृति दोनों का गहरा अध्ययन करना पड़ेगा। आज तक जितनी भी मूल कृतियाँ कला में हुई हैं, वे इसी गहरे अध्ययन के नतीजे हैं। इसलिये समाज में व्यक्तियों की सृजनात्मक शक्ति का विकास करने के लिए दोनों चीजें उपलब्ध होनी चाहिए परंपरागत कला और प्रकृति।

कलाकार खोज करने की पद्धति परपंरा के द्वारा सीखता है और खोज की वस्तु (कलात्मक आकार) प्रकृति में से पाता है। प्रकृति में जो कुछ कला का व्याकरण और उसका गणित छिपा पड़ा है, उसे खोजना कलाकार का काम होता है। यह काम जन्मजात कलाकार ही कर सकते हैं। पर चूंकि हम कलाकार और दस्तकार 'फाइन आर्ट' और 'अप्लाइड आर्ट' (ललित–कला और उपयोगी कला) में अंतर रखना नहीं चाहते, हर दस्तकार, चाहे वह ऊँची श्रेणी का जन्मजात कलाकार न हो, उसके सृजन करने का रास्ता कलाकार का ही होगा। ऐसा वातावरण बनाने के लिए केवल शिक्षा ही जिम्मेवारी ले सकती है। कलाकार, दस्तकार के सृजन करने के रास्तों से हर व्यक्ति परिचित हो, प्रत्यक्ष रूप से परिचित हो, यह काम शिक्षा को करना चाहिए। कला का यह उद्धेश्य कि जीवन में इस्तेमाल आनेवाली वस्तुएं सुंदर हों, शिक्षा के द्वारा ही सध सकता है।

समझ के लिए प्रश्न

4.1 क. क्या लेखक के मत में उपयोगी चीज़ों को सुन्दर बनाने के लिए केवल परंपरा ही एकमात्र प्रेरणा स्रोत है– या अन्य स्रोत भी हैं।

ख. लेखक के अनुसार सृजन के लिए कलाकारों व कारीगरों को प्रकृति अवलोकन व परंपरा किस प्रकार मदद करते हैं।

ग. लेखक के अनुसार कलाकारों व कारीगरों में कलाबोध विकसित करने में शिक्षा किस प्रकार मदद कर सकती है।

4. 2 प्रकृति से परिचय व बंधुत्व

सच्ची कला–शिक्षा द्वारा, जैसा कि ऊपर कहा गया, सौंदर्य–निर्माण तो होगा ही, पर उसका ध्येय केवल भौतिक जीवन तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य के हृदय की गहरी सतह तक कला का प्रवेश है। कला–साधना के लिए प्रकृति को समझाना पड़ता है, उसका पूरा–पूरा अध्ययन करना पड़ता है। कलाकार का यह अध्ययन सतही नहीं होता। वह उसे प्रकृति की गहराई में उतारनेवाला होता है। कलाकार इस अध्ययन के द्वारा प्रकृति में इतना एकात्मबोध अनुभव करता है कि धीरे–धीरे सब–के–सब उसके मित्र बन जाते हैं। नन्दबाबू ने एक बार एक विद्यार्थी को, जो एक वृक्ष की स्टडी (वृक्ष का चित्र) कर रहा था, कहा था ''तुम आज जो इस वृक्ष की आराधना कर रहे हो, चित्र बना रहे हो, अगर सचमुच ही यह अच्छा लग जाता है, तो यह तुम्हारे सारे जीवन के लिए संचित होता जा रहा है। जीवन में कभी शायद अशेष दुख पाओगे, प्रियजनों को खोना पड़ेगा, संसार शून्य लगेगा, तब रास्ते के किनारे से यह वृक्ष कहेगा, 'यहाँ मैं हूँ।' तुम्हें सांत्वना मिलेगी। यह तुम्हारा अक्षय संचय है।....'' दूसरे समय एक बार कहा : ''असल बात यह है कि जिस चीज का चित्र बनाओगे, वह अच्छी लगनी चाहिए। उसे तुम्हारा मन हर लेना चाहिए। तब वह अच्छा लगना तूलिका की नोक पर अपने–आप निखर उठेगा। तभी यथार्थ में चित्र बनेगा। चित्र बनाने का यही सबसे बड़ा, सबसे गूढ़ कौशल है।''

कला–शिक्षा का यह भी उद्धेश्य है कि व्यक्ति को प्रकृति के साथ इस बंधुत्व का अनुभव हो। आज विशेष तौर पर इस शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। आदमी का हृदय इतना संकुचित हो गया है कि पेड़–पौधों आदि की बात तो छोड़ दें, उसे अपने पड़ोसी मानव के लिए भी सच्ची संवेदना नहीं रह गई है। इस स्वार्थमय युग में शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि चाहे उससे व्यक्ति कुछ और चीज सीखे या न सीखे, उसे साथियों, सहजीवियों के साथ गहरी संवेदना की अनुभूति तो अवश्य ही हो। हृदय में संवेदना का निर्माण करने के लिए ऐसे विषय और प्रवृत्तियाँ चुननी होंगी, जिनसे मनुष्य की सूक्ष्मतम संवेदना जाग्रत हो।

कला–शिक्षा इस काम को करती है। कलाकार का मन इतना मुलायम हो जाता है कि अगर उसके सामने कोई पेड़ काटे या किसी अनुचित कारण से फूल तोड़े, तो उसे दुःख होता है। दुःख इसलिए होता है कि वह उस फूल की सुंदरता को पहचानता है और यह फूल की सुंदरता उसकी परिचित होती है। उसे अपनी परिचित वस्तु की क्षति होते देखना सहन नहीं होता। वह जब स्वयं भी फूल तोड़ता है, तो हमेशा किसी–न–किसी ऊंचे उद्धेश्य के लिए ही तोड़ता है। उसका उद्धेश्य या तो सौंदर्य का निमार्ण करना या किसी प्रियजन या पूज्यपात्र को अर्पण करने का होता है। अर्पण प्रिय वस्तु का ही होता है, फूल भी उसकी प्रिय वस्तुओं में से होता है।

इस प्रकार कलाकार की दृष्टि को, जो किसी–न–किसी परिमाण में कला–शिक्षा द्वारा हर व्यक्ति में निर्मित होगी, नन्दबाबू ने इन शब्दों में कहा है ''जो कलाकार है, सर्वत्र सभी उसके मित्र हैं। वह कभी निसंग नहीं होता। तुम अच्छे लग रहे हो। तुम चले गए, पेड़ अच्छा लग रहा है। पेड़ भी नहीं है, तो यह दरवाजा ही अच्छा लग रहा है। अच्छा क्यों लगता है, कहना कठिन है। पर आवेग अच्छा लगने या अपनी चीज होने के कारण अच्छा लगने में गहराई कम होती है। कुतूहल के कारण अच्छा लगना चिरस्थायी नहीं होता। एक प्रकार का अच्छा लगना और है, वह है–गहरी एकात्मानुभूति। सभी गहरा आश्वासन दे रहे हैं, सभी मित्र जो हैं।''

समझ के लिए प्रश्न

4.2 लेखक के अनुसार कला शिक्षण से मनुष्य और प्रकृति के बीच कैसा रिश्ता बन जाता है– सही विकल्पों को चुने –

- **मनुष्य प्रकृति को समझ सकता है**
- **मनुष्य प्रकृति पर नियंत्रण पा सकता है**
- **मनुष्य प्रकृति को मैत्री भावना से देखने लगता है**
- **मनुष्य प्रकृति से संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है**
- **मनुष्य प्रकृति का संरक्षण करने लगता है और उससे सांत्वना पाता है**
- **मनुष्य प्रकृति का भरपूर दोहन कर पाता है**

ख. पेड़–पौधों या दरवाजों से एकात्मानुभूति – इस कथन से आप क्या समझते हैं, विचार करके लिखें।

4. 3 संचेतना

कला के द्वारा प्रकृति–परिचय का बंधुत्व के अलावा एक दूसरा पहलू भी है। वह प्रकृति के बाहरी आकार से संबंध रखता है। इसके भी दो प्रकार हैं: एक तो वह, जो हमारे आस–पास की चीजों की विद्यमानता (एक्जिसटेंस) के बारे में हमें सचेतता (vosvjusl) देता है और दूसरा वह, जो हमारी आँख से संबंध रखता है। यानि जिसमें चाक्षुष–शक्ति का प्रश्न आता है।

आँख किसी वस्तु को देखे या न देखे, पर मैं उस वस्तु की विद्यमानता के बारे में सचेत हूं, मुझे उसकी विद्यमानता का भान है, यह वृत्ति हर व्यक्ति में होनी चाहिए। हमारे चारों तरफ क्या है, किस तरह का है, किस आकार का है, यह सब जानने से इसका मतलब नहीं। बल्कि मतलब 'कुछ है' इस बात को महसूस करने से है। वस्तु के स्मृति–प्रतिबिंब से भी इसका इतना सरोकार नहीं, क्योंकि वह भान अंधे को भी होना चाहिए। आँख न होने पर भी यह सचेतता व्यक्ति में होती है, इसका अपने अनुभव के आधार पर एक उदाहरण देता हूँ। मेरे एक मित्र थे, जो जन्म से ही आँख से लाचार थे। कभी–कभी मैं उनके साथ शाम को घूमने जाया करता था। एक बात हमेशा देखता कि सड़क पर चलते–चलते जब कोई मकान या पेड़ आता था, तो फौरन वे स्वयं कहते ''भाई, यहाँ कुछ है न?'' या मुझसे पूछते थे ''यहाँ क्या है?'' उन्हें वस्तुओं की विद्यमानता की अनुभूति होती थी। हम इसी सचेतता का विकास करना चाहते हैं।

इस मुद्दे को और स्पष्ट करने के लिए इसका एकदम उल्टा उदाहरण देता हूं। प्रशिक्षण–टोली की एक कक्षा में एक दिन हरसिंगार के फूलों की बात उठी। शरद ऋतु थी। एक व्यक्ति उठे और बोले कि वह हरसिंगार के फूल और पेड़ को भलीभांति पहचानते है, क्योंकि उनके प्रदेश में वह पेड़ प्रचुर मात्रा में होता है। पूछने पर उन्होंने कहा ''दिखता है, यहाँ तो यह पेड़ नहीं होता।'' वह इस बात पर अड़ गए कि तालीमी–संघ के अहाते में तो हरसिंगार का एक भी पेड़ नहीं है, फूल की तो बात ही क्या। मैंने उनसे पूछा ''क्या आजकल आप रोज सुबह छात्रालय से आते–जाते समय रास्ते पर बिछी हरसिंगार की एक इंच मोटी सतह पर से चलकर नहीं आते?'' उनका वह विश्वास फिर भी कायम रहा। अगले दिन सुबह मैं स्वयं उनके पास गया और आते समय रास्ते पर बिछी प्रकृति की इस सुंदर छवि के सामने उन्हें खड़ा करके कहा ''क्या है यह फूल ?'' ''ओहो ! कितना अंधा हूँ मैं।'' वे सचमुच हरसिंगार के फूल और पेड़ को अच्छी तरह पहचानते थे। अगर उनके हाथ में एक फूल दे दिया जाता, तो फौरन पहचान लेते। फिर भी उन्हें उस चीज के बारे में सचेतता (अवेअरनेस) नहीं थी।

दो बिल्कुल उल्टे उदाहरण दिए। एक में तो आँख से न देखते हुए भी किसी वस्तु के अस्तित्व, उसकी विद्यमानता के बारे में व्यक्ति को पूरा–पूरा भान है, सचेतता है। दूसरी में वस्तु के बारे में ज्ञान है, मानस में उसका स्पष्ट प्रतिबिंब भी बना पड़ा है, फिर भी वह सचेतता नहीं है। इस सचेतता का संबंध प्रकृति के साथ एकात्मानुभूति से है। मेरे से बाहर किसी दूसरे वस्तु के अस्तित्व का भान होना यानी बाहर के प्रति संवेदना होना, यह अंहकार के निराकरण का पथ है। सुशिक्षित व्यक्ति का यह एक लक्षण है।

समझ के लिए प्रश्न

4.3 क. हम अपने इन्द्रियों से कई चीज़ों को देखते, सूंघते, महसूस करते हैं, मगर उनके प्रति सचेत नहीं हो पाते हैं – लेखक के अनुसार इसके क्या कारण हैं।

ख. लेखक यह क्यों कहते हैं कि दूसरे वस्तु के प्रति संवेदना होना, अहंकार के निराकरण का पथ है। उनका तात्पर्य क्या है।

4. 4 आँख की शिक्षा

दूसरी शक्ति, जो कला–शिक्षा के द्वारा विकसित होती है, वह आँख की शक्ति है। जिंदगी के लिए आँख का होना लाजिमी है। हर कोई जानता है कि अगर आँख न हो, तो जीना कितना कठिन हो जाता है। आँख की शक्ति जितनी तेज होगी, व्यावहारिक जीवन में उससे उतनी ही मदद मिलेगी।

आँख की शक्ति एक तो मनुष्य के दैहिक स्वास्थ्य का सवाल है, वह शरीर–शास्त्र और आरोग्य–शास्त्र का विषय है। कभी–कभी कुछ कमियाँ जन्मजात या रोग के कारण होती हैं। जैसे वर्णांधता (कलर–ब्लाइंडनेस), जिसमें रंगों को समझने में गलतियाँ होती हैं और कोई–कोई रंग दिखते भी नहीं। कभी–कभी तो ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जिन्हें सब कुछ काला–सफेद दिखता है, रंगीन नहीं या किसी–किसी को बीमारी के कारण चीजें धुंधली या टेढ़ी दिखती हैं। यह भी हो सकता है कि एक आँख अंधी हो, जिससे स्थान की गहराई का भान ही न रहे।

आँख और मानस का समन्वय शिक्षा का विषय है। केवल बुद्धि के विकास से यह समन्वय नहीं सध सकता। इसके लिए आँख और बुद्धि दोनों को किसी प्रवृत्ति में साथ–साथ लगना होगा। आज खासतौर पर इस बात की हमारे देश में हद से ज्यादा कमी हैं। बीसियों साल से केवल बौद्धिक प्रवृत्तियाँ ही शिक्षा का माध्यम रहीं, आँख की ट्रेनिंग के लिए कुछ भी नहीं किया गया। इसलिये हममें आँख और मानस के समन्वय का भयानक अभाव हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वैज्ञानिक चिंतन के लिए भी इस समन्वय की बड़ी आवश्यकता है। क्या यही कारण है कि आमतौर पर आज अधिकतर लोगों का चिंतन भी अवैज्ञानिक ही रह जाता है? जो भी हो, हमने जो निरीक्षण सयानों के वर्ग में किए हैं, उन्हें यहां पेश करते हैं। प्रशिक्षण–वर्गों की बात है। इस बात को समझाने के लिए अक्सर सारी कक्षा के सामने एक किताब जमीन पर रख देता हूँ और विद्यार्थियों से कहता हूं कि जैसा उन्हें दिख रहा है, इस पुस्तक का वैसा चित्र बनाएँ। इनमें से 90 प्रतिशत लोग अपनी नोटबुक में एक आयताकार बना देते हैं और बाकी 10 प्रतिशत कोशिश करते हैं, जैसा दिखता है वैसा बनाने की। एक–आध ही उनमें से ऐसा व्यक्ति होगा, जिसका स्केच रखी हुई किताब जैसा दिखता हो।

हर वस्तु के दो आकार होते हैं। एक तो उसका वह आकार, जो वास्तव में होता है और जो बदलता नहीं। यह उसका मूल आकार है। दूसरा आकार वह होता है, जो आँख को दिखता है। यह हमेशा बदलता रहता है और वस्तु को जिस कोण से, जिस आलोक–छाया की स्थिति में देखा जाता है, उस पर निर्भर करता है। समतल स्थान पर रखी हुई पुस्तक एक बाजू से देखने पर आयताकार नहीं दिखेगी। उसका आकार कुछ–कुछ 'पेरेलेलोग्राम' जैसा दिखेगा। हर वस्तु के बारे में यही बात लागू होती है।

जिन विद्यार्थियों ने पुस्तक का चित्र एक आयत बनाकर दिखाया था, उन्होंने उसे जैसा वे जानते हैं, वैसा बनाया था, यानी पुस्तक का मूल आकार। जो जानकारी पुस्तक के आकार के बारे में उन्हें थी, वही उन्होंने बनाया। स्थिति–विशेष में वह पुस्तक कैसी दिखती है, यह ट्रेनिंग उनको नहीं थी। दरअसल अधिकतर लोग इस तरह देखना ही नहीं जानते।

किसी वस्तु को पाँच मिनट के लिए सामने रख दीजिये। फिर हटाकर उनसे कहिये कि याद से इसका चित्र जैसा दिखता था, वैसा बनाइये। ऐसी हालत में तो और भी मुश्किल हो जायेगी। कुछ इने–गिने लोग ही ऐसे होंगे, जो इस प्रकार चित्र बना सकेगे। जिन्होंने अपने स्कूल–युग में रुचि के साथ ड्राइंग की होगी, उनमें से कुछ शायद सफलतापूर्वक ठीक निरीक्षण करके चित्र बना सकें।

यह तो केवल आकार की बात हुई। रंग आदि के बारे में भी यही बात है। एक ही रंग के दो शेड में फर्क समझना, किसी प्राकृतिक वस्तु के रंग का ठीक नाम बताना, यह सब कम ही लोग कर सकेंगे। हमारा एक गुलाब का बगीचा है। उसमें लगभग पैंतालीस प्रकार के गुलाब हैं। जाड़े में जब फूल का मौसम होता है, तो आश्रम में आनेवाले अनेक दर्शक ये फूल देखने भी आते हैं। उनमें से कइयों से इसके बारे में बातचीत भी होती है। यह बातचीत अक्सर इस प्रकार की होती हैः ''कितने प्रकार के गुलाब हैं आपके बगीचे में ?'' ''पैंतालीस प्रकार के।'' ''पैंतालीस ? लेकिन दिखते तो पांच या छह प्रकार के ही हैं। लाल, गुलाबी, सफेद, पीला....'' लाल में पांच–सात प्रकार के शेड है, यह सब उन्हें दिखता ही नहीं। यहां तक कि उनमें से बहुत से लोगों को यह बात दिखा देने पर भी समझ में नहीं आती। इसके लिए भी आँख को ट्रेनिंग देनी पड़ती है।

आलोक और छाया का प्रकृति को हर क्षण कितना बदलता रहता है, उसमें रूप का कितना भंडार पड़ा है, उससे आज हम वंचित रह जाते हैं। कला–शिक्षा के द्वारा प्रकृति की इस संपदा का द्वार खुल जाता है। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ने कहा है – यह है आर्ट। दृष्टि का भंडार पूर्ण कर देता है। जो देखा नहीं, उसे जब देखते हैं, अवाक रह जाते हैं। इसलिए तो है प्रत्यक्ष देखने में इतना आनंद! यही देखना है छवि (चित्र) का देखना।''

देखना तभी संपूर्ण होता है, जबकि वह दोनों तरह से हो– आँख से देखना और मन से देखना। इस बात को आचार्य अवनीन्द्रनाथ ने बड़ी सुंदर भाषा में व्यक्त किया है ''मनुष्य के मन में जो देखता हूं, वह मानवीय भाव

है और आँख से देखता हूं, प्रकृति का भाव। इन दोनों को मिला करके ही सृष्टि की परिपूर्णता है। दोनों ही होने चाहिए। मन का देखना भी चाहिए और आँख का देखना भी।''

गतिविधि

आप किसी बोतल को या घड़े को या किसी पौधे का हू ब हू वैसे चित्र बनाने की कोशिश करें जैसे वह आपको दिखता है और लेखक के कथनों की सत्यता का जाँच करें।

4. क. आँख से बारीकी से देखने से किन–किन बातों पर ध्यान जाता है।

4. 5 लावण्य–निर्माण

लावण्य–निर्माण शिक्षा और खासतौर पर कला–शिक्षा का एक मुख्य ध्येय है। इस बात पर संसार के सभी शिक्षा–शास्त्री जोर देते आए हैं और दे रहे हैं। अनेक प्राचीन संस्कृतियों के अध्ययन से भी पता चलता है कि व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा की जो योजना बनती थी, उसमें कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान था और व्यक्ति को एक–न–एक कला में अच्छी दक्षता प्राप्त करना आवश्यक होता था।

भारत की पुराण–गाथाओं, ग्रंथों और भारतीय अन्य शास्त्रों से पता चलता है कि शिक्षा में कलाएँ प्रमुख स्थान रखती थीं। प्राचीन और मध्यकाल में एक नागरिक या सुसंस्कृत व्यक्ति वह समझा जाता था, जो 'चतुष कला–प्रवीण' हो। ''प्राचीन भारत का यह रईस वह स्वयं इन कलाओं का जानकार होता था। नागरिकों को खास–खास कलाओं का अभ्यास कराया जाता था। केवल शारीरिक अनुरंजन ही कला का विषय न था, मानसिक और बौद्धिक विकास का ध्यान पूरी मात्रा में रखा जाता था। उन दिनों किसी पुरुष को राजसभा और सहृदय–गोठियों में प्रवेश पा सकने के लिए कलाओं की जानकारी आवश्यक होती थी, उसे अपने को गोठी–विहार का अधिकार सिद्ध करना होता था।''

जापान में हर शिक्षित व्यक्ति को, स्त्रियों को तो अवश्य ही फूलदान में सुंदर ढ़ंग के फूल सजाना आता है। जापान में यह कला समाज में ऊँचा स्थान रखती है ओर इसे काफी मेहनत करके सीखना पड़ता है। वहां की सब पब्लिक परीक्षाओं में फूल सजाने की परीक्षा भी होती थी और उसमें उत्तीर्ण होना ही पड़ता था। चीन की सभ्यता के अनुसार किसी राजा या खास ऊंची पदवीवाले व्यक्ति के गुणों का बखान करते समय किसी–न–किसी कला का पहले नाम आता ही है। या तो वह बड़ा कवि होगा या चित्रकार या केलीग्राफिस्ट या गायक आदि।

यूनान के दार्शनिक प्लेटो से सभी परिचित हैं। उनका लिखा हुआ 'रिपब्लिक' उनके आदर्श समाज का चित्र है। प्लेटो का दर्शन ही था कि शिक्षा में वह शक्ति होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति में छंद और सामंजस्य का निर्माण हो। उसके अनुसार – हमारे नागरिक का विकास पुरुष की अवस्था को पहुँचने के लिए केवल सुंदर और लावण्यमय वातावरण में हो। उसमें से बदसूरती और दुर्गुणों को निकाल दिया गया हो । अगर हमारे युवकों को जीवन में कुछ काम करना है, तो क्या उन्हें इस लावण्य–सामंजस्य को अपना शाश्वत उद्धेश्य नहीं बनाना चाहिए? हाँ, जरूर बनाना चाहिए। कोई शक नहीं कि चित्रकार की कला और दूसरी सभी सृजनात्मक और रचनात्मक कलाएँ इनसे भरी पड़ी हैं– बुनाई, कढ़ाई, वास्तुकला और हर तरह का उत्पादन का काम।'' संगीत के बारे में ''और इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि संगीत–शिक्षा दूसरे माध्यमों से कहीं अधिक शक्तिशाली माध्यम है, क्योंकि छंद और सामंजस्य का प्रवेश हृदय (आत्मा) के गहरे स्तर में होता है और वे उसके साथ जोर से बंध जाते हैं। उनसे लावण्य का निर्माण होता है। वे जिसे उचित शिक्षा मिली हो, उसे लावण्यमय बनाते हैं; और जिसे यह अंतरजीवन की शिक्षा मिली है, वह होशियारी के साथ कला और प्रकृति की कमियों और गलतियों को समझ लेगा। वह सच्ची सुरुचि के साथ जब सत्य की तारीफ करेगा, उससे आनंद–लाभ करेगा और उसे

अपने हृदय में अपना लेगा, बुरे से घृणा करेगा, उसकी निंदा करेगा। यौवन–काल में, जब उसे कारण भी नहीं मालूम होते, उसका इस तरह विकास होगा।''

व्यक्ति के विकास की प्रारंभिक अवस्था में कला–शिक्षा के द्वारा लावण्य–निर्माण होता है, यह एक शास्त्र के तौर पर प्लेटो ने प्रस्तुत किया। उन्होंने जब छंद और सामंजस्य का जिक्र किया, तो स्पष्ट ही है कि उनका मतलब तथाकथित कलाओं के छंद और सामंजस्य का नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन के सामंजस्य और छंद का है। भले–बुरे, गुणों–दुर्गुणों आदि को समझने के लिए जिस बोध की आवश्यकता है, कला–शिक्षा वह बोध प्रदान करा सकती है। यह विचार ढाई हजार साल पुराने दार्शनिक प्लेटो का ही नहीं, बल्कि संसार की सभी सभ्यताओं का है।

यह लावण्य कलाकार सीखता कहां से हैं? प्रकृति में इसका दर्शन होता है। इसलिये पहले प्रकृति में लावण्य और लालित्य की खोज–बीन करनी चाहिए।

हम यह मानते है कि सौंदर्य–निर्माण की कोशिश जीवन के ध्येयों में से एक है। प्रकृति की हर कोशिश 'जीवन' में संतुलन बनाने–लावण्य–निर्माण करने की है। 'प्रकृति' शब्द का मतलब व्यापक अर्थ में लिया गया है। मनुष्य भी प्रकृति का अंग है। मनुष्य का कुछ व्यवहार तो जान–बूझकर सचेत मानस द्वारा होता है और कुछ अनजाने में सहजात वृत्ति द्वारा। मनुष्य की ये प्रवृत्तियां उसी तरह काम करती हैं, जैसे प्रकृति की दूसरी सजीव वस्तुओं में उनका नैसर्गिक स्वभाव काम करता है। जहां तक लावण्य का प्रश्न है, प्रकृति का प्रयत्न हर समय और हर वस्तु में उसे निमार्ण करने का होता है। जैसे– एक पेड़, जिसकी एक तरफ की डाल अगर किसी कारण टूट गई हो और जो उसके कारण अपना संतुलन खो बैठा हो, यही कोशिश करता है कि संतुलन फिर से स्थापित किया जाए। वह जिधर की डाल टूटी है, उधर ही अपनी नई शाखाएं फेंकता है। अक्सर देखा यह गया है कि अगर दूसरा 'एक्सीडेंट' न हो, तो पेड़ का संतुलन कुछ वर्षों में फिर से कायम हो जाता है।

पहले–पहल चलने का प्रयत्न करनेवाले शिशु को देखकर मामूली व्यक्ति को लगता है कि वह लड़खड़ाकर चल रहा है। किंतु क्या वह उस नृत्यकार की तरह नहीं है, जो बारीक रस्सी पर खड़ा होकर नाचने (रोप डांस) की कोशिश कर रहा हो और अपना संतुलन संभालने के लिए इधर–उधर हाथ फैला रहा हो। वह शिशु भी अपने चलने में अपनी संतुलन लाने में लगता है। इन स्पंदनों के कारण जो 'पैटर्न' उसके शरीर में बनते हैं, वे वैसे ही होते हैं, जैसे कि एक नृत्यकार के शरीर में नृत्य के समय होते हैं। ये सब एक ही सिद्धांत के उदाहरण हैं। वह सिद्धांत यह है कि प्रकृति की हर चीज संतुलन और सामंजस्य के साथ विकास करती है। अगर यह संतुलन किसी दुर्घटना के कारण टूट जाए, तो प्रकृति का पूरा प्रयत्न संतुलन को फिर से सुधार लेने में लगता है।

समझ के लिए प्रश्न

4.5 आप शायद लावण्य शब्द से परिचित नहीं हैं – उपरोक्त चर्चा के आधार पर इन में से कौन सी बातों को आप लावण्य शब्द के साथ जोड़ेंगे:

अट्टहास, सुडौलपन, उद्दण्डता, सामंजस्य, शालीनता, फूहड, तीखापन, रंगीन, लज्जा, सौम्य, रूआंसा संतुलन

ब. लावण्य के बारे में सीखने के लिए क्या जरूरी है।

स. प्राचीन चिंतकों ने एक संभ्रांत नागरिक के गुणों में किस तरह के कलाओं का उल्लेख किया है।

5. उपयोगिता व सुन्दरता

प्रकृति की एक और कोशिश, ऊपर कहीं कोशिश के साथ–साथ चलती रहती है। उसके पीछे ध्येय मितव्ययिता उपयोगिता होती है। प्रकृति में हर वस्तु के निर्माण में यह प्रयत्न रहता है कि कम–से–कम व्यय

हो, यानी जितना जरूरी है, उससे अधिक न हो। किसी फल को–संतरे को ही लें। वनस्पति–शास्त्र के विशेषज्ञ से पता चलेगा कि उसके अंदर जो तत्व आदि लगे हैं, वे सब उसके निर्माण के लिए आवश्यक हैं। उसके अंदर जो तत्व आदि लगे हैं, वह भी कहते हैं कि बिलकुल गणित के हिसाब से ठीक परिमाण में होते है। उसमें कोई भी चीज ऐसी नहीं होती या इस प्रमाण में नहीं होती कि वैज्ञानिक यह कह सकें कि यह फिजूल व्यय किया गया है।

इन दोनों प्रयत्नों– सौंदर्य–निमार्ण और मितव्ययिता में इतना समन्वय है कि एक अवस्था में जाकर इन्हें 'एक ही ध्येय के दो नाम' कहा जा सकता है। जो शक्ति मितव्ययिता में लगती है, वही अंत में सौंदर्य के रूप में परिणत हो जाती है और जो सौंदर्य–निर्माण में खर्च होती है, वह उस वस्तु को संपूर्ण रूप देती है।

हमें ऐसा लगता है कि प्रकृति में कुछ ऐसे सिद्धांत, नियम आदि होंगे, जो ऊपर कहे दोनों प्रयत्नों के आधार होते होंगे। उसका भी कुछ गणित होता होगा। अनेक कला–विशेषज्ञ यह मानते हैं कि 'पैटर्न–मेकिंग' के पीछे एक गणित होता है। उस गणित को सीख लिया और उसका उपयोग सर्वजन के काम में ले लिया, तो वस्तु सुंदर बन जाती है। इस विचार की पुष्टि कई बातों से होती है। प्राचीन भारतीय मूर्तिकला के ऊपर कुछ शास्त्र हैं। उनमें मूर्तियों के निश्चित परिमाण आदि का जिक्र मिलता है। मूर्ति के हर अवयव का एक–दूसरे के साथ क्या परिमाण होना चाहिए, यह बिलकुल निश्चित रहता था। पुरानी मूर्तियों का 'इस प्रकार प्रत्यक्ष अध्ययन किया गया है। उनमें कुछ सर्वसामान्य 'परिमाण' पाए जाते हैं। उन्हें देखकर लगता है कि वे गणित के सिद्धांतों जैसे ही बुनियादी सिद्धांत हैं। यह बात वास्तुकला में और भी अधिक स्पष्ट है। मकान की लंबाई–चौड़ाई का परिमाण, उसकी खिड़कियां, दरवाजों आदि का बिलकुल गणित के हिसाब से निश्चित परिमाण होना चाहिए, ऐसा पुराने शास्त्र मानते आए हैं। यहां तक कि उनमें धार्मिक भावना तक जोड़ दी गई है। संगीत का सप्तक तो गणित की इस बात को सिद्ध करनेवाला एक सुंदर नमूना ही है।

इसका अर्थ यह है कि यह सिद्धांत सौंदर्य–बोध और मितव्ययिता या उपयोगिता (एस्थेटिक और फंक्शनल) सामान्य तौर पर अंतर्निहित है। अगर सच्ची मितव्ययिता यानी उपयोगिता (इसका अर्थ कम खर्चीलापन नहीं लिया जाए, बल्कि 'फंक्शनल' लिया जाए, यानी वस्तु का काम की दृष्टि से उचित उपयोग) की कोशिश होगी, तो मितव्ययिता उपयोगिता भी सधेगी। यह बात आसान नहीं है, क्योंकि आज हमारे विचारों में सौंदर्य और उपयोगिता इतनी अलग–अलग बातें बनकर बैठ गई हैं कि ऊपर कही गई बात मन में बैठने में कुछ समय लगेगा।

इस बात को आधुनिकतम डिजाइनर्स मानने लगे हैं और यह तभी समझ में आ जाता है, जबकि कुछ आधुनिक उपयोगी वस्तुओं को देखा जाए। इसी प्रश्न पर हर्बर्ट रीड लिखते हैं ''कहा जा सकता है कि कुछ उपयोगी वस्तुएँ कल्पना में भी कभी सुंदर नहीं बनाई जा सकतीं। मैं मानता हूँ कि इसकी संभावना कभी–कभी मुश्किल से होती है। पर कुछ निरीक्षण के बाद देख सकेंगे कि अनेक वस्तुएँ, जिनसे ऐसी आशा भी नहीं होती, एक प्रकार का ऐब्सट्रेक्ट (भावनात्मक) सौंदर्य रख सकती हैं। मोटरकार इसका एक स्पष्ट नमूना है, पर उससे भी अच्छा नमूना रेडियो–सेट का है। पिछले पाँच–दस वर्षों में सुंदरता की ओर उसका विकास कमाल का हुआ है। रॉजर फ्राइ (यूरोप के सुप्रसिद्ध कला–विशेषज्ञ) आंका करते थे कि क्या कभी टाइपराइटर भी सुंदर हो सकेगा, किंतु पिछले वर्षों में उसका नमूना कहीं अच्छा बनने लगा है, जो पहले से बे–मिलान है। हालांकि अभी भी कोई टाइपराइटर को एक कलाकृति नहीं मानेगा, पर उसका विकास अवश्य ही उसी ओर हो रहा है। ''

इस मुद्दे पर अधिक चर्चा करना हमारा विषय नहीं है, परंतु इससे यह बताने का प्रयत्न किया कि सौंदर्य–निर्माण के पीछे उपयोगिता का प्रश्न जुड़ा हुआ है, और दोनों की सतह में ऐसे कुछ नियम अंतर्निहित हैं, जो गणित के सिद्धांतों की तरह होते हैं और जिन्हें सीखा जा सकता है।

समझ के लिए प्रश्न

5.क. मितव्ययता से आप क्या समझते हैं – कंजूसी – या जरूरत के अनुसार कम से कम खर्च – या नियंत्रित व्यय – ऊपर के अंश के आधार पर अपना तर्क दें।

ख. लेखक यह क्यों मान रहें हैं कि मितव्ययता और सुन्दरता के बीच कोई संबंध है।

ग. आप अपने दैनिक जीवन में उपयोगी आने वाली ऐसी पाँच वस्तुओं के नाम गिनाएँ जिन्हें आप सुन्दर मानते हैं और पांच ऐसी उपयोगी वस्तुओं के नाम गिनाएँ जिन्हें आप सुन्दर नहीं मानते हैं। ऐसी भी चीज़ों के नाम गिनाएँ जो सुन्दर हैं मगर उपयोगी नहीं।

6. कला शिक्षण सभी के लिए जरूरी

कलाकार दो प्रकार के होते हैं– एक तो वे, जो केवल आंतरिक बोध (इंट्यूशन) के द्वारा सृजन करते हैं। कलाकार का दूसरा प्रकार वह होता है, जिसमें सृजनात्मकता बुद्धिप्रधान होती है। आंतरिक बोधवाली शक्ति सिखायी नहीं जा सकती, पर उस सृजनात्मकता का थोड़ा–बहुत ज्ञान आम व्यक्ति को जरूर सिखाई जा सकती है, जिसका आधार बौद्धिक होता है। ऊपर कहे गए सिद्धांतों को बुद्धि से खोजना, समझना और उपयोग करना शिक्षा का विषय है।

मनुष्य का जन्मजात गुण या क्षमताएँ जो भी हो पालन और शिक्षा के द्वारा एक संपूर्ण व्यक्ति बनने की शक्ति भी रखता है। इतनी चर्चा के बाद भी कुछ लोग यह कह सकते हैं कि कलात्मकता तो जन्मजात ही आती है, उसे सिखाया नहीं जा सकता। हां, काफी हद तक यह बात ठीक हो सकती है; मौलिक रचना करनेवाले कलाकार का जहाँ तक प्रश्न है, यह बात ठीक है। पर जहाँ तक हमने आम व्यक्ति के इसमें प्रवेश करने की आशा रखी है, वहाँ तक यह कठिन नहीं होनी चाहिए। क्या यह सच नहीं कि पुराने जमाने में कलाकार, शिल्पकार सभी वंश की परंपरा द्वारा बनते थे? पिता के बाद वह काम पुत्र करे, यह साधारण मान्यता थी। तो क्या हर पुत्र जन्मजात कलाकार होता था? यह सच है कि हर कलाकार का पुत्र मौलिक रचनाएं करने वाला कलाकार नहीं हो सकता था, पर एक स्तर तक तो उसे अपने 'धंधें' में विशेषज्ञ होना ही पड़ता था। इसी प्रकार आम मनुष्य की शिक्षा में कला–शिक्षा इसलिए जरूरी है कि वह कला–बोध का लाभ करे और साथ ही अपना व्यक्तित्व प्रभावकारी बना सके।

इस तरह की बुनियाद, जैसा कि प्लेटो ने कहा है, बचपन से ही डालनी चाहिए, क्योंकि अनेक ऐसी बातें होती हैं, जो एक खास उम्र में ही करनी ठीक होती हैं। नृत्यकार का शरीर तभी सुंदर और छंदमय बन सकता है, जब कि उसे बचपन से ही उसकी शिक्षा मिली हो। बड़े होकर शरीर को बदलना मुश्किल होता है। बचपन में अगर शरीर की ठीक ढलाई हो, तो बड़ी उम्र में भी वह ठीक रहता है। जो गला छुटपन से ही सध जाता है, उसमें स्वर सदा के लिए समा जाता है। संगीतज्ञ के गले का सुरीलापन कम उम्र से ही निर्मित होना शुरू हो जाता है। कला बोध जिस गहराई में बचपन से ही अभ्यास होने से प्रवेश करता है, वह बड़े होकर करना बिरलों के लिए ही संभव होता है। ये जो कला बोध (सेंसिबिलिटी) से संबंध रखनेवाले विषय है यानी सृजनात्मक और निमार्णात्मक विषय, उनके द्वारा जिस विकास की अपेक्षा है, वह बाल्यावस्था में ही होना शुरू हो जाता है। बचपन में अगर उसमें प्रवेश नहीं पा सके, तो बड़े होकर यह असंभव हो जाता है। बड़ा होने के बाद भी दरवाजा केवल उन्हीं लोगों के लिए खुलता है, जिनमें कुछ प्रतिभा होती हैं।

चित्रकला और मूर्तिकला या अन्य शिल्पों की शिक्षा के द्वारा जीवन की जो गुत्थियां सुलझती हैं, उनका सबसे महत्वपूर्ण समय बाल्यावस्था होता है। वही विकास का काल होता है। उस काल में आंनद का और तृप्ति का विशुद्ध अनुभव हो, तो विकास स्वस्थ होता है। कला शिक्षा इसी स्वच्छ लावण्यमय विकास का रास्ता है।

इस अध्याय में कला शिक्षा क्यों, इस प्रश्न पर चर्चा की। कला शिक्षा के अन्य पहलू भी हो सकते हैं, पर जिनकी हमने यहां चर्चा की, वे जगत के आज के संदर्भ में विशेष महत्व रखते हैं। समाज में हर तरह के सांस्कृतिक दैन्य का दर्शन होता है। मन के तनाव और दबाव आदि के कारण यह हालत है या बोध की कमी के कारण, या सच्ची दृष्टि के अभाव के कारण यह दुर्दशा है, इसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं। हां, यह जरूर है कि मनुष्य शांत और आनंदित तभी रहता है, जब कि उसकी शारीरिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। कला शिक्षा जिस सत्यदृष्टि का निर्माण करती है, उसके द्वारा हर तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति होने में मदद मिलती है। आखिर तो आनंद–लाभ ही जीवन का उद्धेश्य है।

नन्दबाबू की पुस्तक 'शिल्प कथा' का आखिरी पैरा है– ''कुणाल जातक में कामलोक की कथा आती है ... उससे परे रूपलोक, उससे भी परे अरूपलोक। मेरा कहना है कि उससे भी परे आनंदलोक है। कामलोक आसक्ति है, इसलिए अंधापन है। रूपलोक में पहुंचने पर जीवन में अखिल जीवन के कुछ स्पंदन का अनुभव हुआ। आंनदलोक में रस है। उपनिषदों में कहा गया है, रसो वै सः।'' (रस ही ईश्वर है)

समझ के लिए प्रश्न

6.क. इनमें से लेखक का आशय क्या है– सही वाक्यों पर सही का निशान लगाएं।

- **कलाकार तो जन्मजात होता है– शिक्षा से बनाया नहीं जाता है।**
- **सामान्य लोगों को कला शिक्षा की जरूरत नहीं है क्योंकि वे कलाकार बन ही नहीं सकते हैं।**
- **शिक्षा के माध्यम से कलाकार का आंतरिक बोध तो नहीं निर्मित किया जा सकता है मगर कला की समझ जरूर निर्मित की जा सकती है।**
- **हर इन्सान को कला की समझ की जरूरत है ताकि वह जीवन का पूरा आनन्द लें और खुद सृजनशील बने।**
- **बचपन में कला शिक्षा देने से ज्यादा फायदा बड़े होने पर कला शिक्षा देने से होगा।**

सारांश

1. कला सिखाने का मतलब केवल हाथ के काम में दक्षता हासिल करना नहीं होता। कला–शिक्षा के पीछे व्यक्ति के चरित्र, उसके सामाजिक बोध और सौंदर्य–बोध का विकास करने का उद्देश्य होता है।
2. कला के द्वारा हमारे जीवन में सौंदर्य–निर्माण होता है, यानी रोजाना के जीवन में इस्तेमाल चीजें सुंदर बनें, यह कला का एक ध्येय है।
3. जो चीजें आदमी बनाए, वे खूबसूरत हों, इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता है कि समाज के हर व्यक्ति को सुंदर वस्तु चुनने की विवेक–बुद्धि हो। हमारे समाज में सुंदर और बदसूरत वस्तु को परखने की शक्ति कम होती दिखती ही नहीं।
4. इसका कारण – कला का जीवन के साथ जो समन्वय होना चाहिये था, वह टूट गया है। इस समन्वय के टूटने का मुख्य कारण औद्योगिक उत्पादन है।
5. अगर सचमुच नयी कलाकृति बनाना है तो कलाकार को परंपरागत कला और प्रकृति दोनों का गहरा अध्ययन करना पड़ेगा। आज तक जितनी भी मूल कृतियां कला में हुई हैं, वे इसी गहरे अध्ययन के नतीजे हैं। इसलिये समाज में व्यक्तियों की सृजनात्मक शक्ति का विकास करने के लिए दोनों चीजें उपलब्ध होनी चाहिए परंपरागत कला और प्रकृति।

6. कला–साधना के लिए प्रकृति को समझाना पड़ता है, उसका पूरा–पूरा अध्ययन करना पड़ता है। कलाकार का यह अध्ययन सतही नहीं होता। कलाकार इस अध्ययन के द्वारा प्रकृति में इतना एकात्मबोध अनुभव करता है कि धीरे–धीरे सब–के–सब उसके मित्र बन जाते हैं। कला–शिक्षा का यह भी उद्धेश्य है कि व्यक्ति को प्रकृति के साथ इस बंधुत्व का अनुभव हो।

7. मन से व आँखों से देखना बीसियों साल से केवल बौद्धिक प्रवृत्तियां ही शिक्षा का माध्यम रहीं, आँख की ट्रेनिंग के लिए कुछ भी नहीं किया गया। इसलिये हममें आँख और मानस के समन्वय का भयानक अभाव हैं। हर वस्तु के दो आकार होते हैं। एक तो उसका वह आकार, जो वास्तव में होता है और जो बदलता नहीं। यह उसका मूल आकार है। दूसरा आकार वह होता है, जो आँख को दिखता है। यह हमेशा बदलता रहता है और वस्तु को जिस कोण से, जिस आलोक–छाया की स्थिति में देखा जाता है, उस पर निर्भर करता है। रंग पहचानना, रोशनी व छाया का प्रभाव देखना व पूर्णता से देखना आदि क्षमताओं को विकसित करने के लिए कला शिक्षण की आवश्यकता है। कला शिक्षा का एक उद्देश्य है लावण्य का विकास। लावण्य कलाकार सीखता कहां से हैं? प्रकृति में इसका दर्शन होता है। इसलिये पहले प्रकृति में लावण्य और लालित्य की खोज–बीन करनी चाहिए।

8. उपयोगिता व सुन्दरता– उपयोगी चीजें सटीक व कम से कम व्यय से बनते हैं और यही सुन्दरता का आधार है।

9. कला शिक्षा के द्वारा जीवन की जो गुत्थियां सुलझती हैं, उनका सबसे महत्वपूर्ण समय बाल्यावस्था होता है। उस काल में आंनद और तृप्ति का विशुद्ध अनुभव हो, तो विकास स्वस्थ होता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. कलाबोध–युक्त पाठशाला और सामान्य पाठशाला से कैसे फर्क होगा – अपने विचार व कल्पना के आधार पर विस्तार से लिखें।

2. क्या आप देवी प्रसाद के इस विचार से सहमत हैं कि आधुनिक शाला भी हमारे कलाबोध के ह्रास के लिए जिम्मेदार रही है – कारण सहित समझाएँ।

3. बहुत लोग मानते हैं कि कला वही है जो प्रसिद्ध संगीतकार, मूर्तिकार, चित्रकार, नाटककार आदि रचते हैं। उन कलाकारों में जन्म से ही कला के प्रति रुझान होता है और वे विशिष्ट शिक्षा से अपनी कला को प्राप्त करते हैं। आप किस हद तक इस मत से सहमत हैं और इससे भिन्न मत रखते हैं – तर्क सहित अपना मत रखें।

4. देवी प्रसाद प्रकृति और कलाबोध–युक्त मनुष्य के बीच किस तरह का रिश्ता देखना चाहते हैं।

5. चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत या नृत्य साधने से हमारे देखने, सुनने, स्पर्श आदि क्षमताओं में क्या फर्क आता है, अपने अनुभव के आधार पर बताएँ।

6. क्या आप देवी प्रसाद के इस कथन से सहमत हैं कि प्रकृति का प्रयत्न हर समय और हर वस्तु में उसे निर्माण करने का होता है – क्या आपने इसका अपवाद भी प्रकृति में देखा है। अपना मत तर्क सहित दें।

7. आप इस लेख में प्रस्तुत देवी प्रसाद के किस बात से सबसे अधिक सहमत हैं और किस बात से अहमत है– कारण सहित लिखें।

प्रोजेक्ट्स

1. अपने क्षेत्र की पारंम्परिक खिलौनों की सूची तैयार कीजिए एवं उनकी एक प्रदर्शनी आयोजित कीजिए।
2. अपने क्षेत्र में उपलब्ध हथकरघे से बने कपड़ों के नमूने इकठ्ठा कीजिये और उनकी व आधुनिक कपड़ों की तुलनात्मक प्रदर्शनी तैयार कीजिये।
3. प्राकृतिक रूप से मिलने वाले एक ही रंग के अनेक शेड की चीजें इकट्ठे करके एक फाईल में चिपकाएं – जहाँ तक संभव हो उन रंगों–शेडों का हिंदी या अंग्रेजी में नाम पता कीजिये।
4. अपने आस–पास के कुम्हार, बढ़ई, शेड्स के कारीगर इत्यादि कारीगरों से उनकी कला व आजीविका के बारे मे चर्चा करके उन अनुभवों को लिखिए।
6. किन्हीं दो पेड़ों को हफ्ते भर रोज देखें और उनके बारे में विस्तार से लिखें।
7. अपने दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले सुन्दर चीजों की एक प्रदर्शनी शाला में आयोजित कीजिये।

1.कला क्या है, कला शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?

पठन सामग्री 4

बालकों की सृजनात्मक क्षमता की हत्या

गिजुभाई बधेका

लेखक परिचय

प्रस्तुत आलेख गुजरात के महान शिक्षाविद् गिजुभाई बधेका द्वारा लिखा गया है। इसे हमने उनकी पुस्तक, प्राथमिक शाला में कला और कारीगरी शिक्षा से लिया है। इस लेख में गिजुभाई ने बहुत ही तीखे अंदाज में सवाल उठाया है जिस माहौल में स्वतंत्रता व आनंद नहीं है वहां कला सृजन कैसे हो सकता है। इसे ध्यान से पढ़ें तथा अपने ही बचपन व स्कूल के अनुभवों को याद करें।

गिजूभाई, **प्राथमिक शाला में कला व कारीगरी शिक्षण**. मॉंटेसेरी बालशिक्षण समिति, राजलदेसर चूरु, 2006

प्रस्तावना

बड़े व्यक्ति अक्सर ही यह भूल जाते हैं कि वो भी कभी बच्चे थे और नए नए अनुभवों को प्राप्त करना चाहते थे। हमेशा कुछ नया करना, बनाना चाहते थे लेकिन बड़ों के द्वारा हमेशा ही उन्हे टोका रोका जाता था। उस समय उनके बालमन में किस तरह के प्रभाव पड़ते थे। किंतु एक परंपरा की तरह उन्होने भी वयस्क होते होते सिर्फ यही याद रखा कि बच्चों को रोकना टोकना सही है। यह जो व्यवहार बड़ों के द्वारा घर में ही शुरू होता है वह विद्यालय तक आते आते और भी बढ़ जाता है। पुरस्कार, प्रदर्शन, दंड, और परीक्षा, इन चार कारणों से ही बच्चे बंध जाते हैं। प्रस्तुत इस लेख में गिजुभाई ने इन्हीं सब बातों को सटीक उदाहरणों के द्वारा समझाया है कि किस तरह घर और विद्यालय मिलकर बच्चों की सृजनात्मक क्षमताओं को खत्म कर देते हैं। किस तरह समाज में इन्हीं कारणों से कला का विनाश हो रहा है। बच्चों की सृजनात्मक क्षमताओं को किस प्रकार स्थान और माहौल देने की जरूरत है।

पठन सामग्री की रूपरेखा

- प्रकृति में सृजन और स्वच्छंदता तथा समाज में सृजन का हनन
- बालकों की सहज सृजनशीलता
- घरों में सृजन की हत्या
- शालाओं में सृजन का हनन
- सच्चे सृजन की शर्तें

1. प्रकृति में सृजन और स्वच्छंदता तथा समाज में सृजन का हनन

कुछ हत्याएं पीनल कोड की धारा के अधीन नहीं आतीं। उन्हें लेकर कानूनवेत्ताओं को अपराध जैसी कोई चीज़ नज़र नहीं आती। कानूनवेत्ताओं की न्याय–नीति संबंधी मर्यादाएँ सिर्फ पीनल कोड से बंधी होती हैं। जीवन के प्रति होने वाला ऐसा एक अपराध है बालक की सृजन–शक्ति की हत्या।

किंतु सृजन का अर्थ क्या है?

नन्हीं–सी कंकरी और गगनचुंबी पहाड़, ओस की नन्हीं सी बूंद और विशाल महासागर, चीटों–चीटियों से भी छोटे जीव–जंतु और जिराफ व हाथी के समान विशालकाय प्राणी, पैरों तले कुचली जाने वाली घास और ताड़

के समान ऊंचे वन–वृक्ष, प्रखर तेज वाला सूर्य और शीतल किरणों वाला चाँद–ये सभी सामर्थ्य से परिपूर्ण आदि सृष्टि के सृजन हैं।

सिर पर तारों से जड़ा आकाश, पैरों तले खनिजों से भरी–पूरी धरती, मनमोहक रंगबिरंगी तितलियाँ और मधुर –कोमल कंठ से गाने वाले भाँति–भांति के पक्षी, यह समूचा वनस्पति जगत, यह सारा का सारा जीव–जंतु जगत यह विशाल पशु–पक्षियों की दुनिया, सब के सब एक–एक से अद्‌भुत्, एक–एक से सुन्दर–यह सब सृजनकर्त्ता की सृष्टि है। बर्फीले प्रदेश में रहने वाले हिम–मानव और प्रचंड धूप में रहकर काजल की तरह काले बने अफ्रीकावासी, यूरोप के गोरे लोग, चीन के पीले लोग, नाटे कद के गोरखे और ऊँचे–लंबे पोटेगोनियन–ये सभी एक ही पिता की संतानें हैं, सब के सब उसी के सृजन हैं।

कथा आती है कि वह एक था। उसने कहा– 'मैं एक हूँ, अब अनेक बनना चाहता हूँ– एकोहं बहुस्याम।' जब उसके मन में अपने अंदर विराजमान समग्र स्वरूप को प्रकट करने का विचार जागा, तभी इस सृष्टि का जन्म हुआ। उसके अंतःकरण में विद्यमान गूढ़ और प्रच्छन्न संसार का आविष्कार हुआ अर्थात् इस प्रकृति का निर्माण हुआ।

जब उसने बाहर निकलकर स्वयं को देखने का विचार किया तो उसे यह ब्रहाण्ड दिखाई पड़ा। कहा जाता है कि सृजन करना ब्रहण का कर्त्तव्य है अर्थात् स्वभाव है। अपने स्वभाव के अनुसरण में से ही यह सारी लीला प्रकट हुई है।

यह तो प्रकृति की बात हुई : प्रभु के सृजन की बात हुई। ईश्वर ने मनुष्य का सृजन किया और उसे अपनी सृजन–शक्ति प्रदान की। मनुष्य के सृजन भी मनुष्य की अनंत–शक्ति के समान ही अगणित हैं। साहित्य एक सृजन है, चित्रकला दूसरा सृजन है, संगीत तीसरा सृजन है और स्थापत्य चौथा सृजन है। इस तरह गिनने बैठ जाएं तो मनुष्य के द्वारा बनाई गई अनेकानेक कृतियों को गिनाया जा सकता है।

इस प्रकार कहना न होगा कि समूचा विश्व प्रकृति के तथा मनुष्य के सृजनों से चारों ओर भरा हुआ है, सुशोभित है।

वर्षा होती है, नदी–तालाब सब छलाछल भर जाते हैं, धरती हरी साड़ी पहन लेती है, पेड़–पौधे मस्ती से डोलने लगते हैं। पशु–पक्षी कल्लोल करने लगते हैं, सूर्योदय या सूर्यास्त होता है कि पल–पल समूचे आसमान में नए–नए रंग छाए नजर आने लगते हैं, वसंत ऋतु आती है और वनदेवी नव–पल्लवित होती है, फल–फूलों से उसकी गोद भर जाती है, मोर–कोयल कलरव करने लगते हैं, भंवरो–तितलियों के रंग–बिरंगे पंख फड़फड़ाने लगते हैं– ये सब और ऐसे अन्य अनगिनत प्राकृतिक, सृजन प्रकृति के नियमानुसार होते ही रहते हैं और होते ही रहेंगे। इनके स्वतंत्र विकास में न कोई बाधक बनता और न ही बन सकता है। इनके लिए न तो कोई सामाजिक रुढ़ि का बंधन है और न धार्मिक बेड़ियों की कोई कैद है। यही कारण है कि प्रकृति के तमाम सृजन नित्य नए, सदैव ताजे, सदैव मोहक और सदैव सरस बने रहते हैं। हां, प्रकृति को भी नियंत्रित करने वाले मनुष्य हैं। प्रकृति के वन–वैभव को नष्ट करके रेलगाड़ियाँ चलाने वाले, स्वच्छंद भाव से विचरण करने वाले पशु–पक्षियों को पिंजरों में बंद करके, उनको हंटर जमा कर सरकस के खेल दिखाने वाले लोग यहां मौजूद हैं। प्रकृति को तिजारत का साधन बनाने वाले जड़वादी लोगों से यदि प्रकृति देवी भयभीत न हो उठे, तो कैसा आश्चर्य! लेकिन अभी तक प्रकृति की हत्या नहीं हो सकी है, न हो सकेगी। प्रकृति के प्राण बड़े ही प्रबल हैं। लेकिन मनुष्य द्वारा किए गए सजृन का हनन लंबे समय से होता चला आ रहा है और होता ही रहता है। जब–जब भी मनुष्य ने अपने सृजन के हनन के खिलाफ बगावत की है, तब–तब स्वयं मनुष्य का हनन हुआ है। इतिहास ऐसे उदाहरणों से अटा पड़ा है। हनन का यह काम हमारी संस्थाएं करती हैं, रूढ़ियों की गुलामी में फंसा हमारा समाज करता है, जड़वत बने हमारे शास्त्र करते हैं। सिर्फ परिणाम देखने वाली हमारी शिक्षण–संस्थाएं करती हैं तथा अज्ञान के अंधकार में निमग्न हमारे घर–परिवार करते हैं। लगता है मानो इन सब ने मानवीय आत्मा के आविर्भाव को कुंठित करने का सामूहिक प्रयत्न किया है और नई–नई सोची–समझी कार्यवाही की है।

इसके बावजूद कई बीज ऐसे होते हैं जो पत्थर को तोड़कर फूट निकलते हैं और प्रबल आँधी–तूफान में भी स्थिर बने रहते हैं, इसी प्रकार कुछ प्रबल आत्माओं ने उपर्युक्त संस्थाओं के संकीर्ण तट–बंधों को तोड़कर सृजन के सागर को उछाला है और उसमें से भांति–भांति के कलात्मक मोतियों का बहुमूल्य उपहार मानव जाति को प्रदान किया है। इसके विपरीत जहाँ–जहाँ बंधनों में जकड़े हुए गुलाम मनुष्य ने सृजन कार्य किया है, वहाँ–वहाँ वह सृजन रुग्ण एवं विकृत बना है, सजृन का, सृजनकर्त्ता और सृजनहार का अपमान ही हुआ है। इसके दृष्टांत हैं ये अनाथालय, कलाकारों की निर्माल्य कृतियाँ, कवियों की उदरपूर्ति वाली हताशा काव्य कृतियाँ, ये संगीत की मजलिसें, नाट्य मंच, मासिक पत्र–पत्रिकाएँ और प्रदर्शनियाँ आदि।

अपने ही विचारों का आग्रह रखने वाला मनुष्य अपनी भावी पीढ़ी को अपनी शक्ति तथा अपने ज्ञान की विरासत सौंपने में अपना धर्म और अभिमान समझता है। वहीं इस बात का निर्णय भी करता है कि बालकों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वस्तुतः इस निर्णय में ही बालक की सजृन–शक्ति का हनन छिपा है।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

1.क. सही प्रश्नों पर सही का निशान लगाएं– (लेखक के अनुसार)

- **सबसे पहले केवल ईश्वर था**
- **सबसे पहले अनियमित ब्रह्माण्ड था जिसे ईश्वर ने नियम कानून दिया**
- **ईश्वर ने अपने अंदर जो संभावना व कल्पना छिपी थी उसे बाहर विश्व का रूप दिया**
- **ईश्वर ने मनुष्य को बनाया ताकि वह उसके आदेशों का पालन करें**
- **ईश्वर ने मनुष्य को बनाया उसे अपनी सृजन–शक्ति दी।**
- **हमारे चारों ओर सृजन का ही बोलबाला है – ईश्वर का, प्रकृति का और मनुष्य का।**

ख. लेखक के अनुसार प्रकृति का सृजन सदैव मोहक, सरस व ताज़े होने के कारण क्या है?

ग. मनुष्य के सृजन का हनन से क्या तात्पर्य है – क्या आप इसके कुछ उदाहरण बता सकते हैं?

घ. वयस्क लोगों के कौन से कार्य बच्चों के सृजनशक्ति के हनन का कारण बन जाते हैं?

2. बालकों की सहज सृजनशीलता

घर और विद्यालय दो ऐसे स्थल हैं जहॉ बालकों की सृजनशीलता का सहज स्वाभाविक रीति से विकास होता है और यही वे स्थल हैं जहाँ उनके सृजन को रोकने, विकृत करने अथवा निर्मूल करने का काम होता है। जो लोग अपनी आँखों को खुला रखकर देखते हैं उन्होंने देखा होगा कि बालक धूल में लकीरें खींच रहा है, वर्षा ऋतु में गीली मिट्टी से लड्डू सांध रहा है, मिट्टी से पकौड़े अथवा चकला–बेलन बना रहा है, गीली मिट्टी की ढेरी में पैर डालकर मकान बना रहा है अथवा माटी की दीवार बना कर वर्षा के पानी को रोक रहा है अथवा पत्थरों व गारे से छोटा–सा मकान बना रहा है। उन्होंने देखा होगा कि सरकंडे के गूदे से बालक बैलगाड़ी अथवा खाट बना रहा है कहीं आटे से भरी परात में हाथों की छाप अंकित कर रहा है या तरह–तरह की डिजाइनें बना रहा है, यदि मां ने चावल निकाल रखे हैं तो उन्होंने बालक को उसमें गड्ढा बनाकर रंगोली या गोलाकृति बनाते देखा होगा। कहीं बालक हाथ में आई पेंसिल से कागज पर या कोयले से दीवार पर टेढ़ी–तिरछी लकीरें बना रहा है, कहीं कैंची से अपने या दूसरों के बाल काट रहा है अथवा कागजों या कपड़ों के टुकड़े काट–काट कर तरह–तरह की नई आकृतियां बना रहा है, तो कहीं बेली हुई रोटी पर कटोरी या गिलास रखकर उसकी मदद से नई–नई ज्यॉमितिक आकृतियाँ बना रहा है।

यदि आँखें हैं तो उन्होंने बालक को अपने छोटे–छोटे हाथ–पैर हिलाते, तालियां बजाते या नाचते–कूदते देखा होगा। अवश्य ही उन्होंने बालक को कभी फूलों की साज–सजावट करते, कभी घर के बर्तनों को सजा–सजा कर रखते, कभी पिताजी की किताबों को सिलसिले से रखते, तो कभी घर में आए मेहमानों के जूते एक कतार में रखते देखा होगा। उन्होनें प्रायः देखा होगा कि बालक अपनी परछाई पर खड़ा होकर अपनी नकल किया करता है या फिर दूसरों की नकल उतारता है।

यदि हमने गौर किया है तो अवश्य ही नन्हें बालक को बर्तन गिरा कर उसकी ध्वनि पहचानने, दरवाजे की साँकल खटखटा कर, घंटी बजाकर अथवा ढोल–झांझर बजाकर उनको ध्वनि–संगीत सुनने की कोशिश में लीन देखा होगा। आपने देखा होगा कि बालक किसी अलमारी पर बारबार अपने हाथों की थाप देता रहता है या खाली झूले को घंटों झुलाता है या खाट पर बैठकर अपने पैर हिलाते–हिलाते एक प्रकार की ताल का अनुभव करता है। हमने छोटे बच्चों को हँसते हुए आपस में मिलकर एक–दूसरे को प्रेम–चुम्बनों से नहलाते तथा निर्ब्याज प्रेम का अनुभव करते देखा होगा। हमारे लिए ऐसे बालक नितांत अपरिचित–अनजान नहीं होते, जो दिन–दिन भर कोई एक शब्द गुनगुनाते फिरते रहते हैं अथवा किसी कहानी की तुकबंदी को कई–कई दिनों तक याद कर करके रटते रहते हैं, अथवा जो कभी आसमान के नीचे लेटे–लेटे गगन–विहारी बालकाव्य की रचना करते है या गर्मियों की किसी दोपहरी में अर्द्ध–जाग्रत, अर्द्ध–निद्रित अवस्था में जो प्रकृति की या मनुष्य की कृति की छाप पर से अथवा घर–बाहर के अनुभवों से रंग–बिरंगे सपनों की रचना करते रहते हैं।

बालक की ये तमाम कृतियाँ बाल–सृजन के व्यक्त–अव्यक्त, स्पष्ट–अस्पष्ट, छोटे, लेकिन सादे व सुंदर नमूने हैं। इनमें कहीं संगीत है, कहीं साहित्य है तो कहीं कला है। स्थापत्य और शिल्प के बीज भी इनमें हैं। कदाचित् किसी चित्रकार को बालक की इन छोटी–छोटी रेखाओं में समय तथा साधनों का अपव्यय नजर आए, कदाचित् किसी गवैये को बालक का गायन कर्णकटु और बेसुरा लगे; कदाचित् किसी नामी साहित्यकार की दृष्टि से बालक की नन्हीं कली–सी खिलती वाणी व्यर्थ का प्रलाप मात्र हो। यदि ऐसा लगता है तो भले ही लगे। लेकिन जो व्यक्ति बाल मन के गहन गंभीर प्रदेश से सुपरिचित है, जिसने बालक के विकास को एक–एक डग अपनी नजरों से देखा है, उसे पूर्ण विश्वास है कि इन्हीं रेखाओं के पीछे भावी चित्रकार खड़ा है, गारे–पत्थर के नन्हें मकानों के पीछे किसी वास्तुकला–विशारद की आत्मा विद्यमान है, गारे के बने छोटे–छोटे सांचों में मोम की पुतलियाँ बनाने वाला या संगमरमर का अद्‌भुत् शिल्प रचने वाला कोई समर्थ शिल्पी छिपा है; छोटी–छोटी इल्लियों को संग्रहीत करने वाला या तितलियों के पंखों और उनके सुंदर रंगों को देखने वाला या तो कोई चित्रकार है या कोई शोधकर्ता है या विश्व–प्रेमी है। ऐसा व्यक्ति छोटे–छोटे दो पत्तियों वाले आम के नन्हें पौधे में किसी माली की भांति आम के दर्शन करता है, एक ग्वाले की छोटी–सी बछिया में दूध–दही–घी के दर्शन करता है। इसी तरह वह व्यक्ति भी बालकों के छोटे–छोटे सृजन में कला की विश्वविख्यात कृतियों के –पोम्पई के स्तंभों, ताजमहल के सौंदर्य, रैफेल व रवीन्द्रनाथ की चित्रकृतियों, टेगौर की गीतांजली अथवा टालस्टाय की लघु–कथाओं के दर्शन करेगा।

लेकिन यह सब वही कर सकता है जिसके पास बालकों के इस वैविध्यपूर्ण सृजन को देखने समझने की दृष्टि हो। ऐसे ही लोग बाल–सृजन का सम्मान करते हैं, उनमें रस का संचार करते हैं, उनकी सामग्री को समृद्ध बनाते हैं तथा उन्हें प्रोत्साहित करते हैं।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

2.क. लेखक के अनुसार बच्चों के बचपन के खेलों में हम भावी कलाकार के लक्षण देख सकते हैं और वे इसके कई उदाहरण देते हैं। क्या आप बता सकते हैं कि निम्न कलाविधाओं के क्या परिचय बच्चे अपने खेलों में देते हैं।

- **संगीत**
- **नृत्य**
- **वास्तुकला**
- **चित्रकला**

3. घरों में सृजन की हत्या

पर जरा हम अपने घरों में थोड़ा झाँककर तो देखें और इस बात की छान–बीन तो करें कि वहां बाल–सृजन की क्या दशा है! आप किसी भी घर में जाकर देखेंगे तो वहां आपको कुछ इस तरह की बातें सुनने को मिलेंगी :'हाय हाय, अरे ओ नासपीटे! तूने गूंदे हुए आटे का यह चूहा क्यों बनाया है? अब तो तू चुप हो जा। बहुत राग अलाप लिया। मेरा तो सिर दुखने लगा है। बड़ा गवैया बन गया है।' 'अबे गधे! तूने यह दीवार क्यों काली कर डाली? बस, कोयला हाथ आया नहीं कि तूने रेलगाड़ी, पुल और नदियाँ बनाई नहीं! याद रख, इनसे पेट नहीं भरेगा और तू भूखा मरेगा, भूखा!'

आप किसी दूसरे घर के पास से निकालेंगे तो वहाँ आप देखेंगे कि बेटे ने पिता की स्याही से अपना मुंह रंग लिया है और मूंछें बना ली हैं। बाप बेटे को चांटा जमाते हुए कह रहा है– 'बोल, फिर कभी करेगा ऐसे? कहने दे तेरे मास्टरजी से।'

किसी बालिका को अपने मन की मौज में नाचते या हाथों–पैरों से अभ्यास करते देखकर उसकी मां उससे कह रही होगीः 'अरी ओ अभागिन! तू जरा इधर मर! अभी धुनती हूं तेरी पीठ। ये नखरे यहाँ नहीं चलेंगे। ये तो नायकों के लच्छन हैं।'

कोई बालक अपने भीतर की नाट्यवृत्ति को व्यक्त करने के लिए पक्षियों जैसी आवाज निकालेगा अथवा किसी के हावभाव की अनुकृति कर रहा होगा कि मां उससे कह रही होगी 'तू बड़ा नौटंकी बाज़ बन रहा है। याद रख, अगर तूने किसी की नकल उतारी तो पिटाई कर दूंगी।'

बालक–बालिकाओं की इच्छा होती है कि मिलकर साथ–साथ खेलें। वे सहजीवन की पहली सीढ़ी पर चढ़ना चाहते है। प्रेम की दुनिया के अव्यक्त अनुभवों को अपने अनुभवों की सीमा मे लाने का प्रारंभ करते हैं, तभी खिड़की में से झाँककर माँ डपट भरी आवाज में कहती हैः 'अबे ओ नादीदे! उधर कहां जा रहा है, लड़कियों के संग खेलने?' दूसरी तरफ से लड़कियों को मां कहेगी 'भला इन लड़कों के साथ तुम कैसे खेल सकती हो? वे ठहरे लड़के!' मान लें कि घर में कोई नन्हा बालक है। बड़ी बहन की इच्छा है कि छोटे भाई को खिलाए। भाई के प्यार में पली बहन अपने छोटे भाई को गोदी में लेकर सीने से दबाती हुई उसे चूमने लगती है कि तभी माँ गरजती हुई आकर कहती हैः 'अरी ओ अभागिन! क्या तू इसे मार डालना चाहती है? हाथ में से छूट जाएगा तो? नीचे लिटा दे इसे!'

पिता भी माँ से कुछ कम नहीं। उन्हें देखते ही बच्चे सहसा सहम जाते हैं, किसी कोने में छिपकर बैठ जाते है। माँ चाहे जितनी मारपीट क्यों न करती हो, पर बालक उसकी गोद में जा कर छिप जाता है। भला ऐसे पिता के साये में सृजन कैसे संभव है? यदि स्याही से हाथ गंदे हो गए या पेंसिल से दीवार पर लकीरें खींच दी तो पिता कहेंगे 'चल, रख दे यह सब एक तरफ सबक याद करने बैठ।' सृजन की ऐसी हत्या के अनेकानेक उदाहरण हैं, तभी तो आज की हमारी मामूली–सी कला, निष्प्राण–सा साहित्य और रसविहीन नाट्य–प्रयोग हमारी आँखों के ही सामने होली की तरह धू–धू करके जलते हैं। इन सब के उपरांत हमें आशा है कि कोई ऐसा बिरला पिता प्रकट होगा जो अपने बालक के प्रत्येक बोल में साहित्य रूपी अमृत के दर्शन करेगा, उस अमृत का पान करेगा और उसका पोषण करने वाला बनेगा, आशा है कि कोई ऐसा कला–रसिक पिता मिल जाएगा, जो अपने बालक को मूंछे बनाने के लिए रंग लाकर देगा अथवा कपड़ों के टुकड़ो को रंगने के लिए तरह–तरह के रंगों की व्यवस्था

कर देगा और रंग–बिरंगी खड़िया मिट्टी लाकर दिया करेगा, अवश्य ही कोई ऐसी उदार माँ मिल जाएगी जो बालक को हल्दी, हींग, नमक, मिर्च इकटठा करने देगी और उनसे रंग बनाने के प्रयोग करने देगी; आशा है कोई ऐसी कला रसिक माँ भी होगी, जो गारे–माटी लगने से अधिक सुंदर बने अपने बालक को ललक के साथ उठाकर उसको चूमेगी और खड़िया–मिटट्ी से या पेंसिल से बालक द्वारा बनाई गई आड़ी–टेढ़ी रेखाओं को संभाल कर अपनी तिजोरी में रखेगी और किसी चित्रकार को अपने घर आया देखकर उससे कहेगी– 'देखिए, ये चित्र मेरी इस पागल बेटी ने बनाए हैं।' अथवा कोई ऐसी अलबेली माँ भी मिल जाएगी जो दूर बैठी अपनी मनमौजी पुत्री की हलचलों का आनंद लेती होगी। पुत्री किसी चट्टान के पास लेटी–लटी आकाश के तारों को और उड़ते हुए पक्षियों को देखकर किसी सही–गलत काव्य–अकाव्य की रचना में लीन होगी और माँ दूर बैठी उसके शब्दों को लिख लेती होगी और उस पर अपने भाष्य की रचना का आनंद लूटती होगी। पर यह तो अपवाद होगा– खारे समुद्र में मीठे पानी की धारा की भांति।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

3.क. सही कथनों पर सही का निशान लगाएं–

• माता–पिता बच्चों के खेल में केवल नकारात्मक नजरिये से देखते हैं

• माता–पिता को बच्चों के द्वारा घर के साज–सज्जा बिगाड़ने से रोकना चाहिए

• माता–पिता को लड़कों व लड़कियों को साथ खेलने से मना करना चाहिए

• माता–पिता को बच्चों की गूदागादी में आनन्द लेना चाहिये और उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए

• माता–पिता को समझने का प्रयास करना चाहिए कि बच्चे किस तरह इस खेल में अपनी सृजन शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं।

4. शालाओं में सृजन का हनन

अब जरा हम यह देखें कि शालाओं में बालकों के सृजन का हनन किस तरह से होता है। घर की तुलना में विद्यालय बाल–सृजन का एक बड़ा कतलखाना है। घर में बालकों को जो आजादी मिलती है, वैसी विद्यालयों में कतई नहीं होती। विद्यालय कहता हैः 'बस, लिखो, पढ़ो गिनो, इतिहास याद करो, भूगोल रटो, संगीत रटो, चित्र रटो।' भला इसमें सृजन कहां है? जहां बिना अर्थ समझे, बिना रुचि के, बिना अनुभव के महज रटना ही रटना हो, वहां साहित्य संगीत और कला का शिक्षण निष्फल ही होता है। ऐसे में कला का सृजन सर्वथा असंभव है। कला का मूल गहन व तीव्र अनुभूति में निहित है। जब कोमल–कठोर, कड़वी–मीठी, तीव्र–मंद भावनाएं कभी–कभार आपस में टकराकर झनझना उठती हैं, तब कला का जन्म होता है। कला जीवन–मंथन से प्रकट होती है, वह समूचे जीवन का निष्कर्ष होती है। कला जो जीवन–सौंदर्य का परिमल है। ऐसी कला का सृजन वहां कैसे हो सकता है जहां मात्र रटने ही रटने का शिक्षण दिया जाता हो?

जब बालक अपने घरों के अनुभव बड़े ही उत्साह के साथ अपने साथियों को सुनाने लगते हैं, जैसे 'आज हमारे घर में एक नया भाई आया है, उसकी हथेलियाँ रेशम जैसी मुलायम–मुलायम और गुलाबी हैं 'मुन्नी तो अब घर में दौड़ने–फिरने लगी है और वह सबको चूमती रहती है' आदि–आदि, कि तभी मास्टरजी भौंहे ताने मुंह बिगाड़कर बोल उठते हैं 'ऐ, चलो पहाड़े लिखो', या 'मैं बोलता हूं तुम लिखो – 'परोसा', 'भट्ठी' या 'लिखो– एक लड़के के दो कान हैं तो दस लड़कों के कितने कान हुए?'

बालक को विद्यालय की चारदीवारी में बंद कर देने के बाद उसकी कक्षा की एकाध खिड़की यदि सौभाग्यवश खुली रह गई हो और उसके द्वारा बालक को उदार प्रकृति का अपूर्व दर्शन सहज होता रहता हो

तो अध्यापक जी इस डर से कि कहीं बालक का ध्यान कक्षा की पढ़ाई से हट न जाए, उस खिड़की को ही बंद करवा देते हैं।

हम बालक को वर्तनी का तथा संयुक्ताक्षरों का पक्का अभ्यास करा देते हैं। व्याकरण मे एक भी गलती न हो, इसके लिए हम बालक के और अपने खून का पानी करते हैं। वर्ष के अंत तक वही की वही पुरानी तीन कहानियाँ बार–बार भौंड़ी रीति से बालकों को सुनाते रहते हैं और परीक्षा या प्रदर्शन के समय उन्हीं कहानियों को बालकों के पेट से निकलवा लेते हैं। तोते की तरह उन्हें कविता रटाते हैं और फिर एक डॉक्टर की तरह बेदर्दी से व्याकरण, पृथक्करण, पिंगल व्युत्पत्ति आदि औजारों के द्वारा चीरफाड़ करके कविता की धज्जियॉ उड़ा देते हैं। इसी को हम भाषा व साहित्य का अध्ययन करना कहते हैं। इसी से हम बालकों से साहित्य के क्षेत्र में नई रचनाओं और नए सृजन की अपेक्षा रखते हैं।

चित्रकला और संगीत का स्थान तो बालकों के शिक्षण में बहुत ही अल्प होता है। सीधी रेखा द्वारा चित्रकला का और सारेगामा से संगीत की शिक्षा का आरंभ करना ठीक वैसा ही है जैसे मृत देह से जीवन का आरंभ करना।

जिस विद्यालय की दीवारों पर जाले लटक रहे हैं या झाड़–झंखाड़ खड़े हैं, जिसकी दीवारों पर अगर कुछ टंगा भी है तो शायद कोई फटा पुराना एकाध चित्र, दीवारों का पलस्तर उखड़ा हुआ हैं, जगह–जगह गड्ढे बन गए हैं, जहां पानी पीने के बरतन न मांजे जाने से काले और गंदे हो गए हैं, अथवा जिस विद्यालय के आसपास सब्जी मंडी के जैसा शोर मचा रहता है, सड़क पर होने वाली कहा–सुनी और तकरार की आवाजें जहां बालकों के कानों में सहज ही पड़ती रहती हैं; जहां बालक खड़े–खड़े या तो गली–कूचों की गंदगी देखते हैं या मोटरों–ट्राम–गाड़ियों की दौड़–भाग देखते हैं या नगरपालिका की कचरा–गाड़ी को देखते रहते है, अथवा जिस विद्यालय में सभी बालकों के बैठने लायक पर्याप्त स्थान न होने से गंदे व बदबू भरे बालक आपस में एक–दूसरे की गंदगी को बढ़ाते हैं, जहां शिक्षकों की गंदी पोशाकें और उनके गंदे चेहरे उस गंदगी में वृद्धि करते हैं, जहां विद्यालय की टूटी बेंचें, बेकार पड़े श्यामपट्ट, सड़े हुए डस्टर, बालकों और अध्यापकों के बेतरतीब बिखरे जूते विद्यालय की शोभा को नाना प्रकार से बढ़ाते रहते हैं, उस विद्यालय में संगीत अथवा शिल्पकला की आत्मा किस प्रकार विकसित हो सकती है? वहां नूतन सृजन कैसे संभव है?

सृजन कार्य न पाठ्यक्रम के अधीन है, न किसी समय–विभाग–चक्र के। गणित में मन न लगने पर यदि कोई बालक सवाल हल करने के बजाय अपनी पट्टी पर चित्र बनाए और संयोगवश शिक्षक उसका चित्र देख ले तो आप सोच लीजिए कि उस बालक को अपने सृजन–कार्य की कितनी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी? उसके गाल पर एक तमाचा पड़ेगा, पट्टी का प्रहार होगा और गणित के श्यामपट के समक्ष गंभीर चेहरा बनाकर स्थिर खड़ा होना पड़ेगा। कक्षा में व्याकरण की पढ़ाई के चलते यदि किसी बालक के दिल में कभी घर पर सुने किसी गीत की कड़ी गुनगुनाने की लहर आ जाए और वह गुनगुना उठे तो उसे तत्काल सुनने को मिलेगाः 'ऐ, चुप! कौन गड़बड़ कर रहा है? इधर आ। बड़ा गवैया आया है। गाना ही है तो अपने घर जाकर गा, तुम यहां गाने के लिए नहीं आए हो, समझे!' यदि कोई शिक्षक बालकों को कक्षा में कपड़े के टुकड़े से गोल, हिरण या खरगोश बनाते, कागज से नाव, टोपियां या दवात बनाते, किसी डोरी से मोर का पंजा बनाते देख ले तो क्या वह उन्हें 'प्रसाद' दिए बिना रहेगा? बालकों को प्रकृति के प्रांगण में ले जाने, वहां उनको प्रकृति की गोद में घंटों लोटने देने, बंदरों की भांति पेड़–पेड़ पर चढ़ने व कूदने देने, कलकल बहती नदी के किनारे ले जाकर उन्हें अपनी अंजलियों से जी भर कर पानी पीने देने, जंगली फूलों को तोड़कर उनकी मालाएँ बनाने, रेशों से रस्सी बंटने और ऐसे ही भाँति–भाँति के काम करने देने की व्यवस्था क्या आज के पाठ्यक्रम में है? यदि नहीं है तो बालकों के सृजन का प्रश्न किससे पूछा जाए?

कुछ शालाओं में बालकों के लिए सृजनात्मक विषयों की सामग्री इकट्ठी की जाती है। वहाँ बालकों को बँगला बनाते, चटाई गूँथते, रंग भरते, कागज काटते या सिलाई–कढ़ाई का काम करते देखते हैं। वहां के शिक्षकों को हम बालकों के साथ अनेक प्रकार के काम करते देखते हैं। वे उन्हें कहानियाँ सुनाते हैं, गीत गवाते हैं, वे

उनके साथ नाचते, कूदते, खेलते और हँसते–हँसाते हैं। वहाँ हमको छोटे–छोटे बाल–संग्रहालय देखने को मिलेंगे। सुंदर–सुंदर खिलौने मिलेंगे, तरह–तरह की गुड़ियाएँ गुड्डे मिलेंगे। पर साथ ही साथ ऐसी शालाओं के सृजनात्मक वातावरण में हमें लालच और इनाम के बनावटी रस की बू अवश्य आएगी।

शिक्षक के अनुकरण में सृजन नहीं है, सृजन नकल में नहीं है। बनावटी उत्साह के नशे में किया गया सृजन सच्चा सृजन नहीं कहलाता। जब आंतरिक उमंग से, मानो अंतर को ही खाली करने या व्यक्त करने के लिए जहां अन्तर स्वयं प्रकट हो जाता है, वही सृजन कहलाता है। इस प्रकार का सृजन काव्य के, संगीत के, चित्र के अथवा किसी भी ललित कला के माध्यम से हो सकता है। सृजन स्वतंत्रता की देन है। जब सृजन स्वयं–स्फूर्त होता है, जब सृजन स्वानुभव से उपजता है, जब सृजन आत्मसाक्षात्कार के लिए होता है, तभी वह सच्चा विद्यालय है। इससे भिन्न दूसरे विद्यालयों को तो मैं कतलखाने ही कहूंगा। जब तक हमारे विद्यालय ऐसे सृजन के लिए वांछित सभी प्रकार की व्यवस्था नहीं कर लेते, तब तक उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

• लेखक के अनुसार शालाओं में सृजनात्मकता को बाधित करने वाला सबसे बड़ा कारण क्या है?

• लेखक के अनुसार किस तरह के शिक्षण के कारण हम कविता का रस ले नहीं पाते हैं?

• कला शिक्षण के लिए शाला व कक्षा में किस तरह का माहौल जरूरी है?

• लेखक के अनुसार बच्चों को कहां भ्रमण पर ले जाना चाहिए और बच्चों को वहां किस तरह के अनुभव देना चाहिऐ?

• लेखक कला शिक्षण में शिक्षक के अनुकरण के खिलाफ क्यों हैं?

• लेखक किस तरह के सृजन को सच्चा सृजन मानते हैं?

5. सच्ची सृजन की शर्तें

उपर्युक्त विवेचन से जाहिर है कि आज के हमारे विद्यालय सृजन के कितने विरोधी हैं!

सच्चा सृजन शांति, प्रसन्नता, एकाग्रता, निर्भयता, स्वतंत्रता एवं स्वयंस्फूर्ति द्वारा प्रकट होता है। घरों, शालाओं अथवा समग्र जीवन में जहां इन चीजों का अभाव होगा, वहां सच्चे सृजन को लेकर संशय ही बना रहेगा। हमारी वर्तमान कलाकृतियों की दरिद्रता तथा हमारी ह्रासमान रसिकता इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि हम स्वाभाविक सृजनात्मक कार्यों की दृष्टि से आज कहां है? यदि हम अपने समग्र जीवन पर दृष्टि डालकर देखें तो ज्ञात होगा कि हमारा जीवन सत्य से कितनी दूर चला जा रहा है। ऐसे में असत्यजीवी जनता के जीवन में से सत्य स्वरूप सृजन कैसे संभव है?

सृजन के प्रखर शत्रु हैं दंड, पुरस्कार, परीक्षा और प्रदर्शन। दंड के भय से या तो आदमी छिपकर सृजन करता है या फिर सृजन की उसकी प्रेरणा, उसके प्राण भय के मारे विलुप्त हो जाता है। छिपे हुए अथवा विकृत सृजन के उदाहरण स्वरूप आज हमारे सामने जेलखाने, दवाखाने, पागलखाने खड़े हैं। पुरस्कार और स्पर्धा के कारण उत्पन्न हुए स्वार्थपरायण व्यापार–धंधे, युद्ध तथा राजनीति हमारे समक्ष मौजूद ही हैं। हम जगह–जगह देख रहे हैं कि एक तरफ परीक्षा के कारण बहिर्मुख बना मनुष्य कितना छिछला, दंभी, ढोंगी तथा ठग बन चुका है और वह कितना मिथ्याभिमानी व अंहकारी बन चुका है। दूसरी तरफ हम यह भी देखते है कि वहीं मनुष्य कितना हताश, निरूत्साहित, अपनी ही आत्मा का अपमान करने वाला तथा जीवन–रस से विहीन बन चुका है। प्रदर्शनों ने हमें परजीवी, खुशामदी और गुलाम बना डाला है। आज के हमारे कई रंगमंच, सरकस, संगीत–सम्मेलन

और नृत्यांगनाओं के नाच ऐसे ही प्रदर्शनों के प्रतिफल हैं। उपर्युक्त चार कारणों से मनुष्य की आत्मा के सृजन या तो विकृत होते जा रहे हैं या लुप्त हो रहे हैं। यदि हमारे घर और विद्यालय बालकों को इन बुराइयों से बचा सकें तो सच्चे सृजन की आशा की जा सकती है अन्यथा बालकों के तथा समूची जनता के सृजन पर तलवार तो लटक ही रही है।

समझ जांचने के लिए प्रश्न

- **लेखक के अनुसार इनमें से कौन–कौन सी बातें सच्ची कला–सृजन के लिए आवश्यक है– धन, भरपेट भोजन, स्वतंत्रता, संघर्षशील वातावरण, शांति, पुरस्कार की संभावना, भयमुक्त वातावरण, दुख, खुद की इच्छा से काम करना.**

अभ्यास के प्रश्न

1. अपने बचपन की उस घटना को याद कीजिए, जब आपने अपनी रुचि का कोई काम किया था और बड़ों के द्वारा आपको डांटा या मारा गया और आपको बुरा लगा। उस घटना के बारे में लिखें और उसका आप पर क्या प्रभाव पड़ा यह भी लिखें।

2. कोई बालक या बालिका आपके पढ़ाने के दौरान कुछ और चित्र बना रहा/रही है या कोई और बात कर रहा/रही है तो क्या आप उसे बनाने देंगे। क्यों? आपका व्यवहार उसके प्रति कैसा होगा ?

3. गिजूभाई का कहना है कि सृजन के प्रखर शत्रु है दंड, पुरस्कार, परीक्षा और प्रदर्शन। आप इस कथन की विवेचना करें और बताएं कि आप किस हद तक इससे सहमत हैं।

4. घर में अगर बच्चों को सृजन करने का अवसर व प्रेरणा दिलाना है तो मात–पिता को क्या करना होगा।

5. शाला में अगर बच्चों को सृजन करने का अवसर देना हो तो शिक्षकों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए – कुछ उदाहरण सहित बताएं।

प्रोजेक्ट्

1. आप बच्चों की किसी टोली को कमरे में खेलते हुए कम से कम एक घंटा अवलोकन करें और नोट करें कि किस–किस तरह के सृजनात्मक काम करते हैं और वे किस तरह साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला आदि से जुड़े हुए हैं।

2. किसी छोटे बच्चे से उसकी पसंद पर कम से कम एक घण्टा बातचीत करें जिसमे ज्यादातर समय उनकी बातें सुने। अपने इस अनुभव को लिखिए।

1. कला क्या है, कला शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं?

पठन सामग्री 5

बच्चों की नजर से

देवी प्रसाद

प्रस्तावना

बच्चे लगातार नये अनुभवों को प्राप्त करते हैं। जिन अनुभवों में उन्हे अपार आनंद प्राप्त होता है,उन्हें वे बार बार दोहराते हैं। किंतु बड़ों के द्वारा उनके इस आत्मप्रकटन व आनंद को लगातार दबाया जाता है। प्रस्तुत लेख में इन्ही बातों को विभिन्न उदाहरणों से समझाया गया है। इस लेख में बताया गया है कि बच्चे कैसा सोचते हैं,वे क्या करते हैं और करना चाहते हैं तथा शिक्षक बच्चों के अंदर जो अपार उर्जा है उसे किस तरह सृजनात्मक कामों में विभिन्न माध्यमों के द्वारा दिशा दे सकते हैं।

पाठ की रूपरेखा

- बच्चों और बड़ों की नजरों में अन्तर
- कला के जरिए मूर्त अनुभवों से बढ़कर प्रतीकों व कल्पनाओं की यात्रा
- कला के जरिए भावनाओं का प्रकटन व नियंत्रण
- कला के जरिए आत्म शक्ति का दर्शन

उद्देश्य

- बडों और बच्चों के सोच विचार व क्रियाएँ किस प्रकार अलग अलग होती हैं इस बात को समझना।
- बच्चे जो सोचते और करते हैं उसके कारणों को समझना।
- बच्चों द्वारा अपनी भावनाओं को विभिन्न माध्यमों से प्रकट करने के महत्व को समझना
- बच्चों की कल्पना शक्ति को प्रोत्साहन देने की जरूरत को समझना शिक्षा की योजना बनाते समय बच्चों के व्यवहार क्रियाकलापों व भावनाओं के महत्व को समझना।

''बालक की कलाकृति की सबसे सुंदर चीज उसकी गलतियाँ हैं। और जितना इन गलतियों को शिक्षक सुधारता जायेगा, उतनी ही बेजान, मंद और व्यक्तित्वहीन वह कृति बन जायेगी।''

फ्रांज सिजेक

बच्चों और बड़ों की नजरें

अभी तक सब कुछ सयानों की नजर से देखा। शिक्षक की दृष्टि कैसी होनी चाहिये, इसी बात पर चर्चा की। लेकिन जिसे शिक्षा देनी है, वह सयाना नहीं है। इसलिये उसकी दृष्टि सयानों जैसी नहीं है। जितना सोचकर या काट–छांटकर सयानों की नजर तैयार होती है, बच्चों की उस तरह नहीं होती। इस काम का नतीजा 'यह होगा' या 'इसके जरिये ऐसे संस्कार पड़ेंगे', यह भी नहीं देखता। **बच्चा तो हर समय नये–नये अनुभवों की खोज में रहता है। हर चीज को परखना चाहता है। हर चीज के साथ परिचय करना चाहता है। वह जिस चीज से परिचय करता है, उसमें आनंद ढूंढ़ता है और अगर उसे उस चीज या काम**

में आनंद मिल जाता है, तो उसे दोबारा करता है और नये अनुभव पाता है। बच्चा अपने चारों तरफ की उन–उन चीजों की तरफ तेज निगाह से देखता है, जिनको सयाने नजर उठाकर भी नहीं देखते, बल्कि जिनके बारे में सयानों को सचेतता भी नहीं होती। असल में बात यह है कि बच्चे की दुनिया एक तरह की है और बड़े की दूसरी तरह की। दोनों ही अपनी–अपनी दुनिया में रहते हैं। दोनों के देखने के तरीके और देखने के विषय भी अलग–अलग होते हैं। मेरा कहने का मतलब यह नहीं कि बच्चा जिस चीज को देखता है, बड़ा उसे नहीं देखता। चीजें दोनों की एक ही हैं। वही लालटेन बड़ा देखता है, वही बच्चा। लेकिन बड़ा उसको किसी और दृष्टि से देखता है, छोटा किसी और से। उदाहरण के लिए बड़ा जहां यह देखता है कि लालटेन की रोशनी साफ है या नहीं, वहां बच्चा शायद उसके ऊपर चलने वाले एक कीड़े की तरफ एकटक निगाह से देखता रहता है या शायद लालटेन की चिमनी के गंदे होने के कारण उस पर जो कुछ दाग हो गये हों, उन्हीं को देखकर आनंद लेता है। अगर लालटेन बुझ जाय, तो बच्चे की खुशी उस लालटेन के बुझने के अनुभव को पाने में होती है। वह 'हो! हो!' कर आनंदित हो उठता है, जब कि सयानों को लालटेन के बुझने से गुस्से का अनुभव होता है। अर्थ यह है कि बच्चे के लिए हर पल नये अनुभव का समय है।

एक और बात है। जिस तरह बच्चे की दुनिया सयाने की दुनिया से अलग है, उसी तरह अच्छे और बुरे, सुंदर या असुंदर का नाप भी सयाने का बच्चे के जैसा नहीं होता। जिस चीज को देखने में बड़ो को घृणा होती है, बच्चे को उसी में मजा आ सकता है। जैसे कि जब एक बच्चा बारिश के कीचड़ में खेल रहा हो या किसी 'मैली' चीज में हाथ सानकर मजा ले रहा हो या एक केंचुए को उंगली से इधर–उधर कर रहा हो, उस समय कोई सयाना उधर से गुजरता हो, तो अक्सर ही वह उस बच्चे को यह कहकर डांट देता है कि यह क्या गंदा काम कर रहा है? दोनों की दुनिया और दोनों की नजर अलग–अलग है। बच्चे के लिए ऐसे विचार, कि कला की आध्यात्मिक बाजू ऐसी हो या उसके आकार के पहलू की तरफ उसकी ऐसी दृष्टि हो, आदि बिलकुल कीमत नहीं रखते। **वह तो यह देखता है कि क्या इसमें मुझे आनंद मिलेगा? अगर उसे आनंद मिलता है, तो वह उसमें रम जाता है।**

अपनी इस चर्चा को अभी हम चित्रकला और ड्राइंग तक ही सीमित रखेंगे। हमारा वही विषय है। कला में बच्चा आनंद लेता है, यह तो उसी समय पता चल जाता है, जबकि उसके सामने रंग और कागज रख दें और कहें कि लो, यह इस्तेमाल करो। शायद ही कोई बच्चा ऐसा होगा, जो इस मौके को चूकना पसंद करेगा। (आगे चलकर चर्चा करेंगे कि कुछ बच्चे पहले रंग और कागज पर हाथ भी लगाने की हिम्मत क्यों नही ंकरते? औसत बच्चा रंग और कागज देखते ही खुश हो जाता है। कुछ विशेष अपवाद तो छोड़ने ही पड़ते हैं।)

बच्चे को कीचड़ में खेलने से जो 'ठंडा' और 'मुलायम' छूने का अनुभव होता है, उसी में उसे आनंद मिलता है। चित्र या ड्राइंग बनाने में भी उसे कई तरह से आनंद और संतोष मिलता है। किस–किस तरह उसे आनंद मिलता है, यह देखें।

बढ़ई का बच्चा, जबकि हथौड़ा पकड़ना भी नहीं जानता, हथौड़े का क्या काम है, यह भी नहीं जानता, तभी से वह अपने पिता को काम करते देख उसके पास जाकर बैठ जाता है। धीरे–धीरे एक दिन हथौड़ा उठाकर उल्टा–सीधा चलाने लगता है। वह अपने पिता की तरह करता है। इस शुरू की अवस्था में भी क्या वह हथौड़े को किसी ध्येय यानी कुछ चीज बनाने के विचार से चलाता है? नहीं। वह हथौड़ा चलाने में 'यानी काम करने' में जो आनंद है, वह लेता है। हाथ–पैर चलाना, उंगलियों को चलाना, यही उसके लिए एक मजे की बात है।

कई किस्म के काम होते हैं। किस्म–किस्म के काम करने से मनुष्य की अलग–अलग भावनाओं, व प्रवृत्तियों और कर्मेंद्रियों को संतोष मिलता है। बढ़ई के औजार इस्तेमाल करने से एक किस्म का और पेंसिल, कागज तथा रंग इस्तेमाल करने से और एक किस्म का संतोष होता है। दोनों तरह के 'करने' में ही आनंद है। बच्चा किस्म–किस्म की प्रवृत्तियों को करने से आनंद पाता है। चित्रकला और ड्राइंग का काम करने का जो आनंद है, वह बच्चे के लिए एक खास कीमत रखता है।

कोई काम पूरा करने के बाद और खासतौर पर निर्माणात्मक काम पूरा करने पर बनायी हुई चीज को देखकर एक आनंद होता है। बच्चे के सामने रखा सामान– लकड़ी और बढ़ई के औजार, गीली मिट्टी या रंग, कूंची और कागज उसे एक तरह का निमंत्रण देते हैं, आह्वान देते हैं। वे उसे यह कहते हुए सुनाई देते हैं: ''हमें लेकर क्या बना सकते हो?'' बच्चा फौरन लगकर जो कुछ बनाता है, उसे देखकर उसके मन में और एक भावना जगती है। वह मन–ही–मन कहता है: ''देखा, बना दिया!'' चीज पूरी करने के बाद यह 'मैं कुछ कर सकता हूं', की भावना बच्चे के आनंद का झरना है। उसे यह विश्वास कि 'वह निपुण, है उसे आनंद से भर देता है। इसका और साफ सबूत तब मिलता है, जब कि उनकी अपनी चित्र–प्रदर्शनी बच्चे खुद देखने जाते हैं। उनका सबसे पहला काम होता है कि यह पता चलायें कि उनका अपना चित्र वहाँ है या नहीं। और जब मिल गया, तो उसी के सामने खड़े होकर उसे निहारते रहते हैं। ऐसे मौकों पर बच्चों को उनके अपने चित्रों के बारे में इस तरह के वाक्य अक्सर कहते हुए सुना जाता है ''कितना अच्छा लगता है। ओ! हो ! मेरा भी चित्र है, यह देखो।''

कुछ प्रश्न –

किसी वस्तु या काम के साथ बच्चे और बड़े के उद्देश्य किस रूप में भिन्न होते हैं...

निपुणता का अहसास क्या बड़ों और बच्चों के लिए एक सा महत्व रखता है विचार करिए

मूर्त अनुभव से प्रतीकों की यात्रा

बच्चे के पास शब्दों की भाषा कम होती है। किंतु उसके पास दूसरी ऐसी भाषा होती है, जो उसके मन में भरी कहानियों और अनुभवों को दूसरों को बता सके। एक बात देखेंगे। बच्चे के ये अनुभव या उसकी ये कहानियां शब्दों से नहीं, बल्कि 'आकारों' से भरी होती हैं। जैसे अगर उसके अनुभव या कहानी में एक पहाड़ आता है, तो उसके सामने पहाड़ शब्द नहीं, बल्कि पहाड़ वस्तु का आकार होता है। वह उसे दूसरों को बताते समय तभी पूरा संतोष मानेगा, जब कि जो मन में है, वहीं प्रकट कर सके। मन में तो चीज का आकार है, चीज का नाम नहीं। नाम का स्थान गौण है। इसीलिये देखा गया है कि बच्चे जब चित्र के द्वारा 'वर्णन' करते हैं, तब लगता है, मानो पूरा–पूरा बता पा रहे हैं। यह तो आदमी की वृत्ति ही है कि वह अपने अनुभवों को दूसरों को बताना चाहता है। बच्चों में वह इच्छा और अधिक मिकदार में होती है और उनका यह वर्णन करना आकारों द्वारा ही सबसे अधिक सफलतापूर्वक होता है। यही उनका एक बड़ा आनंद का साधन है।

हमारे एक विद्यार्थी की ही बात थी। एक दिन उसने एक चित्र बनाया (चित्र) जिसका विषय था '' बारिश हो रही है । एक लड़का छाता लेकर सामने पेड़ से बंधे बैल को बारिश से हटाने के लिए जा रहा है। हठात पैर फिसला। इस छोटे कलाकार का यह चित्र जब करीब–करीब पूरा हो रहा था, तो उसने उठाकर उसे दूर रखा और खुद पीछे दूर हटकर गर्दन इधर–उधर हिला, चित्र को देखने लगा। यह बात उसे मालूम नहीं थी कि मैं उसे अच्छी तरह देख रहा था। वह चित्र के 'विषय' में इतना लीन हो गया कि जो चित्र में घट रहा था, उसे अपने में भी अनुभव करने लगा। मैंने देखा कि जिस तरह चित्र का लड़का फिसलकर गिर रहा था, उसी तरह हठात वह खुद भी बार–बार गिरने का अनुभव लेने लगा। यह नाटक करने में उसे जो आनंद मिल रहा था, वह सचमुच गहरा था। एक दूसरे विद्यार्थी ने एक मोटर का चित्र बनाया। मैं देख रहा था कि बनाते–बनाते वह खुद बार–बार ड्राइवर के हैंडिल पर हाथ चलाने का नाटक करता और मुंह से मोटर के भोंपू की तरह आवाज निकालता था। यह सब देखकर यही महसूस होता है कि बच्चे चित्र बनाते समय स्वयं वह वस्तु बन जाते हैं, जिसका वह चित्र बनाते रहते हैं। चित्र के 'विषय' की लहरें उनके अपने शरीर में, मन में नाटक खेलने लगती हैं। यह पहलू बड़े कलाकारों में पाया जाता है। चीन की कला पर चर्चा करनेवाले इतिहासकार इस तरह की कई कहानियां बताते हैं, जिनमें ऐसे कलाकारों का जिक्र किया गया है, जो अगर घोड़े के चित्र बनाने में उस्ताद हों, तो उनके अपने शरीर में घोड़े के हिलने–डुलने की लहरें समा जाती हैं। वे खुद भी घोड़े जैसा महसूस करते हैं। इस तरह की अनेक कहानियां कलाकारों के बारे में पायी जाती है। यह चित्र के 'नाटक' का पहलू बच्चे को अत्यंत आनंद का अनुभव प्रदान करता है।

बच्चा बड़ा कल्पनाशील होता है। वह हर क्षण नयी–नयी कल्पनाओं में बिताता है। एक मिट्टी का घर बनाता है, तो उसे किला और राजा का महल समझ लेता है। कुछ तिनके खड़े करके कहता है कि देखो, राजा के सिपाही आ रहे है। और अगर एक राजा और दूसरे राजा के बीच युद्ध कराना चाहता है, तो दूसरी दिशा में और कुछ तिनके खड़े कर देता है और वह उसका महल हो जाता है। कुछ कल्पना करके इन प्रवृत्तियों को शुरू करता है और इन्हें करते–करते उसे नयी–नयी कल्पनाएं आती रहती है। ये सब साधन–मिट्टी, रेत, तिनके आदि–उसे कल्पना करने में मदद करते हैं।

बारिश हो रही है

चित्र बनाते समय भी बच्चे के शुरू के वर्षों में, जब कि उसके चित्र बड़ों की नजर में कीरम–काँटे ही होते हैं, बच्चा उन कीरम–काँटों में पहाड़, नदी, नाले और आकाश तक को देख लेता है। बच्चों के इन चित्रों का विस्तार से जिक्र तो आगे चलकर करेंगे, किंतु यहां यह बताना चाहते हैं कि इस तरह चित्र बनाना बच्चों की कल्पना–शक्ति को प्रोत्साहन देता है। इस कल्पना–जगत् में इस तरह की कवि–कल्पना करने में बच्चों को आनंद का लाभ होता है।

कुछ प्रश्न–

1. चित्र बनाने के साथ उसके विषय का नाटक मन में करना– किस तरह की संज्ञान की चेष्टा दिखाता है?

2. उस वक्त के अनुभव को याद करके लिखिए जब आपने पहली बार कुछ बनाया था।

3. बच्चे जब कुछ बना रहे होते हैं तो वो खुद को उसमें जोड़ लेते हैं। अगर कक्षा में सभी बच्चों को एक सा कुछ बनाने को कहा जाए तो क्या तब भी सभी बच्चे उस गतिविधि में खुद को जोड़ पाएंगे या केवल कुछ बच्चे? आप को क्या लगता है और क्यों?

भावनाओं से जूझ पाने का माध्यम

मनुष्य के मन में हर समय कुछ–न–कुछ भावनाएं उठती रहती हैं। यह स्वाभाविक है कि ये भावनाएं किसी–न–किसी तरह प्रकट होती रहें। इन्हें कोई–न–कोई निकास का रास्ता चाहिये ही। अगर आज का सूर्योदय देखकर कुछ विशेष भावनाएं उठें, तो तुरंत इच्छा होती है कि किसी को कहकर उन्हें व्यक्त करूं। कवि हो, तो कविता करके अपनी भावनाओं को रूप देगा और चित्रकार चित्र बनाकर। इस तरह अनेक माध्यमों के द्वारा इन भावनाओं का प्रकटन किया जाता है। फिर अनेक नयी–नयी भावनाएं उत्पन्न होती रहती है।

जीवन है ही लेना और देना। प्रक्ति से लेना और उसे दे देना, यही जीवन है। एक घड़े को पानी से भरें, तो वह भर जायेगा। पूरा भरने के बाद वह और नहीं 'भरेगा'। वह पानी लेने से इनकार कर देगा। अगर उसमें और भरना है, तो उसे पहले खाली करना पड़ेगा। यानी लेने के लिए देना पड़ेगा। और अगर नया पानी लेना नहीं हुआ, तो पहले का पानी धीरे–धीरे सड़ता रहेगा। उसमें दुर्गंध आ जायेगी। इसी तरह आदमी को भी अपनी भावनाएं निकालनी ही पड़ती हैं। केवल सिद्धयोगी ही अपनी बुद्धि के द्वारा, अपने आत्मबल के द्वारा इनका भीतर–ही–भीतर निराकरण कर सकता है। सड़ने का मौका ही वहाँ नहीं होता। किंतु आमतौर पर साधारण व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। खासतौर पर बच्चे के लिए वह बात लागू हो ही नहीं सकती, क्योंकि वह इन सब चीजों के बारे में संज्ञान नहीं होता। वहां बुद्धि के द्वारा मन को दबा देने का सवाल ही नहीं खड़ा होता। उसे तो किसी–न–किसी तरह इन भावनाओं को रूप देकर बाहर निकालना ही पड़ेगा।

कला–प्रवृतियों द्वारा बच्चे की ये भावनाएं सफलातापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। अच्छी शिक्षा का यह काम है कि योजना ऐसी बने, जिससे बच्चे की ये भावनाएं सुंदर और स्वस्थ रूप लेकर बाहर निकलें। इस बात को एक उदाहरण द्वारा पेश करें। अगर एक बच्चे को जरूरत से ज्यादा 'स्फूर्ति' हो और वह बिना कारण इधर–उधर चीजों को पटकता–पीटता फिरता हो, तो शिक्षक का काम है कि वह बच्चे की इस पटकने–पीटने की भावना को कोई प्रवृत्ति देकर सुंदर रूप दे। खूब ठोक–पीट करने का काम देने से भी उसकी यह वृत्ति काफी हद तक आत्म–प्रकटन पा सकेगी। बगीचा बनाने में खोदने का काम करना पड़ता है। मूर्ति बनाने में खुदाई आदि, कुम्हार–काम में खूब सारी मिट्टी लेकर पसीना तक निकाला जा सकता है। इस तरह के कई काम हो सकते है। चित्रकला द्वारा भी इसका अच्छा सुंदर रूप बन सकता है। वह शायद वैसा ही चित्र बनायेगा, जिसमें खूब मार–काट, ठोक–पीट आदि का विषय हो। किस भावना को किस प्रवृत्ति द्वारा निकास मिलेगा, यह तो शिक्षक मौके पर ही ठीक कर सकता है। किंतु यहां तो हम यही कहना चाहते हैं कि चित्रकला भी इन भावनाओं के निकास का सुदंर और स्वस्थ माध्यम है। जब ये भावनाएं निकल जाती हैं, तब आनंद का जो अनुभव होता है, वहा बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आनंद का अनुभव, जिसे तृप्ति का बोध भी कह सकते हैं, बहुत जरूरी है। यहां तक अनुभव हुआ कि इन प्रवृत्तियों के द्वारा बच्चे के दिल में अगर कोई भय भी बैठा हुआ हो, तो वह भी प्रकट होकर दूर हो जाता है।

कुछ प्रश्न–

चित्र में अभिव्यक्त की गई भावनाएं बच्चे की क्या मदद करती हैं... क्या आप अपने किसी अनुभव के आधार पर भी यह समझा समते हैं?

अपनी शक्ति के दर्शन

बच्चा कला–प्रवृत्तियों में क्यों रूचि लेता है, इसके कुछ कारण ऊपर बताये है। आखिर में एक प्रयोग का जिक्र करता हूं। प्रयोग था कि बच्चे पुस्तकें लिखें। विषय–वस्तु तैयार करना, उसे चित्रित करना, सुंदर ढंग से लिखना, जिल्द बनाकर मुखपृष्ठ तैयार करना और उन्हें प्रकाशित करना–इतना काम था। वर्ग में तेरह बच्चे थे, जिनकी उम्र औसत चौदह साल थी। शाला से अलग समय का जिक्र है। एक विद्यार्थी से चर्चा करते–करते पुस्तकें लिखने पर बातचीत चल पड़ी। मैंने उसे बताने की कोशिश की कि पुस्तक लिखना कोई बड़ी बात नहीं है, अगर वह भी चाहे तो नयी पुस्तक तैयार कर सकता है। यह सुनकर उसे विचार बहुत पसंद आया और उसने तय कर लिया कि वह जरूर एक पुस्तक लिखने की कोशिश करेगा। तीसरे दिन इस विद्यार्थी ने अपनी टोली के सामने इस विचार को रखा। सभी बच्चे बड़े जोश में आ गये। इनमें से छह ने तय किया कि वे जरूर अपनी–अपनी पुस्तक लिखेंगें। सबने अपना–अपना विषय चुन लिया और अगले दिन से चित्र बनाना शुरू कर दिया। सोलह दिन के बाद छह पुस्तकें तैयार हो गयीं। लेख, कहानी कविता आदि बच्चे अक्सर लिखते हैं। कहानियों आदि को चित्रित करने के लिए भी किसी–किसी स्कूल में प्रोत्साहन दिया जाता है। किंतु ये बालक रामायण और महाभारत भी लिख डालेंगे, हमने भी कल्पना नहीं की थीं। ये बच्चे खुद तो इसके बारे में सोच ही

क्या सकते थे। इस काम का पूरा विवरण देने की यहां जरूरत नहीं है। इन पुस्तकों का स्तर कैसा था, यह भी कहने की आवश्यकता नही। मुझे तो लगता है कि आमतौर पर जैसा साहित्य बच्चों के लिए तैयार हो रहा है, उनमें से अच्छे–से–अच्छे स्तर के साहित्य के साथ इनकी तुलना हो सकती है।

यहां तो बच्चों के ऊपर इस प्रयोग का क्या असर हुआ, यह बताना मुख्य बात है। जिस दिन पुस्तकें बनकर तैयार हुईं, एक बच्चे ने मुझसे अत्यंत भावुकतापूर्ण आवाज में कहा– मुझे कल तक भी नहीं मालूम था कि मेरी पुस्तक इतनी अच्छी बनेगी। ''दूसरे बच्चों ने खूब चिल्लाकर कहा– ''हाँ, हाँ, सचमुच हमें तो विश्वास ही नहीं था कि पुस्तकें बनेगी या न जाने क्या होगा।'' बच्चों को यह जो आत्म–दर्शन हुआ, यह मुख्य चीज है।

कुछ प्रश्न

बच्चों द्वारा अपनी पुस्तक स्वयं बनाने के लेखक द्वारा किये गए प्रयोग के बारे में आप क्या सोचते हैं ? आप इस तरह का प्रयोग अपनी शाला में किस प्रकार से करना चाहेंगे ?

बच्चा एक खजाना है। उसमें बहुत शक्ति भरी पड़ी है। वह ऐसे काम कर सकता है, जो हम सयाने होने के कारण संकोच से नहीं कर पाते। इन पुस्तकों को लिखने के बाद इस आत्म–दर्शन से उन्हें पता चला कि उनके अंदर कितनी शक्ति है। मैंने इस चीज को पहले भी अक्सर महसूस किया था कला का हर काम व्यक्ति को आत्म–दर्शन कराता है। अपने अंदर जो है, उसका बाहर प्रकट हो जाना ही आत्म–प्रदर्शन की प्रक्रिया है। किंतु ऊपर लिखे गये प्रयोग के अनुभव से मुझे इस पहलू की शक्ति का पता चला। इस तरह का आत्म–दर्शन बच्चे को आनंद तो देता ही है, साथ ही साथ उसके संपूर्ण विकास का एक बहुत बड़ा जरिया भी बन जाता है।

सारांश

बड़ों का नजरिया भविष्य की जरूरतों के इन्तजाम से बहुत प्रभावित होता है जबकि बच्चे वर्तमान में जीते हुए हर नए अनुभव का परिचय और उससे उपजा आनन्द चाहते है। एक उम्र तक वे शाब्दिक प्रतीकों की बजाय आकारों, रंगों, हाव–भावों, ध्वनियों के मूर्त माध्यमों से अपने विचारों व भावों को व्यक्त करते है. वे काल्पनिक सोच का विकास करते हैं और अपने संवेगों से जूझते हैं। बच्चे के पास दूसरी ऐसी भाषा होती है, जा 'आकारों' से भरी होती हैं

मनुष्य के मन में हर समय कुछ–न–कुछ भावनाएं उठती रहती हैं। इन्हें कोई–न–कोई निकास का रास्ता चाहिये ही। कला–प्रवृतियों द्वारा बच्चे की ये भावनाएं सफलातापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। अच्छी शिक्षा का यह काम है कि योजना ऐसी बने, जिससे बच्चे की ये भावनाएं सुंदर और स्वस्थ रूप लेकर बाहर निकलें। जब ये भावनाएं निकल जाती हैं, तब आनंद का जो अनुभव होता है, वहा बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आनंद का अनुभव, जिसे तृप्ति का बोध भी कह सकते हैं, बहुत जरूरी है। यहाँ तक अनुभव हुआ कि इन प्रवृत्तियों के द्वारा बच्चे के दिल में अगर कोई भय भी बैठा हुआ हो, तो वह भी प्रकट होकर दूर हो जाता है।

वे कलात्मक रचनाओं के द्वारा अपने अन्दर की शक्ति का अहसास करते हैं और आत्म संतोष व आत्म विश्वास से भर जाते हैं।

शिक्षक को बच्चों का अवलोकन करते हुए वे मौके तलाशते रहना चाहिए जिसके जरिए वह उसके कलात्मक विकास में सहयोग दे सके।

अभ्यास के प्रश्न–

1. बच्चों की नजर में काम के परिणाम या उससे जुड़े संस्कार मायने नहीं रखते तो क्या मायने रखता है
2. भावनाओं और कल्पनाओं के प्रकटन के जरिए बच्चे का विकास किस प्रकार होता है, लिखिए।
3. आपके स्कूल के कौन से क्रियाकलापों में बच्चों को आत्म शक्ति के दर्शन का सुख मिलता है उदाहरण दीजिए।

इकाई –2 गीत गाना,चित्र बनाना, अभिनय करना व मूर्ति गढ़ना

पठन सामग्री 1

रंग-बिरंगा रंगमंच

फैजल अलकाजी

प्रस्तावना

कितनी मजेदार होती है कल्पना की दुनिया? जरा सोचो कि तुम एक चिड़िया हो, पर फैलाए, जहां मन चाहे, फुर्र से उड़ गए ? या यह कि डाकू तुम्हारे घर में घुस आएं और तुम हो अकेले, फिर क्या होगा ? मान लो कि तुम एक बहुत ही अमीर मेम साहब हो, जो नाक उठाए चली जा रही हैं। केले का छिलका पैर के नीचे आया और अर्र – धड़ाम। हां, अब बताओ, कैसा लगा ऐसी कल्पनाएं करने में ? मजा आया ! फिर तो तुम नाटक में हिस्सा लेने के लिए बिल्कुल ठीक होगे। इस युनिट में आपको बताया जाएगा कि नाटक बनता कैसे है उसमें अभिनय कैसे करते हैं। और वे सब बातें भी जान सकेंगे जिनसे नाटक, मंचन के लिए तैयार होता है। नाटक करने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं होते, लेकिन कुछ अभ्यास और गतिविधियां जरूरी है। इससे अच्छे अभिनय की दक्षता मिलती है।

उद्देश्य

- बच्चे एक दूसरे के व्यक्तित्व, भावनाओं को समझ सकें ।
- बच्चों में व्यक्तित्व विकास और आत्मविश्वास बढ़ाने के लिये।
- रंगमंच के माध्यम से बच्चों में प्रकृति और आस–पास के वातावरण के साथ सामन्जस्य व तारतम्य बिठाने में मदद करना।
- बच्चे अपनी भावनाओं को नाटक के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाएं।
- विभिन्न खेलों के द्वारा विभिन्न कौशलों को विकसित करना।
- नाटक से आनंद प्राप्त करना।

चलो नाटक करें

शुरू करते हैं कुछ आसान खेल और मजेदार तमाशों से, जो कि तुम अपने मित्रों के साथ कर सकते हो। अगर तुम सचमुच बहुत अच्छा अभिनय करना चाहते हो तो यहां बताए गए हर खेल बहुत ही जरूरी हैं।

सबसे पहले एक जगह ढूंढो जहां तुम ये अभ्यास कर सकते हो– कोई बड़ा सा कमरा, बरामदा, छत,गैराज या किसी पेड़ की छांव। सब आसपास काफी खुली जगह होना चाहिए। जहां तुम दूसरों से डांट–फटकार खाए बिना हल्ला–गुल्ला भी कर सको।

फिर चाहिए कुछ मित्र, जिनकी रुचि अभिनय में हो।

सैर करो

जो जगह आपने चुनीं है, उसका चक्कर लगाओ। उसके हर कोने को ध्यान से देखो अपने किसी मित्र के इशारे पर, चाहे वह ताली हो, सीटी या ड्रम की आवाज, अलग–अलग ढंग से चलो। कभी अपने पैरों की उंगलियों पर, कभी एड़ियों पर, पैरों को अंदर या बाहर की तरफ जोर दे कर। देखो की इस तरह चलने से तुम्हारे शरीर की पूरी गति कैसे बदल जाती है ? अब इन चालों को अलग–अलग गति से करो– धीरे, तेज; फिर अलग–अलग दिशाओं में –आगे, पीछे, एक तरफ। हर चाल में तुम्हें एक नया अनुभव मिलेगा– कभी तुम्हें लगेगा कि तुम सड़क के भिखारी हो तो कभी ऐसा कि कोई अमीर औरत पार्टी में जा रही है।

हमशक्ल

अपने किसी एक साथी को चुनो। मान लो कि वह तुम्हारा दर्पण है और तुम उसके सामने खड़े हो। कुछ ऐसे कार्य करो जो कि तुम रोज दर्पण के सामने करते हो– मुंह धोना, दांत साफ करना, बाल बनाना। तुम्हारे दर्पण

यानि तुम्हारा मित्र भी वही करेगा, जैसा तुम कर रहे हो। नाचो, गाओ, और देखो कि तुम्हारा प्रतिबिंब कैसे तुम्हारी नकल करता है ! फिर तुम दर्पण बनो और दोस्त को अपनी जगह रखो । देखो, कितना मुश्किल है, किसी का प्रतिबिंब बनना !

पीठ से पीठ

अब कोई दूसरा साथी चुनो। उसके साथ पीठ से पीठ कर के खड़े हो जाओ। खेल शुरू करो इस तरह –मान लो कि तुम दो पुराने दोस्त हो जो कई बरसों बाद अचानक मिल गए हो। अब एक इशारे पर (जो कोई तीसरा साथी दे सकता है) मुड़ कर अपने दोस्त को खुशी से मिलो और बातें करो। कुछ समय के बाद फिर पीठ से पीठ कर के खड़े हो जाओ। इस बार मान लो कि तुम दो कटटर दुश्मन हो। अब मुड़ कर इस अनुभव का नाटक करो। तीसरा, नाटक/अभिनय यह हो सकता है कि तुम एक ऐसे देश में हो जहां की भाषा नहीं जानते और तुम्हें ''शौचालय '' ढूंढना है।

चमत्कारी मशीनें

अपनी नाटक मंडली के सभी साथियों को लेकर एक बड़ा सा गोल घेरा बनाओ। एक–एक कर के तुम्हारे सभी साथी इस घेरे में आ कर एक बड़ी मशीन का हिस्सा बनेंगे। हर हिस्सा (यानी साथी) उचित आवाज निकालेगा और मशीन जैसी हरकत करेगा। जब सभी हिस्से ऐसा करने लगे, तो मशीन को तेज करने की कोशिश करो। यानी सबकी गति और आवाजें तेज हो जानी चाहिए। फिर मशीन को धीरे करते–करते रोक दो।

इस खेल में तुम अपनी मनचाही मशीन बना सकते हो– जैसे खराब हो गई अंतर्राष्ट्रीय टेलीग्राम मशीन, त्यौहारों की मशीन जो होली, दीवाली, ईद, क्रिसमस आदि की सुगंध बनाती हो, वगैरह।

आमने–सामने

आगे कढ़ाना है कि दूसरा भी वैसी ही सूरत बनाए,फिर तीसरा, चौथ.... । पहले तो बिना कुछ बोले ऐसा करो, फिर आवाज के साथ। देखो कि तुम यह तमाशा कितनी तेज और कितने खिलवाड़ के साथ कर सकते हो।

क्यों पसंद आए ना ये खेल–तमाशे ! तुम्हारी कल्पना को खुली छूट मिले; तुम अपने भावों को पहचान सकों; तुम्हारे साथियों में विश्वास पैदा हो तथा सभी को मजा आए। इसके लिए यह सब करना आवश्यक था।

अभ्यास के प्रश्न

1. किसी भी नाटक को तैयार करने से पहले कुछ खेल कयों जरुरी हैं, इस किताब में दिये खेलों के अलावा आप और कौन कौन से खेल करवाओगे जो कि अभिनय के लिये सहायक होंगे ।

अब शुरू करते हैं एक नया खेल, आवाज और स्वर का।

सांस लो

1. पीठ के बल सीधा आराम से लेट जाएं। फिर अपने पेट पर एक किताब रखो और उसे अपनी श्वांस के साथ ऊपर–नीचे होता देखो। ऐसा 10–12 बार कर के अपने आपको इसका आदी बनाओ।

2. अपनी पीठ को दीवार से सटा कर आराम से खड़े हो जाओ। किसी किताब का एक किनारा अपने पेट के साथ लगा लो। अब किताब को दबा कर सांस लो ताकि ज्यादा से ज्यादा हवा बाहर निकले । जब हवा निकल जाए तो धीरे– धीरे अंदर को सांस खींचो इस दौरान किताब को अपने से दूर करते जाओ।

3. अभ्यास नं. 2 को दोहराओ, इस बार आराम से मुंह के रास्ते सांस खींचते हुए (अंदर को)। फिर इसी को दोबारा करने की कोशिश करो, अ...आ, इ...ई.... की आवाज के साथ।

नए रंग–नए ढंग

अब तुमने अपनी सांस पर कुछ हद तक काबू पा लिया होगा। इसलिए अब कुछ और भी मुश्किल काम कर सकते हो, आवाजों के साथ।

यह दिलचस्प घटना देखो–''मुझे छुरी दे दो ।'' इसे तुम कितने अलग–अलग तरीकों से कह सकते हो ? इस बात के साथ खेलो– कभी इसे नम्रमा के साथ कहो, कभी आदेश के ढंग से , कभी धमकी मान कर। और भी कई तरीके से।

इसके अलावा भी कई और प्रयोग हैं –पहले दो शब्द चिल्ला कर बोलो, फिर रुक कर जल्दी से अंदर को सांस लो; मानो किसी ने तुम्हें चाकू से मारा हो। ''छुरी'' शब्द को फुसफुसा कर बोलो, थोड़ा और रुक कर उसके साथ ''कृपया'' जोड़ दो। देखो, कैसे बदलता है वाक्य का मतलब ? एक ही वाक्य को दूसरा अर्थ देने के लिए अपनी आवाज की भावना बदलो तथा रुकावट और बोलने की गति में भी नयापन लाओ।

ध्वनियों की दुनिया

अब कुछ अलग ही करते हैं। अपने मित्रों के साथ उन आवाजों की नकल करो, जो तुम अपने आसपास सुनते रहते हो। शुरुआत में कोई सरल सा स्वर लें, जैसे आंधी की आवाज। पता लगाओ कि तुम किस प्रकार के स्वरों की नकल कर सकते हो; हल्की, सुहानी हवा जो तेज तूफान बन जाए; दूर का गरजता बादल जो पास आते–आते अचानक जोरदार कड़ाके में बदले; बारिश की रिमझिम जो मूसलाधार वर्षा बन कर फिर हल्की, लगातार बारिश बन जाए; पेड़ों के हिलने की आवाज, दरवाजे की चरमराहट, धड़ाके से बंद होती खिड़कियां या फिर और बहुत सी ध्वनियां जिनसे सावन का नजारा बन जाए। यह कर के कुछ नयापन लाने की कोशिश करो। प्रत्येक मित्र, अलग–अलग स्वर निकाले। एक विचित्र ध्वनियों की दुनिया बन जाएगी। ऐसा दो–तीन बार कर के देखो।

तुम चाहो तो ये भी कर सकते हो–

(क) सुबह सवेरे : गौरेया, कौवे, सड़क पर लोगों की बातचीत, गाड़ियों का आवागमन, चाय के प्यालों की आवाजें, नहाना, विविध भारती की धुन।

(ख) भूत बंगला : दरवाजों की चरमराहट, पैरों की आहट, चिमनी में हवा, अचानक चिल्लाना, भूतों की फुसफुसाहट।

(ग) दफ्तरी काम : टाइपराइटर, कुर्सियों की आवाज, बातचीत, टिफिन–खोलना,घंटियां, क्रिकेट–कमेंट्री, वगैरह

(घ) स्थानीय त्यौहार : लोक गीत, खाना बनाने की आवाजें, मंदिर की घंटी, लोगों के समूह की आवाजें।

अभ्यास के प्रश्न–2

नाटक में आवाजों के उतार चढ़ाव का क्या महत्व होता है ?

आपको कौन सी ध्वनियां निकालने में सफलता मिली...

पढ़ो और सुनाओ

कुछ कविताएं आगे दी जा रही हैं। इन्हें नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक ''महक सारे गली गली '' से चुना गया है। आरंभ करो एक साथी से, जो पूरी कविता सब को पढ़ कर सुनाए। इसके बाद कविता को अलग–अलग हिस्सों में बांट लों। कुछ हिस्से एक–एक कर के पढ़े जा सकते हैं, कुछ समूह में या पांच छह मित्रों के साथ। जरूरी यह है कि ऊंचा–ऊंचा पढ़ा जाए, न कि मन में । कविता को दिलचस्प बनाने के लिए अपनी आवाज में गति, लय, मात्रा और विभिन्नता लाओ। कुछ ध्वनियां भी निकाल सकते हो। कविता में भाव और गति लाने से पहले कविता को तीन–चार बार तेज स्वर में पढ़ लेना उचित होगा। ऐसी ही कुछ और कविताएं छांटो, जिनमें तुम्हारी आवाज का सही इस्तेमाल हो सके।

कैसा लगा? मजा आया न! एक अभिनेता के लिए यह जानना बहुता जरूरी है कि आवाज और स्वर का इस्तेमाल कैसे हो सकता है और हां, शारीरिक गति या हरकत का भी। इसलिए तुम हरकत करना सीखो– कैसे? करके।

ऑधी

रात हुई तारीकी छाई, मीठी नींद सभी को आई।

मुन्नू सोया अप्पा सोई, अब्बा सोए अम्मी सोई।

आधी रात हुई जब सोते, खर–खर–खर खर्राटे भरते।

चुपके–चुपके ऑधी आई, गर्द गुबारे उड़ाती लाईं।

चली हवाए सुर सुर सुर, कागज उड़ गऐ फुर–फुर–फुर–फुर।

खड–खड़–खड–खड़ पत्ते खड़के, डरने वालों के दिल धड़के ।

बजने लगे किवाड़ खट खट, घर वाले सब जागे झटपट ।

खटपट सुन कर मुन्नू जागा, उठ कर झटपट अन्दर भागा।

ऑधी ने फिर जोर दिखाया, फूस का छप्पर दूर गिराया।

टीन उड़ाई पेड़ गिराए, खपरे भी छत के सरकाए।

शाखें टूटी तड़–तड़–तड़–तड़, बादल गरजे गड़–गड–गड–गड।

बिजली चमकी चम–चम –चम–चम, बूंदे टपकीं कम–कम–थम–थम।

लेकिन वह बूंदें थीं कैसी, पट–पट–पट–पट ओले जैसी।

–इस्माइल मेरठी

हम भी होते काश कबूतऱ

हम भी होते काश कबूतर ,
मजे उड़ाते दिन भर उड़ कर।
बच्चे हमें चुगाते दाने,
गाते मीठे–मीठे गाने।
खूब गुटर गूं करते दिन भर,
हम भी होते काश कबूतर।
हाथ किसी के कभी न आते,
यों फुर से फौरन उड़ जाते,
ना होता पापा जी का डर,
हम भी होते काश कबूतर ।
साथ हवा के बातें करते,
बस्ती के दिन रातें करते,
ना होता स्कूल का चक्कर,
हम भी होते काश कबूतर।
बिन पैसे हम खूब घूमते,
यों उड़ते आकाश चूमते, पेड़ो पर होते अपने घर, हम भी होते काश कबूतर।

–सूर्यभानु गुप्त

उल्टी नगरी

उल्टी नगरी एक अनोखी, वस्तु जहां की उल्टी–पुलटी।
उल्टी दुनिया, उल्टा पर्वत,उल्टे पेड़ चिमनियां उल्टी।।
देतीं दूध चीटियां, खरहे हल खीचें, चूहे हलवाहे।
पैसा दुर्लभ, सुलभ अशर्फी, भोजन सबको खाना चाहे।।
दाढ़ी–मूंछें रखें औरतें, मर्द खिलाते घर में बच्चे।
रहते लोगों में मकान ही, झूठे जीते भरते सच्चे।।
सर पर जूता, पगड़ी पग में मच्छड़ की है बनी सवारी।
दिन में चांद चमकता, सूरज सारी रात करे उजियारी।।
जलता पानी, आग बुझाती, चलते सर के बल नर–नारी।
छप्पर तो जमीन पर रहता, घोड़ा पीछे, आगे गाड़ी।।
नाव चलाते मरुस्थलों में, सांझ जागते, सोते तड़के।
पांच बरस तक रहते बूढ़े, साठ बरस में बनते लड़के।।
सुनती आंखें, कान देखते, नीचे बाबू कुर्सी ऊपर ।

चढ़ जातीं पहाड़ पर नदियां, सिन्धु–झील से निकल निकल कर।
एक बात का वहां बड़ा सुख,पढ़ते गुरु, पढ़ाते चेले।
मौज उड़ाते बैठ भिखारी, शहंशाह चलाते ठेले।।
राही ज्यों–के–त्यों रह जाते, और चला करती है डगरी ।
उल्टी सारी वस्तु जहां की, देखी ऐसी उल्टी नगरी।।

–राधेश्याम पोद्दार

गतिविधि– कुछ और अच्छी कवितायें चुनो चाहो तो भाषा की किताब से चुन लो और उन्हे बच्चों के साथ हाव भाव के साथ गाओ ।

हिलो : कभी तुमने ऐसा कर के देखा है– एक साथ सिर हिलाना और कमर मटकाना । किसी भी हरकत के लिए तुम्हारे शरीर के अलग–अलग हिस्से काम आते हैं। हाथ, पांव और जोड़, जो हम विशेष प्रकार से ही हिला सकते हैं। अगर हम बहुत सी छोटी–छोटी हरकतों को इकट्ठा देखें तो हमारे पास विभिन्न प्रकार की हरकतों का भंडार हो जाएगा। अब बताई जा रही हरकतों को करने की कोशिश करो–

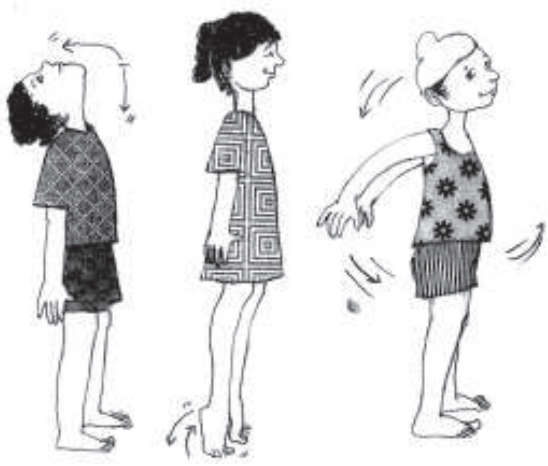

1. अपने पैरों पर बिलकुल सीधे खड़े हो जाओ, दोनों पैर एक (सामने) दिशा में रख कर। पहले अपना सिर आगे को गिरने दो, फिर उसे झटके से पीछे करो, कठपुतली की तरह। अब सिर को दाएं–बाएं हिलाओ, पहले एक तरफ गिराओ, फिर दूसरी तरफ। अंत में इन चारों हरकतों को बिना रुकावट के तेजी से करो।
2. अब आई तुम्हारे कंधों की बारी। पहले तो शरीर को ढीला छोड़ कर आराम से खड़े हो जाओ। लंबी सांस लो। कंधो को इस तरह ऊपर करो, मानों तुम्हारी गरदन है ही नहीं। फिर पीछे। अंत में बगैर रुके इन चारों हरकतों को एक के बाद एक कर के थोड़ा आराम करो।
3. इन चारों हरकतों को चार दिशाओं में (आगे, पीछे, दाहिने और बाईं तरफ) शरीर के इन हिस्सों के साथ करो–पीठ का निचला हिस्सा नितंब संधि, कमर और टांगें।
4. अपने पैरों की उंगलियां पर धीरे–धीरे खड़े हो जाओ, फिर वापस एड़ियों पर आओ। अब थोड़ा आराम करो (खड़े–खड़े)।
5. अपनी बांहों को पूरी ताकत से आगे–पीछे हिलाओ।
6. अपनी बांहों और टांगों को इस तरह हिलाओं मानो उनको कहीं फैंक देना चाहते हो।

यह सब करते समय तुम्हारी कोशिश यह रहनी चाहिए कि शरीर के जिस हिस्से से तुम हरकत करना चाहते हो, केवल वही हिले, न कि पूरा शरीर। और ध्यान रहे–ज्यादा जोश अच्छा नहीं। कहीं थकान से बिस्तर पकड़ने की नौबत ना आ जाए।

बिना तैयारी की रचना

आगे कुछ उपाय दिए गए है, जिनसे तुम्हारी समझ में बदलाव और नयापन आ सकेगा।

1. मान लों कि तुम एक छोटे से बीज हो। तुम जमीन के नीचे से धीरे–धीरे ऊपर आ रहे हो, और धूप व हवा की तरफ बढ़ने लगते हो। अब तुम एक नई दुनिया में हो–अपने आसपास को देखो, फिर पौधो से बड़े होते हुए पेड़ बन जाओ। करीब की चीजों और जीवों से मिलो–जुलो; भिनभिनाती मधुमक्खियां, घास चरती गाय, सुंदर तितलियां, जोरदार बारिश, और दूषित हवा से भी। फिर तुम बूढ़े होने लगते हो, खड़े लेकिन झुके भी, उस दिन तक, जब तक तुम्हें काटा नहीं जाता है।

अगला उपाय इससे एकदम अलग है।

2. यह सोचो कि तुम एक संकरी सी नली में सफर कर रहे हो –कहां?

एक बीमार वैज्ञानिक की रक्त धारा में। सावधान! यहां सफेद रक्ताणु तुम पर हमला कर रहे हैं। अब तुम वैज्ञानिक के धड़कते हुए दिल के बीच में खिंचे जा रहे हो। कभी तुम अंतड़ियों पर चढ़ रहे हो, कभी पेट के रस में तैर रहे हो, तो कभी बालों के जंगल से लड़ रहे हो।

3. कैसा लगा? शायद यह अभ्यास कुछ कठिन हो गया। चुनौती की तरह था ना! अब कोई साधारण सी रोज घटने वाली ऐसी स्थिति लो जिसमें चार से सात मित्र भागीदारी निभा सकें। जैसे कि :

–विद्यार्थी नकल करता हुआ पकड़ा जाए

–रेलगाड़ी दुर्घटना

–एक रात जब चोर घुस आए

–घरेलू झगड़े

अब शायद तुम अपने भी कुछ विचारों को रूप देने के लिए तैयार हो। कई एक तुम्हें अखबार में ही मिल जाएंगे। किसी भी दिलचस्प खबर को ले कर उसमें कुछ अदला–बदली कर लो। दूसरा तरीका है, विभिन्न कहानियों के पात्रों को मिलाना–जैसे बीरबल और टार्जन को सिपाही और जोकर...? जब तुम्हारी कल्पना फुर्ती से दौड़ने लगे,समझ लो कि तुम नाटक के रास्ते पर चल पड़े हो।

चलो नाटक करें

और क्यों नहीं ? तुम अब नाटक के लिए अच्छी तरह तैयार हो, क्योंकि तुम तो कितने अभिनय कर भी चुके हो– मूर्ति का, मशीन के हिस्से का, शरीर के हिस्सों की कसरत, अलग–अलग शक्लें, कविता का अभिनय तथा बहुत सारी अकस्मात रचनाएं भी।

कहानी ढूंढ़ो

कहां? अपनी भाषा की किताब देखो–हिंदी, अंग्रेजी या और किसी भी भाषा की । इसमें तुम्हें कुछ अवश्य मिलेगा। इसके अलावा तुम्हारे आस–पड़ोस या गांव में भी जीती–जागती कहानियां मिलेंगी। किसी को भी चुन सकते हो।

थोड़ा विचार करें कि कहानी में ऐसी कौन सी बात है, जिससे उसको नाटक बनाया जा सकता है। पहली बात है ''ड्रामा'' यानि कोई समस्या/विवाद या संघर्ष । यह कुछ भी हो सकता है– जैसे अल्लादीन और उसके चचा का जादुई चिराग पर विवाद या फिर ऐसी स्थिति जिसमें एक व्यक्ति दूसरे को कुछ लेने से रोकना चाहता है जैसे रामायण में कैकई ने राम को राजा बनने से रोका।

यहां यह भी ध्यान में रखना होगा कि ऐसी कहानी चुनें जो मंच पर की जा सकती है। अगर तुम्हारा ड्रामा ध ारती की दौड़ से अंतरिक्ष और समुद्र तल तक जाता है, तो कुछ और चुनो।

नाटक और पात्र

नाटक के प्रारंभ में ही इस बात का ध्यान रखो कि नाटक में कितने लोगों (यानी पात्रों) की जरूरत है। साथ में यह भी कि क्या नाटक के सभी पात्रों का अभिनय तुम्हारी मंडली के मित्र कर सकते हैं या नहीं।

किसी भी साधारण कहानी से शुरुआत हो सकती है। उसके लिए पात्र चुन लो, फिर उसकी रूपरेखा (प्लाट आउट लाइन) पर काम करने लगो। सबसे पहले तो कहानी की सभी घटनाओं को उनके सही क्रम में लिख लें। फिर इस रुपरेखा को अलग–अलग हिस्सों यानी दृश्यों में बांट लें। हर दृश्य की शुरुआत, मध्य भाग और अंत साफ समझ में आए। दूसरी बात कि हर सीन के साथ कहानी को आगे बढ़ना चाहिए। बल्कि मजा तो तब आयेगा जब हर दृश्य अपने से पहले दृश्य से बिल्कुल अलग ही भाव का हो।

हो सकता है कि दृश्य की तैयारी करते समय तुम्हें कुछ बदलाव करने की जरूरी महसूस हो। इसके लिए अच्छा यह होगा कि तुम प्रत्येक दृश्य के बाद रुक कर उस पर बातचीत करो। देखो कि उसमें क्या–क्या कमियां और खूबियां हैं। प्रत्येक दृश्य में कई बार अदल–बदल करने के बाद ही तुम जान पाओगे कि उसे बेहतर ढंग से कैसे प्रस्तुत किया जा सकता है।

इसके बाद तुम या तो नाटक के सारे डायलाग (बातचीत) और ऐक्शन (क्रिया) लिख कर पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) कर लो। दोनों के अपने–अपने लाभ हैं। परंतु याद रहे–यदि तुम अपना नाटक एक से अधिक बार करना चाहते हो तो लिखी हुई स्क्रिप्ट जरूरी है।

क्लाइमैक्स/चरम बिंदु

नाटक का क्लाइमैक्स या चरम् बिंदु अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण होता है, इसलिए तुम्हारे दिमाग में इसका नक्शा बिल्कुल साफ होना चाहिए। यह भी जरूरी है कि आखिरी दृश्य से पहले सस्पेंस (अनिश्चय) बना रहे। इससे दर्शक में यह जानने की लालसा बनी रहेगी कि आगे क्या होने वाला है।

दर्शकों की रुचि बढ़ती है कि नाटक के विभिन्न भावों (मूड) से। दुख भरे दृश्य के बाद खुशी हो, या किसी डरावने अभिनय के बाद हंसी मजाक; ऐसे में दर्शक मंच से बंधा रहता है।

क्लाइमैक्स या अंत एक ऐसी गांठ की तरह होता है जो कहानी के सभी धागों को सही तरीके से बांध ले। इस तैयारी के बाद ही नाटक को खेलने की सोचो। नाटक के पहले दृश्य में भी कुछ बातें जरूरी हैं– उसे नाटकीय (ड्रामेटिक) होना चाहिए, सारे या अधिकतर पात्रों का परिचय करा देना चाहिए ताकि तुम नाटक की क्रिया (ऐक्शन) में सीधा कूद पड़ो। नाटक की शुरुआत हमेशा धमाकेदार होना चाहिए।

जगह का चुनाव

अब यह तय करना है कि तुम्हारे नाटक के लिए उचित जगह कौन सी होगी? नाटक बाहर होगा या अंदर, कितने दर्शक उसे देखने आएंगे, वे कहां बैठेंगे,क्या सभी दर्शक अपनी–अपनी जगह से नाटक को अच्छी तरह देख–सुन पाएंगे या नहीं। यह सब ध्यान में रख कर स्थान का चुनाव करो।

नाटक की ओर

अब बारी आती है पूर्वाभ्यास यानि रिहर्सल की। रिहर्सल में तुम्हें नाटक की कहानी और स्क्रिप्ट को अच्छी तरह जान लेना है, याद कर लेना है। नाटक के सभी पात्रों को इकटठा करो। सभी लोग स्क्रिप्ट को कई बार पढ़ें, ताकि वे अपनी आवाज और चेहरे के भाव ज्यादा से ज्यादा प्रभावी बना सकें। इसके बाद हर पात्र को दूसरे पात्रों के साथ नाटक की क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। यह उतनी ही जगह में होना चाहिए जितना कि आपका रंगमंच है, उससे बहुत ज्यादा या कम जगह में नहीं।

पहले रिहर्सल में यह तय हो जाना चाहिए कि तुम्हारे दर्शक कहां बैठेंगे, और रंगमंच पर तुम्हारा सामान (कुर्सी, मेज आदि), पेड़, सीढ़ियां वगैरह कहां रहेगा। हो सके तो इन चीजों की जगह को चाक से निशान लगा लें।

इसके बाद सभी अभिनेताओं को अपने–अपने संवाद (यानि जो भी उनको नाटक में बोलना है) याद कर लेना चाहिए।

परिष्कृत पूर्वाभ्यास (पालिशिंग रिहर्सल)

सभी पात्रों को अपने संवाद याद हों तथा नाटक की समूची प्रक्रिया सुनिश्चित कर ली जाए; इसी के बाद नाटक में जान आती है। यहां तुम्हें एक और बात पर गंभीरता से काम करना है–पात्रों की एक–दूसरे के साथ प्रतिक्रियाएं कैसी हैं या होनी चाहिए। छोटे–छोटे अंश, अलग–अलग पात्र कैसे खड़े होंगे, या बैठेंगे या चलेंगे – भी तय किया जाए।

अभ्यास के प्रश्न–3.

एक अच्छा नाटक तैयार करने के लिये क्या क्या करना होगा या किन बातों का ध्यान रखना जरुरी है।

रंगमंच के पीछे

नाटक तो वह हुआ जो दर्शक देखेंगे, लेकिन उसको सफल बनाने में कई

बातें महत्वपूर्ण होती हैं। रंगमंच के पीछे होते हैं–सेट्स और सामग्री, वेशभूषा और मेकअप (श्रृंगार), प्रकाश और संगीत । सेट के बारे में तो तुम पढ़ चुके हो। अब थोड़ा ध्यान कुछ दूसरी चीजों पर :

वेशभूषा

जरूरी नहीं है कि वेशभूषा भड़कीली–चमकीली हो। हां, वेशभूषा पात्रों के अनुरूप जरूर होना चाहिए। अब तुम बूढ़े भिखारी को नए, साफ, सुंदर कपड़े पहन कर तो मंच पर भेजोगे नहीं । पहले तो यह जान लो कि तुम्हारा नाटक किस युग और स्थान का है, वहां के लोग कैसे कपड़े पहनते थे। फिर,विस्तृत रूप से एक सूची बनाओ कि प्रत्येक पात्र क्या पहनता है;टोपी,जूते, हाथ में पकड़ने का सामान आदि।

वेशभूषा में अंतर रखना जरूरी है। अगर तुम्हारे नायक/नायिका एक रंग में हैं जो खलनायक हो दूसरे रंग के कपड़े पहनाओ। इस तरह रंगों के अंतर से , पात्रों के विभिन्न व्यक्तित्व भी उभर आएंगे। वेशभूषा के लिए तुम्हें कई जगह से सामान मिल सकता है। अपने घर में ही छानबीन करके देखो– पुरानी साड़ियां, परदे, चादरें तक काम आ सकती हैं। घर के किसी सदस्य या अपनी नाटक मंडली के किसी व्यक्ति से मशीन पर कपड़े सिलवा सकते हो। सिलाई की जगह पिन और स्टेपल करने से भी काम बन सकता है। पेंट किए या चिपकाई गई आकृतियां, चाहे कागज की ही क्यों न हों,भी सुंदर लगती है। वेशभूषा में कल्पना का बहुत महत्व है, खासकर जब तुम्हें पात्रा को तितली, समुद्र या दूसरी दुनिया के प्राणी के कपड़े पहनाना हो। वेशभूषा का काम करते समय पात्र की किसी भी एक विशेषता को ध्यान में रख कर चलो– जैसे, तितली के पर, समुद्र के लिए मास्क या बड़ी चादर जैसा लबादा।

मेकअप (श्रृंगार)

अभिनय के लिए जरूरी नहीं कि सभी बन–ठन के रहें। सादगी का अपना असर होता है। तय तो तुम्हें यह करना है कि किन पात्रों को श्रृंगार की जरूरत है–अगर किसी को बूढ़ा दिखाना है तो उस पर ध्यान दो। बालों को सफेद पर बनाने के लिए पाउडर या जिंक आक्साइड का इस्तेमाल हो सकता है। काजल–पेंसिल के साथ चेहरे पर कुछ लकीरें डालने से व्यक्ति बूढ़ा सा नजर आता है। किसी को डरावना बनाना है तो उसके पूरे चेहरे पर काली–मोटी पेंसिल और लिपस्टिक से गोल चक्कर (घेरे) और दूसरे आकार बना दो। ध्यान रहे कि हर पात्र को अपनी वेशभूषा का भी रिहर्सल चाहिए, इसलिए किसी एक रिहर्सल में इसका अभ्यास जरूर करों एक दर्पण के सामने बैठ कर देखो कि तुम्हारा मेकअप कैसे हो सकता है। अलग तरह के मुंह बना कर भी देखो कि तुम्हारा मेकअप तुम्हारे चेहरे के भावों को कैसा प्रभाव देता है। याद रहे कि अभिनय करते समय दर्शक को तुम्हारे भाव कुछ दूरी से दिखाई देगें।

प्रकाश

एक साधारण टेबल लैंप भी तुम्हारे नाटक में विचित्र असर ला सकता है। प्रकाश के ऊपर रंगीन पन्नी लगाने से मंच पर अलग ही प्रभाव पड़ता है– नीला रंग रात के दृश्य हेतु, भय के भाव के लिए लाल रंग।

प्रकाश द्वारा उचित प्रभाव लाने के लिए अलग–अलग ऊंचाइयों से इसका प्रयोग करें। टेबल लैंप को जमीन पर रख कर दीवार पर परछाइयां बनाई जा सकती हैं। कोई सीन केवल परछाइयों द्वारा भी दिखाया जा सकता है (जिसमें पात्रों पर प्रकाश आगे की बजाए पीछे से पड़े और उनकी परछाइयां एक कपड़े पर आएं)। किसी दृश्य मे मोमबत्ती या दियों का प्रयोग हो सकता है। या फिर साधारण टार्च पर रंगीन पन्नी लगा कर नए प्रभाव पैदा किए

जा सकते हैं। थोड़े से परिवर्तन से अद्‌भुत प्रभाव देखने को मिल सकते हैं, जिनका अभ्यास तुम्हें पहले से होना चाहिए। परंतु सावध ाान ! बिजली कोई खेल नहीं है।

संगीत

नाटक को सही भाव (मूड) देने में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके लिए या तो रिकार्ड किया हुआ संगीत इस्तेमाल किया जा सकता है, या मंच के पीछे कलाकारों से साज बजवा सकते हैं । अगर टेप रिकार्डर का प्रयोग हो रहा है तो कब, कहां, कौन सा संगीत बजेगा, और कितनी देर बजेगा; इसका लिखित विवरण तैयार होना चाहिए। संगीत असाधारण हो तो उसका प्रभाव अधिक होगा। कुछ ऐसा चुनें जो दुख,सुख और भय के भावों के लिए सही माहौल बनाए रखे।

ध्वनि प्रभाव

नाटक में विभिन्न ध्वनि प्रभाव लाना कोई कठिन काम नहीं है। हम कुछ ऐसे उदाहरण बता रहे हैं, जिनका प्रयोग आप अपने नाटक में भी कर सकते हैं एक पानी के गिलास में स्ट्रा/पाइप डाल कर उसमें हवा फूंको और उसकी आवाज टेप कर लो। (यह तेज बहती नदी जैसा सुनाई पड़ता है)। माइक में सीधे फूंक मारो (तूफान की आवाज का असर आता है)। साधारण घड़ी की टिक–टिक को टेप कर लो (एक टाइम बम जो फूटने वाला है)। इसके अलावा रोजाना जीवन की आवाजें–चिड़ियों का चहचहाना,सुबह–सवेरे चिड़िया और कौवे, कार का इंजन चलाना, फिर चलने का स्वर, आदि। इन सभी ध वनियों को कभी धीमा, कभी ऊंचा, बहुत ऊंचा कर सुनें। देखो कि इनका प्रभाव कैसा निकलता है। ध्यान रहे कि संगीत और ध्वनि प्रभाव तुम्हारे नाटक को और दिलचस्प तो बना सकते हैं, लकिन ये दोनों पूरी तरह से हावी नहीं होने चाहिए।

ड्रेस रिहर्सल

नाटक के ड्रेस रिहर्सल से पहले तीन–चार रिहर्सल बिना रुकावट के होने चाहिए। इनमें निर्देशक को केवल अभिनेताओं की गलतियां लिखनी चाहिए, रिहर्सल समाप्त होने के बाद ही उन पर बातचीत होनी चाहिए। इस समय आलोचना से ज्यादा जरूरी है हौंसला बढ़ाना।

ड्रेस रिहर्सल के समय पात्रों के साथ–साथ नाटक में काम करने वाले सभी इकटठा होते हैं–मंच के पीछे काम करने वाले,मंच अभिनय करने वाले, सेट और सामग्री बनाने वाले, प्रकाश और संगीत के प्रभारी, वेशभूषा और श्रृंगार का काम करने वाले। साधारण तौर पर अंतिम ड्रेस रिहर्सल पर ही रंगमंच के परदा उठने–गिरने का अभ्यास किया जाता है।

अभ्यास के प्रश्न–4.

नाटक में रंगमंच के पीछे किस तरह की तैयारी की जरुरत होती है

तुम्हारे दर्शक

अब नाटक तो तैयार है, सो यह भी कोशिश करो कि बहुत सारे लोग उसको आ कर देखें । दर्शकों की जानकारी के लिए हाथ से तैयार पोस्टर/इश्तेहार कई जगह लगाए जा सकते हैं–स्थानीय क्लब, स्कूल में,पुस्तकालय या दुकानों में। पोस्टर में तुम्हारे नाटक का नाम, तारीख, समय और स्थान जरूर लिखा होना चाहिए। नाटक के टिकट या तो हाथ से बना लें या फिर सस्ते रबर के ठप्पे से कागज पर छाप लें।

बैठक व्यवस्था

अब वह दिन आ गया जब तुम्हारा नाटक रंगमंच पर खेला जाएगा। अपने दर्शकों के बैठने के लिए तकिये और कुर्सियां इस तरह लगाओ कि देखने में सुंदर लगें। सभी को मंच अच्छी तरह दिखाई देना चाहिए। कुछ लोगों की जिम्मेदारी होगी कि वे दर्शक को उनकी सीट/जगह तक पहुंचाए। अगर तुम्हारे नाटक में मध्यांतर (इंटरवल) है तो यही लोग कुछ खाने–पीने का प्रबंध भी कर सकते हैं।

पात्र

रंगमंच पर अभिनय करने से पहले सभी अभिनेताओं को अच्छी तरह आराम करना चाहिए। ठीक समय पर नाटक के कपड़े पहन कर श्रृंगार की तैयारी कर लेनी चाहिए। ध्यान रहे कि श्रृंगार करने में अधिक समय लगता है और तुम्हें अपने दर्शकों को इंतजार नहीं करवाना चाहिए। निर्देशक को नाटक से पहले अपने अभिनेताओं के साथ कुछ समय बिता कर उनका हौसला बढ़ाना चाहिए ताकि मंच पर कोई गलती भी हो तो वे घबराए नहीं, बल्कि संभाल सकें और नाटक को आगे ले जा सकें। सबको अपनी शुभकामनाए देना न भूलें।

नाटक/शो के बाद

तालियां! खेल खत्म–पैसा हजम! लेकिन नहीं, नाटक के बाद भी कुछ जिम्मेदारियां रहती हैं। अपने दर्शकों से मिलने, बधाई आदि स्वीकार करने के बाद यह न भूलो कि वेशभूषा का सामान,सेट कुर्सियां, तकिये आदि को संभाल कर रखना है। फिर क्या? तुम अपने सफल–कामयाब नाटक का जश्न मनाओं। एक–दो दिन के बाद एक पार्टी रखो जहां खाने–पीने के साथ यह चर्चा भी हो कि नाटक में क्या ठीक हुआ, क्या नहीं। और फिर अपने अगले नाटक की तैयारी में जुट जाओ!

अभ्यास के प्रश्न–5.

नाटक पर आप फीडबैक किस तरह करेंगे किन किन बातों पर ध्यान देंगे

प्रोजेक्ट

भाषा कि किताब से किसी कहानी का नाट्यरूपांतर किजिए उसे मंचित भी किजिए। अपने अनुभवों को लिखिए।

इकाई 3. कबाड़ से कलाकृति

(पांच कालखण्ड व 5 अंक आंतरिक मूल्यांकन)

■ हमारे घरों मे ही बहुत कुछ ऐसा सामान होता है जिसे हम बेकार मान कर फेंक देते हैं लेकिन उनसे बहुत सारी सुंदर चीजें बनाई जा सकती हैं। टूटी हुई चप्पल,पुरानी गेंद,विभिन्न वस्तुओं के खाली खोखे,प्लास्टिक बोतल,स्केच पेन इत्यादी वस्तुओं से सुन्दर चीज़ें बनाने का अभ्यास करें।

■ कागज को मोड़–मोड़ कर नाव तो आप भी बना लेते होंगे, कुछ अन्य चीजें जैसे फूल, डिब्बा इत्यादि भी बनाएँ।

■ हम सभी लिखना जानते हैं लेकिन कभी ये नहीं सोचा कि इन अक्षरों और अंकों में कितने चित्र छुपे हुए हैं, आप भी इनमें छिपे चित्रों को पहचानिए और उन्हें बनाईए।

■ स्थानीय सामग्री जैसे मिट्टी, बाँस, घास आदि के खिलौने बनाने का प्रयास कीजिए।

पठन सामग्री:

7. **खुलते अक्षर खिलते अंक** गुरुजी विणु चिंचालकर –एन बी टी, दिल्ली)
8. **मेरी अपनी दुनिया** तथा उनकी कलाकृतियों का अध्ययन।
9. ओरेगेमी

इकाई –3

कबाड़ से कलाकृति

पठन सामग्री – 1

खुलते अक्षर–खिलते अंक

विष्णु चिंचालकर

प्रस्तावना

कोई भी काम यदि खेल भावना से किया जाए तो वह बोझिल न लगते हुए आसान हो जाता है। छोटे बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति खेलने की होती है, यह बात ध्यान में रखते हुए खेल खेल में ही यदि कोई बात उसे समझाई जाए तो वह उसे आसानी से समझता है। बालक की शिक्षा में इसलिए ऐसे साधन महत्वपूर्ण होते हैं जिनके साथ खेला जाए। चित्रकारी भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम और साधन है। ये है भी रेखा, रंग और आकारों का खेल। खेल–खेल में ही आड़ी–तिरछी, टेढ़ी–मेढ़ी, सरल तथा घुमावदार रेखाओं से कई प्रकार के आकार बन जाते है रंगों के छींटे और धब्बे भी तो अजीबोग़रीब आकार बना लेते हैं। आसमान में बादलों के जमघट में या बिखराव में ऐसे ही आकार दिखाई देते है। शुरू में ये सारे बेमतलब से लगते है परंतु उन्हें गौर से देखते रहने पर धीरे–धीरे उनमें परिचित शक्लें उभरने लगती है। वास्तव में वहॉ तो होते हैं, केवल धब्बे और बादलों के टुकड़े। शक्लें तो होती है देखने वालों के मस्तिष्क में। प्राकृतिक रूप से हर देखने वाले के अंदर मौजूद सुप्त चित्रकार उन्हें देखकर अपनी कल्पना से ये शक्लें या चित्र बनाता है। प्रकृति ने खूब सारी बातें, प्रवृत्तियां हमारे मस्तिष्क में दे रखी है। वे सारी सुप्तावस्था में होती है। हमारा बाहरी वातावरण, उसमें होने वाली प्रत्येक छोटी–बड़ी चीज़ उस प्रवृत्ति को जगाने, उकसाने का काम करती है। उसके उकसावे में हम किस तरह आते हैं, किस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं यह निर्भर करता है हमारी संवेदनशीलता पर। वातावरण में पाई जाने वाली बातों को देखकर, सुनकर, स्पर्श करके हमारे अंदर का सुप्त चित्रकार, गायक, नर्तक, कवि तथा वैज्ञानिक जाग उठता है और अपने–अपने ढंग से प्रेरणा पाता है। सही मायने में हमारा वातावरण तथा उसकी हर चीज़ हमारी शिक्षक होती है। वह अपने कार्यकलापों से हमारी जिज्ञासा जगाती है, हमारे चिंतन तथा कल्पना को चालना देती है। हमारी संवेदन क्षमता के अनुरूप हम जो अनुभव ग्रहण करके अपना निष्कर्ष निकालते हैं, वही हमारी सही दिशा है।

उद्धेश्य

- खेल खेल में शिक्षा देना।
- बच्चों में छुपी संवेदनशील क्षमताओं को पहचान कर उनके विकास के लिये उचित वातावरण निर्माण करना।
- यह समझ पाना कि बच्चे अपने आप में ही विभिन्न माध्यमों से अनुभव प्राप्त करते रहते हैं।
- बच्चों की जिज्ञासा का उचित समाधान करना।

बालक केवल एक मिट्टी का लोंदा नहीं है जिस पर हमारी इच्छा के अनुरूप कोई आकार थोपें। उसके अंदर विद्यमान प्रवृत्ति को, उसके कार्यकलापों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करके उसकी संवेदनशील क्षमता को पहचान कर उसका ही विकास स्वयं वह बालक किस प्रकार कर सके ऐसा वातावरण निर्माण करके हम उसे

सहयोग दें। हमारी अनावश्यक दखलंदाजी से अवरोध निर्माण न करें, यही हमारी (पालकों तथा शिक्षकों की) भूमिका होनी चाहिए।बालक के लिए तो सारा वातावरण ही एकदम नया होता है। हर चीज़ उसे अनूठी लगती है और स्वभाविक संवेदनशील प्रवृत्ति के कारण वह उसके प्रति आकर्षित होता है। बरसों से देखते रहने के कारण हमारी संवेदना शिथिल हो जाती है, इसलिए बालक की जिज्ञासा और हरकत हमें निरर्थक जान पड़ती है, और तब उसे सहयोग देने के बजाए हम उसे दबाने का प्रयास करते हैं।

खेल की अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण खेल के दौरान ही उसे कई प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं। सुखद अनुभवों को वह दोहराता है। अपनी बात को नाचते–गाते हुए कहता है। किसी वस्तु को उछालना–फेंकना, दीवार पर कुरेदना, आड़–तिरछी कुरेदी हुई रेखाओं से बने निशानों को देखकर उल्लासित होना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इन हरकतों में किस प्रकार का अनुभव वह पा रहा है या किस भावना को व्यक्त कर रहा है, इसकी हमें तो ठीक से कल्पना नहीं होती। हमें तो दिखाई देती है, केवल बिगड़ी हुई ज़मीन और दीवारें। नज़र आती हैं उसकी बेमतलब की उछलकूद और बेहूदगी। ऐसी स्थिति में बजाए झल्लाने और नाराज होने के, निर्धारित स्थान तथा उचित सामग्री मुहैया करके इन हरकतों को सही ढंग से मोड़ भी दिया जा सकता है। ऑगन में ही रेती बिछाकर जहॉ किसी टहनी से लकीरें बनाता–बिगाड़ता रहे, चाहे फर्श पर कच्चे मिट्टी के रंगों से खेलता रहे। इस प्रकार के खेल में, अनजाने में बने विभिन्न आकारों से उसका परिचय हो जाता है। भले ही वह दिखाई न दे, परंतु उसके मस्तिष्क में तो अंकित हो ही जाता है। ऐसे समय में यदि हम उसे कोई विशिष्ट आकृति –जो हमारी समझ में आती हो–बनाने का आग्रह करें तो वह उसके प्रति दखलअंदाजी होगी। इसके फलस्वरूप अपनी स्वयं प्रेरित मौलिकता खोकर नकल की प्रवृत्ति की शुरूआत होने की संभावना अधिक रहेगी, जो उसके सही विकास में बाधक बन सकती है।

प्रश्न–1

अक्सर कहा जाता है कि बच्चे तो मिट्टी के लोंदे होते हैं उन्हें जैसा आकार दो वैसे बन जाते हैं। आप इस कथन पर क्या सोचते हैं ? विस्तार से लिखिए।

मुहल्ले के बच्चे, साल–भर में चार–पाँच बार, गणेशोत्सव, होली या ऐसे ही उत्सव समारोह के लिए चंदा एकत्रित करने के लिए मेरे यहाँ आया–जाया करते। हर बार दरवाजे पर ही चंदे के पैसे उन्हें देकर मैं उन्हें बिदा कर देता। दरवाजे में खड़े–खड़े ही उनकी नजर मेरे कमरे की दीवारों पर टँगी या इधर–उधर बिखरी पड़ी अजीबो–गरीब चीजों पर पड़ती है जिन्हें देखकर उनकी नजरों में एक प्रकार का कौतूहल, जिज्ञासा झलकती । आपस में उनकी कानाफूसी चलती है, परंतु संकोच के कारण, भीतर घुसकर अपनी जिज्ञासा पूरी करने का साहस वे नहीं बटोर पाते। केवल दरवाजे से ही झाँकते–झाँकते चंदे के पैसे पल्ले पड़ते ही अधूरी जिज्ञासा लिए लौट जाते। उनकी इस अवस्था का मुझे अहसास होता पर मैंने न जाने क्यों उस पर कभी ध्यान नहीं दिया।

एक दिन की बात है– पाँच–सात बच्चों की टोली मेरे दरवाजे पर आ गई। आज वे चंदा बटोरने नही, एक मेहमान की तरह पधारे थे इसलिए केवल दरवाजे से ही उन्हें बिदा करने की बात नहीं थी। मैंने उनका स्वागत किया। उन्हें भीतर ले आया और उस मौके के अनुरूप उनकी आवभगत की।

बस, इतना काफी था। इतने दिनों की अधूरी जिज्ञासा पूरी होने का मौका उन्हें मिल गया। कमरे में प्रवेश पाते ही सब मेरी उन चीज़ों को बिलकुल निकट से देखने लगे। कुछ ने उन्हें टटोला भी, पूरे कमरे में वे फैल

गए। उनकी जिज्ञासा और उत्साह देखकर स्वयं मैं भी उनके साथ घूमकर उन्हें अपनी चीज़ों के बारे में जानकारी देने लगा। उस समय उनकी और मेरी स्थिति बिलकुल एक सी थी। हम में एक प्रकार की समानता थी। क्योंकि उनकी और मेरी अनुभूतियों में कोई खास फर्क नहीं था। वे पकौड़ियों में और बादलों में मुर्गा, शेर, हाथी वगैरा की शक्लें देखा करते और मैं अपनी फटी–पुरानी चीजों में पत्ते, टहनियॉ, लकड़ी की छिलपियॉ आदि बातों में अपनी मनचाही शक्लें देखा करता। संभवतः इसी कारण वे मेरी अपनी दुनिया में पूरी तरह घुल–मिल गए। घंटे–डेढ़–घंटे के बाद, जब पूरा चक्कर समाप्त हुआ तो पप्पू ने, जिसे उस टोली ने अपना मुखिया चुन लिया था धीरे से मुझसे पूछा हमें भी 'आप जैसे चित्र बनाना सिखाएँगें ?'

और सभी की प्रश्नवाचक नजरें मुझ पर जम गई। 'क्यों नहीं, जरूर सिखाऊँगा बच्चों, लेकिन तुम तो बनाते रहे होंगे ऐसे चित्र अपने स्कूलों में।'

'नहीं दादाजी, हम से शक्ल बनाना जमता ही नहीं। बड़ा कठिन सा लगता है।

'अरे इसमें कठिनाई किस बात की ? भई, तुम लिख लेते हो न ? जो लिख सकता है वह चित्र भी बना सकता है। लिखना भी तो चित्र बनाना है।

अचंभित होकर बच्चे मेरी ओर देखने लगे। शायद मेरा तर्क उनकी समझ में नहीं आया। पेन्सिल से कागज पर आकृतियॉ बनाकर ही उन्हें समझाना ठीक लगा।

लो, देखो–अ क र ट वगैरा–वगैरा क्या इन अक्षरों को पहचानते हो ? अच्छा, इन्हें लिख सकते हो ? और मैंने कागज उनके सामने सरका दिया।

अ क र ट अ क र ट अ क र ट अ क र ट अ क र ट

सबने अपने–अपने ढंग से चारों अक्षर लिखे। हरेक की लिखावट एक–दूसरे से अलग थी। किसी के भी अक्षर छुपे हुए अक्षर के समान नपे–तुले, घुमावों की मोटाई–पतलेपन से मेल नहीं खाते थे फिर भी वे पहचाने और पढ़े जाने लायक थे। इसी वास्तविकता को आधार बनाकर मैंने उन्हें समझाया कि बिलकुल छपे अक्षर के नापतौल समान होते हुए भी सारे के सारे अक्षर जिस प्रकार पहचाने जाते हैं, इन अक्षरों के द्वारा तुम्हें अपनी बात समझाने में कोई रूकावट नहीं आती। ठीक उसी प्रकार किसी भी वस्तु की चाहे वह आदमी हो,जानवर हो, पक्षी या पेड़–पौधा हो, उसकी शक्ल बनाकर अपनी बात समझाना कोई कठिन काम नहीं है। जिस प्रकार अक्षरों की खासियत समझकर तुम उसे अपने ढंग से लिखते हो वैसे ही जिस वस्तु की शक्ल बनानी हो उसकी खासियत पकड़ में आ जाए तो बस वह बन भी जाएगी। अब एक तरकीब मैं बताता हूँ।

तुम कुछ अक्षर लिखो। मामूली से हेरफेर से एक चित्र उसी में से बन जाएगा। शायद तुम्हें पता तक न चले कि तुम चित्र बना रहे हो।

उदाहरण के लिए 'न' लिखो। अब देखो लिखा 'न' और चित्र बन गया एक नल का। जरा ध्यान से देखो, 'न' की बनावट में और नल की शक्ल में रेखा की कितनी समानता है। इसी कारण यह चित्र बन पाया, अब थोड़ा सा उसे ठीक–ठाक कर दें। अनचाही रेखाएँ मिटा दें और आवश्यक जोड़ दें तो चित्र अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

अब 'व' अक्षर को आड़ा या लेटाकर इस प्रकार देखो कि गोलाई ऊपर और मात्रा की रेखा नीचे आ जाए। माथे वाली रेखा चित्र के लिए आवश्यक है इसलिए इसे मिटा दो। कितनी आसानी से बन गया चित्र एक 'हेट' का।

इसी प्रकार यदि 'क' को आड़ा रखकर देखा जाए यानी एक गोलाकार ऊपर व दूसरा नीचे की ओर, मात्रा की रेखा बीच में से आर–पार जाती हुई। इसकी भी माथे वाली रेखा मिटा दें और निचले गोलाई के ऊपर के हिस्से में दो बिंदु और एक खड़ी रेखा बना दे ंतो 'हेट' पहने हुए आदमी की शक्ल उभरने लगेगी।

क्यों, है न मजेदार बात ? चित्र बनाने का विशेष प्रयास न करते हुए भी केवल अक्षर लिखने पर ही अपने आप चित्र बन गया। मतलब चित्र का आवश्यक ढाँचा मिल गया। अब थोड़ा सा उसे ठीक–ठाक कर लिया जाए तो चित्र अधिक स्पष्ट बन सकता है।

यह जो तरकीब अब तुम्हारे हाथ लगी है उसे कुछ दूसरे अक्षरों पर आजमाओ।

'ट' अक्षर में कुछ पहचान पाते हो ? ऊपर की आड़ी रेखा अनावश्यक समझ कर मिटा दो। फिर भी समझ में नहीं आया? अच्छा, कभी तुमने हँसिया देखा है ? यह वह चीज है जिससे किसान गेहूँ की बाली काटता है। उसकी शक्ल में और इस अक्षर में कुछ समानता दिखती है ? लो अब मैं उसे, जरा स्पष्ट कर देता हूँ तो आ जाएगा एकदम समझ में।

दूसरा अक्षर देखो–ट के बाद आता है ठ। जरा इसके माथे की आड़ी रेखा मिटाओ।

एक मजे की बात है इस अक्षर में। अक्षर वही पर चित्र अलग–अलग। हाँ लिखावट में थोड़ा बहुत फर्क करना पड़ेगा। चित्र के बनते ही सब एक साथ चिल्ला उठे 'सुराही, बिजली का लट्टू, टेबल टेनिस की बैट, बैटमिंटन का रैकेट।' हाँ भई पहचान लिया।

अब यह अक्षर है 'ण' इसमें मैं थोड़ा सा अपनी ओर से कुछ मिलाता हूँ । देखना 'अरे, यह तो हुआ बिजली का खम्बा।'

'प' और 'य' में बहुत थोड़ा फर्क होता है–यानी लिखावट की दृष्टि से। केवल एक रेखा थोड़ी भीतर की ओर मुड़ी हुई। अब इनसे बनने वाले चित्र देखो। परंतु उसके पहले ये दोनों ही अक्षर उलटा देने होंगे। यानी सिर के बल। माथे की रेखा इनकी जमीन बन जाए इस प्रकार। अब इनसे बनने वाले चित्रों को देखो, पहचानो और समझो क्या–क्या फर्क किया गया है इसमें।

और ये लो यह मैंने बनाया अक्षर 'दी'। अब इसमें मैं दो बिंदु और छोटी सी रेखा लगाता हूँ। और ये बन गए तुम्हारे दोस्त जो सिर पर टोप लगाए तुम्हारी तरह ही मुस्करा रहे हैं।

अरे वाह, आप भी हँसने लगे। तो फिर 'प' पीछे छोड़कर आगे चलें।

'प' के बाद बारी आती है 'फ' की। वैसे 'प' और 'फ' में बहुत थोड़ा फर्क है जितना 'व' और 'क' में। अब जरा देखो मैं किस ढंग से इस अक्षर को लिखता हूँ। बिंदु वाला हिस्सा चित्र के लिए जरूरी नहीं है। इसलिए मिटा दो।

लो यह बन गया ढाँचा एक ऊँट के चित्र का। अभी तक हमने केवल एक अक्षर द्वारा ही चित्र बनाए। अब की बार दो अक्षर मिलाकर देखेंगे। पहले लिखेंगे उलटा 'प्र' फिर उसी को चिपका कर 'फ'। इन दो अक्षरों के मिलाने पर घोड़े के चित्र का ढॉचा मिल जाएगा।

ऊँट के बाद घोड़ा और अब आएगा हाथी! उसके लिए पहले 'घ' अक्षर बनाकर उसे इस प्रकार रखो कि मात्रावाली रेखा जमीन पर आ जाए। फिर उसी रेखा के नीचे 'ग' अक्षर बनाओ 'घ' के माथे से लेकर एक घुमावदार रेखा इस प्रकार बनाओ कि वह 'ग' की मात्रा वाली रेखा के समांतर होकर उसकी सीध में आ जाए। दोनों खड़ी रेखा के मध्य से उसे जोड़ दें। अब इतना सब जुट जाने के बाद हाथी कहीं भाग ही नहीं सकता।

देखो, ऊँट, घोड़ा और हाथी इन तीनों पर सवारी करने के बाद अब मशीनी सवारी कर लें। जरा 'ज' बनाओ। और देखते जाओ कि किस तरह यह ज बहुत जल्दी ही स्कूटर में बदल जाता है। अब, भई, थोड़ा कठिन जरूर है पर तुम्हें तो मालूम है एक स्कूटर पाने के लिए लोगों को कितनी तिकड़मबाजी करनी पड़ती है, फिर भला उसका चित्र एकदम आसानी से कैसे बनेगा ?

अभी तक हम लोग हिन्दी नागरी अक्षरों के साथ खेलते रहे और कई चित्रों के नमूने बनाए। मैंने हिन्दी अक्षर इसलिए लिए थे कि तुम उन्हें अच्छी तरह पहचानते हो। अब तुम्हें उन अक्षरों में चित्र देखने की तरकीब आ गई होगी। एक ही अक्षर में कई प्रकार के चित्र बन सकते हैं, वैसे ही एक ही चित्र कई अक्षरों में बन सकता है। जब तुम लगातार इस प्रकार खेलते रहोगे तो यह सब अपने आप ढूँढने लगोगे। अभी इस बार कुछ समय के लिए हम अँगरेजी अक्षरों के साथ और कुछ अंकों के साथ प्रयोग करेंगे।

अँग्रेजी अक्षर भी बड़े सरल होते हैं। केवल कुछ सीधी तिरछी रेखाएँ और कुछ गोलाई से उन्हें बनाया जा सकता है। एक ही अक्षर में कई प्रकार के ढेर सारे चित्र बन सकते हैं। अब देखना मैं अक्षर लिखता जाऊँगा और चित्र बनते जाएँगे। तुम स्वयं ही पहचान लोगे, मुझे उसके बारे में कुछ अधिक कहने की जरूरत ही शायद नहीं पड़ेगी।

क्यों, है ना मजेदार बात?

'स' से सरौता, 'ग' से गधा–ऐसा हम पढ़ते–रटते हैं पर यहाँ ए से ही यह सब बन गया न ? इसी तरह 2 और 3 के अंकों में इतना सुंदर हँस छिपा मिलेगा–क्या तुम्हें पता था ? अँग्रेजी के ये अक्षर और हिन्दी के अंक कहीं झण्डा लहरा देंगे तो कहीं मुर्गा दौड़ा देंगे।

एक बात और ध्यान में रखो। एक ही अक्षर यदि उल्टा (यानी ऊपरी हिस्सा नीचे को और निचला हिस्सा ऊपर), मुँह फेरकर, एक दूसरे से चिपकाकर या आड़ा करके रख दिया जाए तो दूसरा ही अक्षर बन जाता है, यानी एक ही अक्षर में कई अक्षर बन जाते हैं। इसी कारण कोई भी चित्र किसी भी अक्षर से बनाना आसान होता है।

देखो इसमें खेलने के लिए कितनी अधिक गुंजाइश है। हाँ, तो अब अपना खेल शुरू करो, मैं कुछ बनाऊँगा, पहचानना तुमको है। इस बार मैं केवल चित्र ही बनाता रहूँगा। अब किन अक्षरों की सहायता से कौन सा चित्र बनाया है, यह पहचानना तुम्हारा काम है।

अंग्रेजी अक्षरों के कुछ हिस्से, कुछ घुमाव आदि हिन्दी अक्षरों से बहुत कुछ मिलते–जुलते है। यदि उन्हें ही कुछ घुमा–फिरा कर देखें तो वे पूरे के पूरे हिन्दी अक्षर बन जाते हैं। जैसे अंग्रेजी B का मुँह पलट दो तो हिन्दी घ बन जाएगा, घ से व बन जाएगा, H में कुछ सुधार करने पर म भ ग स भी बन सकता है। तो R की

खड़ी सीधी रेखा गायब करने पर र या R के गोलाई वाले हिस्से को आर–पार काटती हुई आड़ी रेखा बनाएँ तो रि भी बन सकता है। F को घुमा देने से ग और इसी तरह G से ज बन जाएगा।

हम अंग्रेजी और हिन्दी अक्षरों के साथ इस प्रकार खेलते रहें तो इन सबमें काफी कुछ समानता दिखाई देने लगती है। भई, यही तो खेल में हर बार चित्र ही बनेंगे यह जरूरी नहीं है।

हमें मतलब भाषा से नहीं, उनके अक्षर और उन अक्षरों से बनने वाले आकारों से है जो चित्र बनाने में हमारे सहायक होते हों।

अब इसके बाद अपना जो खेल होगा वह इन मिले–जुले अक्षरों का ही होगा, यानी कभी विशुद्ध हिन्दी या अंग्रेजी अक्षर, कभी इन दोनों को मिला कर तो कभी दोनों भाषा के अंको को भी इनमें शामिल करके एक मिलीजुली टीम बना कर खेलेंगे। अब उनमें कौन सा अक्षर या उनका कौन सा हिस्सा अपने काम आया यह पहचान कर ध्यान में रखना चाहिए।

अभी तक हमने अक्षरों को आधार मानकर चित्र बनाए हैं। ये सब हिन्दी और अंग्रेजी अक्षर, और अंक भी एक–दूसरे से किसी न किसी रूप में बहुत मिलते–जुलते हैं, कारण जानते हो?

अक्षर या अंक जिन सरल या घुमावदार रेखाओं से बनते हैं उनकी रेखाओं के मोड़ बड़े ही सीमित होते हैं। कुल मिलाकर मोटे तौर पर इन सब घुमावों को केवल एक या दो इकाइयों में समेटा जा सकता है। इन्हीं इनी–गिनी इकाइयों को यदि ध्यान से याद किया जाए तो केवल उनके ही हेरफेर या जोड़तोड़ से सारे के सारे अक्षर और अंक बन सकते हैं। इतना ही नहीं, दुनिया भर की वस्तुओं के आकार भी इन्हीं इकाइयों द्वारा बनाए जा सकते हैं।

इसलिए अक्षर और चित्र में आकारों की समानता दिखते ही तुरन्त चित्र पहचानना आसान हो जाता है।

सीधे किसी वस्तु के चित्र बनाने की अपेक्षा परिचित मोड़ो का जमाने का तरीका सरल है।

पहले हमने अक्षरों में किसी वस्तु का चित्र खोजने की कोशिश की थी। अब जिस चीज का चित्र बनाना हो उसमें अक्षर या अंक का आकार ढूँढने की कोशिश करो और वह पकड़ में आते ही उसे ध्यान में रखकर, उसके सहारे, अलग उसी का चित्र बनाने का अभ्यास करो। शुरू में थोड़ी कठिनाई होगी। परन्तु अभ्यास के बाद यह आसान लगेगा।

कोई भी नई बात याद करना मेरे लिए एक मुसीबत थी। उन्हें याद करने की अलग–अलग तरकीबें मैं सोचा करता। उन्हीं में से एक यह भी थी कि, जो भी बात मुझे याद करनी होती उसकी कुछ न कुछ विशेषता मैं ऐसी बातों के साथ जोड़ देता जो पहले से ही मुझे अच्छी तरह से याद

थीं। एक साथ चार–पाँच बातें। और उनके साथ कुछ खेल जमाना। इनमें से यदि एक भी ध्यान में आती तो उसके ही सहारे शेष रही बातें भी तुरंत एक साथ ध्यान में आ जातीं।

पाठ्य पुस्तकों की बड़ी–बड़ी और कठिन नामावलियाँ भी मैंने ऐसी ही तुकबंदी की सहायता से याद की।

फिर नई बातों को ध्यान में रखने का डर जाता रहा। चित्र बनाते समय तुम्हें भी इसी प्रकार की कठिनाई आ सकती हैं मुझे भी आई थी। जिस चीज का (पक्षी, जानवर, मनुष्य या अन्य) चित्र बनाना हो उसकी विशेषता (यानी दिखाई देने वाला मुख्य आकार क्या होता है वह) एकदम पकड़ में नहीं आती और दूसरी ही छोटी–छोटी और बेकार की अथवा कम उपयोगी बातों की ओर ही ध्यान चला जाता है। ये फालतू बातें ही हमें उलझाती हैं और चित्र बनाने में बाधा डालती हैं। चित्र बन ही नहीं पाता। इसलिए पहले, तो जिसका चित्र बनाना हो उसे खूब अच्छी तरह से देखो, निहारो। उसके समूचे आकार को। उससे अच्छी तरह पहचान कर लो। इसमें कठिनाई आए तो अपनी तरकीब का प्रयोग करो।

समूचे आकार में या उसके किसी हिस्से में तुम जिसे खूब अच्छी तरह पहचानते हो ऐसा आकार ढूँढने का प्रयास करो।

पहचान का आकार मिलते ही उसके सहारे तुरंत पूरा चित्र बनाना आसान लगेगा। अभी तक अनेक चित्रों में इस बात को तुम अच्छी तरह से समझ गए होंगे।

मैं बनाना चाहता हूँ एक मोटर का चित्र। पहले मैंने मोटर को अच्छी तरह देखा और उसके समूचे आकार को एक परिचित आकार के साथ जोड़ा। जमीन से सरपट सीधी आड़ी रेखा, उस पर, इस छोर से उस छोर तक बनने वाली एक घुमावदार रेखा जो अंग्रेजी D से मिलता–जुलता आकार बनाती है। बस इसी D के सहारे मैंने अपनी मोटर का चित्र बना लिया। अब इसमें छोटी बातें नहीं दिखाई जाए तो भी भागती हुई या खड़ी हुई मोटर कार पहचानने में किसी को भी कठिनाई नहीं होगी।

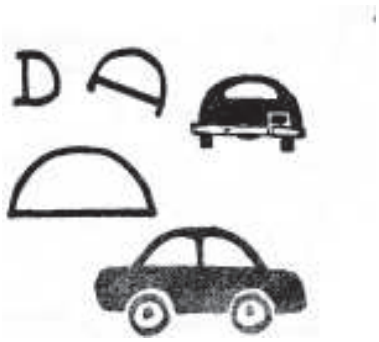

इसी प्रकार हिरण का चित्र बनाने में मैंने 'से' इस अक्षर का, सूअर के लिए 'या' तथा कुत्ते के लिये 7 और 4 इन अंकों का सहारा लिया। कहाँ–कहाँ और किस तरह से इन बातों का उपयोग किया वह देखो और इसी ढंग से अपनी खोजबीन शुरू करो।

पढ़ने वालों के लिए हरेक अक्षर, हरेक अंक कितने मतलब का और महत्वपूर्ण होता है। दुनिया भर के ज्ञान भंडार की चाबी उसमें होती है परंतु इससे भी एक कदम आगे बढ़े तो एक नए दूसरे ही भंडार की चाबी भी आपके हाथ लग सकती है। हम अक्षरों को केवल अक्षर, भाषा को लिखने वाला या शब्दों को बनाने वाला एक छोटा सा पुर्जा मानकर ही चलते हैं। इसके अलावा भी उसका कुछ आकार होता है, कुछ स्वरूप होता है इस बात की ओर कभी ध्यान ही नहीं दे पाते। एकाएक तो यह सब दिखाई नहीं देता परंतु ध्यान से देखने पर उसमें छिपी हुई कई बातें, चित्र प्रकट होने लगते हैं। चित्रों का एक विचित्र खजाना हमारे हाथ लग जाता है।

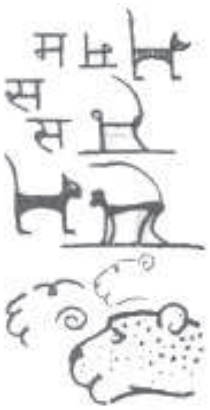

अब देखो, मैं कुछ नहीं बताऊँगा, केवल अक्षरों को घुमा–फिरा रहा हूँ और ये क्या बोल रहे हैं–तुम सुन रहे हो न..?

इसे सुनने लगो, देखने लगो तो फिर हिन्दी और अंग्रेजी के अक्षर भी एक दूसरे के साथ आनंद से नाचते खेलते लगेंगे। यहाँ मैं ऐसे अक्षर चुन रहा हूँ जो बिल्कुल सरल हैं और उनकी बनावट कुछ इस प्रकार है जो, थोड़ा सा हेरफेर करते ही दोनों लिपियों

के, हिन्दी और अँगरेजी के अक्षर बन जाते हैं। इन्हें तुम सीधी रेखाओं में लिख सकते हो। थोड़ी घुमावदार रेखाओं में भी कोई फर्क नहीं पड़ता। इन्हें पतली नोक वाली कलम से, मोटी नोक वाली कलम से या ब्रुश से ही लिखों और देखो कि N और Z या च क्या कवायद कर रहे हैं और A और N क्या ढोकर ले आए हैं?

N का एक और करतब देखो। वह अक्षर धीरे–धीरे जब दूसरे अक्षर में बदल जाता है तो बिलकुल सिनेमा की फिल्म की याद आ जाती है।

पहले N को पलट दो। पलटने की सरल विधि मैं बताता हूँ कागज पर पेन्सिल से लिखकर उस कागज को इस प्रकार मोड़ो कि कोरा हिस्सा लिखे हुए हिस्से पर आ जाए। फिर उस हिस्से को, पेन्सिल के उल्टे सिरे से रगड़ो। मोड़ खोलने पर उल्टा N छपा हुआ दिखेगा। यदि सरल मालूम हो तो इस विधि से या तुम अपने ढंग से N और Z को पलट दो और फिर देखो कि किस प्रकार धीरे–धीरे ये अक्षर क, ळ, फ, ज, S और 8 में बदल जाते है। और फिर इसमें कुर्सी–टेबल पर बैठे बाबू मिलेंगे, सरपट साइकिल भगाते सवार दिखेंगे और तरह–तरह से उछलते–कूदते खिलाड़ी भी मिलेंगे।

अब उसी जाति का दूसरा अक्षर लो–M देखना, यह अक्षर भी किस प्रकार अलग–अलग अंग्रेजी और हिन्दी, देवनागरी के अक्षरों में बदल जाता है।

इसके लिए मैं एक आसान तरकीब सुझाता हूँ–एक तार लो, इतना पतला और मुलायम कि जिसे आसानी से हाथ से मोड़ सको। फिर उसे M की शक्ल में मोड़ दो, अब एक सफेद कागज पर उसे सीधा, उलटा, आड़ा, तिरछा रखकर देखो, कई प्रकार के अक्षर दिखना शुरू हो जाएँगे। अपनी ओर से कुछ रेखाएँ उसके आगे, पीछे, नीचे, ऊपर बनाओ तो अक्षर और स्पष्ट होते जाएँगे।

I और T तो बड़े सरल अक्षर हैं। ये हैं तो अंग्रेजी के, यानी रोमन लिपि के पर ये दोनों ही अक्षर नागरी लिपि के हरेक अक्षर के साथ मिल जाएँगे। अनुस्वार की मात्रा के लिए ं और पाई की मात्रा के लिये ा । जैसे क +ं = कां, ख + ा = खा। मूल अक्षर के रूप बदलने में इन मात्राओं की सहायता ली जाती है वैसे ही अधूरे चित्र को पूरा करने में भी। M...M+T= घ।

और देखो कि इसमें सावधान खड़े बच्चे से लेकर कुलटारी खाते बच्चे निकलेंगे और शांत समाधि में बैठे बाबाजी भी।

अक्षरों का भंडार इतना बड़ा है, इतना विचित्र है कि जितना खर्च करो उतना बढ़ता जाएगा। नए–नए चित्र बनते चले जाएँगे। चलो एक अंतिम अक्षर ए लो। इसे अलग ढंग से लिखता हूँ देखो। लिखावट बदलते ही कितने प्रकार के जाने–पहचाने आकार दिखाई देने लगे। इनकी सहायता से कई अंग्रेजी और नागरी लिपि के अक्षर बन सकते हैं। यह अक्षर अपने आस–पास फैली हुई किन–किन बातों में दिखाई देता है इस पर भी जरा ध्यान देते रहना। तब तुम पाओगे कि साधारण सी लगने वाली एक रेखा भी उत्सव में, त्योहार में बदल जाती है।

अब हम लोग अपने खेल का तरीका कुछ बदलेंगे। अक्षरों से फिसलकर दूसरी जानी पहचानी चीजों पर आएँगे। इसका मतलब यह नहीं कि अक्षरों का पीछा छोड़ देंगे। अक्षर तो रहेंगे ही क्योंकि कोई भी चित्र, चाहे वह मनुष्य का हो, जानवर या अन्य प्राणी का, दूसरी किसी वस्तु का हो, अक्षरों से बन ही जाता है फिर एक अक्षर हो, एक से अधिक अक्षर हो या किसी अक्षर का छोटा–सा हिस्सा हो, अक्षर तो है ही। बदलेंगे केवल उसका क्रम यानी पहले हम अक्षर लेकर उसमें चित्र ढूँढेंगे और फिर उसके सहारे चित्र बनाएँगे। अब हम लोग पेड़ को ही लें। हरा–भरा, पत्तियों से लदा हुआ नहीं तो जिसकी सारी पत्तियाँ झड़ चुकी हों और जिसकी सब शाखाएँ और छोटी–छोटी टहनियाँ दिखाई देती हों ऐसा सूखा पेड़।

इसे तुम दिन में कई बार देखते होंगे पर अब उसे जरा अलग ढंग से देखने की कोशिश करना। मनुष्याकृति और पेड़ में बड़ी अजीब सी समानता दिखाई देगी। बस उलटा करके तो देखो। अक्षरों को उलटना आसान है, परंतु पेड़ को नहीं, यह मैं जानता हूँ इसलिए एक तरकीब सुझाता हूँ। आँगन से या किसी गमले में से एक सूखा पौधा (वह भी तो छोटा पेड़–ही होता है) जड़ समेत उखाड़ लो। फिर मिट्टी साफ करके उसे उलट कर देखो।

जड़ से लेकर तना और टहनियों तक की समानता देखो। अनावश्यक हिस्से निकाल कर छाँटते चलो। ध्यान से देखते चलो। अब तुम अकेले नहीं, तुम्हारे पास खड़े हैं कई तरह के साथी।

चित्र बनाने के लिए पेड़ में और मनुष्य की आकृति में क्या समानता है यह धीरे–धीरे समझ में आने लगता है। पेड़ का तना मनुष्य के धड़ जैसा होता है, शाखाएँ हाथ और पैर जैसी, तो जड़ें बालों जैसी दिखाई देने के कारण उसके आस–पास के हिस्से में अनायास चेहरे का आभास हो जाता है। चित्र बनाने के लिए, एक खाका खींचने के लिये बस, इतनी सामग्री पर्याप्त है। इनकी सहायता से मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणियों का चित्र भी बनाया जा सकता है, केवल तने को लिटा दो। मनुष्य के चित्र लिए खड़ा तना तो दूसरे प्राणियों के लिये आड़ा तना। शाखाओं की रचना में थोड़ा फर्क करना होगा।

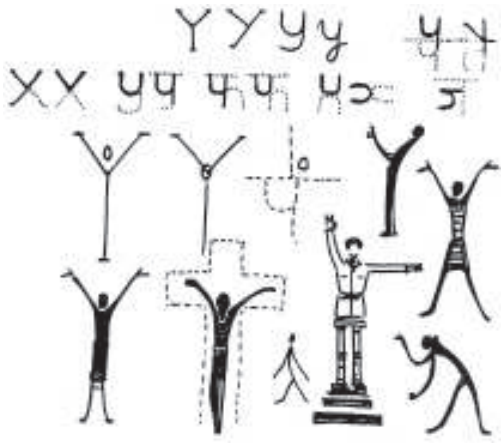

अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार पुराने वर्ष की बिदाई और नए वर्ष के स्वागत के दौर में ही आता है बड़े दिन का त्यौहार। दिसंबर के अंतिम सप्ताह भर यह उत्सव चलता है।

बड़ी धूमधाम के साथ यह मनाया जाता है। बिलकुल दिवाली की तरह। इस अवसर पर भी रोशनी, आतिशबाजी, हर

घर में सजावट, खिलौने, मिठाइयाँ और तरह–तरह की भेंट आदि की रेलमपेल होती है। एक पेड़ (क्रिसमस–ट्री) पर तरह–तरह की भेंट की वस्तुएँ और खिलौने रोशनी के साथ सजाए जाते हैं। इन्हें बाद में बच्चों में बाँट दिया जाता है।

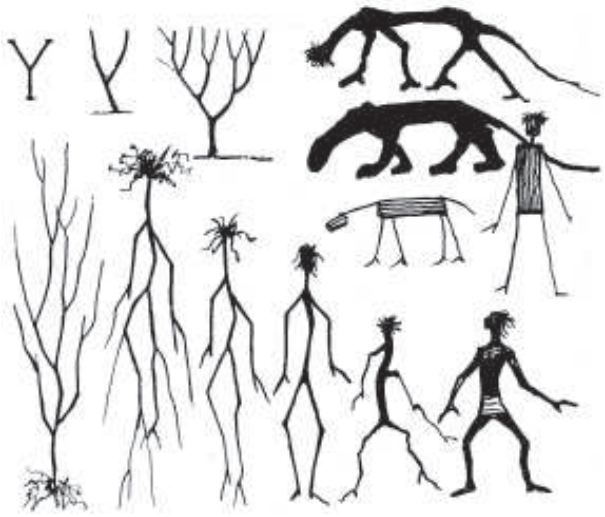

अच्छा यह बताओ, क्या तुम उसे बूढ़े 'डाकिए' को जानते हो जो बच्चों को अत्यधिक प्रिय है, कारण, वह बच्चों के लिए विशेष रूप से मनचाही भेंट और खिलौने लाता है। और कहते हैं, जब बच्चे सोते रहते हैं, उस समय चुपके से हर घर में बच्चों के लिए भेंट रख देता है जो बच्चों को इस पेड़ से मिल जाती है। बच्चों के लिए यह पेड़ मानों कल्पवृक्ष ही होता है।

हमारे पुराणों में लिखी हुई कथाओं के अनुसार कल्पवृक्ष वह पेड़ होता है, जिसके नीचे खड़े होकर की गई मनोकामना पूरी होती है। यह कल्पवृक्ष वास्तव में तो मैंने देखा नहीं, परन्तु मेरे लिए और तुम्हारे लिए भी प्रत्येक वृक्ष कल्पवृक्ष है।

इसका कारण है कि हमें मन चाहे चित्र यह वृक्ष दे देता है। इसके नीचे खड़े होकर जिस चित्र की कामना करें, वही चित्र हमें मिल जाता है।

आओ, जरा पेड़ के नीचे खड़े होकर देखो हर शाखा में और छोटी–छोटी टहनियों में चित्र ही चित्र टँगे हुए हैं। जरा ध्यान से देखो। टहनियों के हर मोड़ में जिनकी कल्पना करो वही अक्षर या कम से कम उसका खास हिस्सा तुम्हें दिखाई देगा और एक बार अक्षर दिखाई दिया कि उसके द्वारा बनने वाला चित्र भी अपने–आप दिखाई देगा ही।

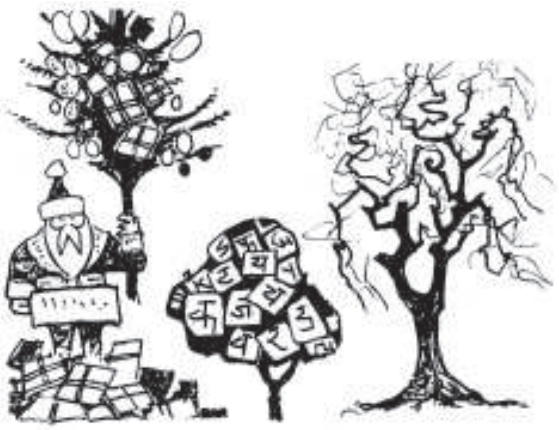

हम लोग चित्र बनाना शुरू करें उसके पूर्व मुझे एक बड़ी अच्छी अंग्रेजी कहानी याद आई है। वह मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ।

एक था पेड़ और एक था बालक, दोनों बड़े अच्छे दोस्त थे। रोज वह बालक उस पेड़ के पास आता, उस पर चढ़ता, शाखाओं पर झूलता, पत्तियाँ बटोर कर उनका टोप बनाकर पहनता, फल खाता और खेलते–खेलते जब थक जाता तो उसी पेड़ की छाँव में सो जाता। उसे इस प्रकार खेलता हुआ देखकर पेड़ को बड़ी खुशी होती है।

समय के साथ बालक बड़ा हो गया। धीरे–धीरे उसका पेड़ के पास आना लगभग बंद हो गया। अकेलेपन के कारण पेड़ दुःखी होने लगा। कई दिनों के बाद अचानक एक किशोर उस पेड़ के पास आया तो अपने पुराने दोस्त को पहचानते ही पेड़ बोला ''आओ बेटा, पहले जैसे खेलो, फल खाओ, झूला झूलो और मौज करो।''

''भई, तुम्हारे साथ खेलने और मौज करने के लिए मैं कोई छोटा बालक तो नहीं हूँ, अब मैं बड़ा हो गया हूँ। मुझे मजा करने के लिए दूसरी चीजें चाहिए। उन्हें खरीदने के लिये क्या तुम मुझे पैसे दे सकोंगे?'' किशोर

ने पूछा। ''बेटा, मेरे पास पैसे तो नहीं, केवल पत्तियाँ और फल हैं। इन्हें तोड़कर बेचने से तुम्हें पैसे मिल सकेंगे।'' पेड़ ने कहा ।

किशोर ने पत्तियाँ और फल बटोरे और चला गया।

पेड मन ही मन खुश हुआ।

फिर कई वर्ष बीत गए। किशोर नहीं आया और बेचारा पेड़ अकेला ही दुःखी होता रहा।

एक दिन अचानक एक युवक उस पेड़ के नीचे आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही पेड़ खुशी से नाच उठा । इस बार उस युवक को आवश्यकता थी अपनी पत्नी और बच्चों के लिए किसी सहारे की। पेड़ ने अपनी शाखाएँ देकर कहा कि जाओ बेटा अपना घर बनवा लेना। शाखाएँ लेकर युवक चला गया और पेड़ खुश होकर उसे देखता रहा। इस प्रकार कई वर्ष बीत गए, फिर एक दिन एक अधेड़ उम्र वाला एक व्यक्ति पेड़ के पास रूका। पेड़ क्या था केवल बचना हुआ तना ही तो था। फिर भी उसने उस अधेड़ को पहचान लिया और सदा की भाँति उसका स्वागत किया। इस बार वह अधेड़ व्यक्ति कहीं समुंदर पार सफर पर जाना चाहता और उसे आवश्यकता थी एक नाव की।

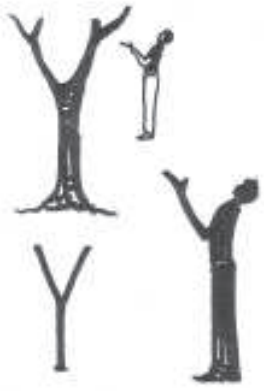

हमेशा की तरह बड़ी सहजता के साथ उस पेड़ ने अपना तना उसे सौंप दिया नाव बनाने के लिए।

वर्षो बाद एक लड़खड़ाता बूढ़ा उसी पुरानी जगह आया। अब पेड़ की जगह, एक छोटा–सा ठूँठ बचा था। फिर भी उसने बूढ़े को पहचान लिया। बूढ़े को देखकर उसे खुशी तो हुई, परंतु मन ही मन दुःख भी, क्योंकि इस बार उस बूढ़े को देने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं बचा था। वह कुछ बोल ही न सका। परंतु इस बार वह बूढ़ा कुछ नहीं चाहता था। उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो चुकी थीं। अब तो वह ऐसे स्थान की खोज में था, जहाँ बैठकर आराम कर सके। उसकी यह इच्छा भी उस पेड़ के बचे हूए ठूँठ ने पूरी कर दी। उस ठूँठ पर टिककर वह बूढ़ा बैठ गया। बैठते ही उसे शांति का अनुभव हुआ।

मनुष्य की बचपन से बुढ़ापे तक की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति एक पेड़ किस प्रकार कर सकता है, इसकी कुछ कल्पना तो इस कहानी से तुम्हें हो गई होगी, परंतु जो बातें इस कहानी में तो नहीं कही गई हैं, वे भी पेड़ हमें किस प्रकार दे सकता है, यह तो मैं कहूँगा नहीं, लेकिन ये चित्र मेरी चुप्पी तोड़ देंगे।

प्रश्न–2.

प्रस्तुत कहानी के आधार पर व इससे अलग अपनी समझ के आधार पर बताईये कि मनुष्य की बचपन से बुढ़ापे तक की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति एक पेड़ किस प्रकार कर सकता है?

पेड़ वाली कहानी तुम्हें पसंद आई न ? सूखे हुए पेड़ में दिखाई देने वाला मुर्गा और डंडे वाला आदमी भी तुमने पहचान ही लिया होगा। इतना ही नहीं अब तो ऐसी कई आकृतियाँ याद आई होंगी जो रास्ते चलते, कई बार तुमने देखी होंगी। पत्तों से लदे हुए पेड़ में, कभी शाखाओं में, बरगद जैसे पेड़ों के तनों में तो कभी उनकी

जड़ों में भी। ध्यान से यदि देखा जाए तो पेड़ का हर भाग, हर हिस्सा हमें कुछ चित्र या आकृतियॉ देता ही रहता है।

अभी तक हम लोग हिन्दी और अंग्रेजी लिपियों के अक्षरों में आकृतियाँ ढूंढते रहे और उनकी सहायता से चित्र बनाते रहे।

अब पेड़ के हर भाग से हम आकृतियाँ निकालेगें और उनके द्वारा चित्र बनाएँगे परन्तु बारी–बारी से। अभी केवल तना और शाखाएँ। तो चलो। आकृतियाँ ढूँढ़ते समय उनमें दिखाई देने वाले अक्षरों को मत भूलना। देखो Y और र कितने अलग–अलग रूप में दिख रहे हैं।

सूखे हुए पेड़ या उनके ठूँठ, रास्ते चलते सड़क के किनारे, मैदान में या अपने मकान की छत से आमतौर पर दिखाई देते हैं। शायद इसी कारण हम उनके बारे में कभी सोच भी नहीं पाते। परंतु अब जरा उन्हें ही अलग ढंग से देखना शुरु करो तेा वे ठूँठ ही एकदम बदले हुए रूप में दिखाई देंगे। जैसे किसी चौराहे पर लगी हुई भव्य प्रतिमाएँ या म्यूजियम में रखी हुई शिल्पकृतियाँ।

पतझड़ में पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं और उनकी शाखाएँ तथा छोटी–टहनियाँ साफ–साफ दिखाई देने लगती हैं। यही अवसर है कि जितनी चाहो उतनी आकृतियाँ और अक्षर देख लो।

रास्ते चलते कई चीजें समेटने की तो तुम्हें आदत होगी ही। इसलिए कुछ सूखी टहनियाँ जुटाना तुम्हारे लिए कठिन नहीं होगा। वे तो आसानी से घर के आँगन में या बगीचे की बाड़ में मिल सकेंगी। पर देखो वे इतनी छोटी तिनके जैसी हों कि आसानी से किसी बोतल के मुँह में या लकड़ी के छेद में भी इस प्रकार रखी जा सके कि छोटे से पेड़ जैसी दिखाई दे और कमरे को भी सजाए। फिर यदि उसे ऐसी जगह रखा जाए, जहाँ उसकी छाँव दीवार पर या फर्श पर पड़े तो अपने आप वहाँ पेड़ का चित्र बन जाएगा। उस टहनी को घुमाते चलें तो उसी बदलती छाँव में कई अलग–अलग चित्र बनते हुए दिखाई देंगे। चाहें तो मजे से उनमें अपनी मनचाही आकृतियाँ, अक्षर ढूँढे या नीचे कागज फैलाकर छाँव की उन रेखाओं पर पेन्सिल घुमाकर (ट्रेसिंग) पेड़ के चित्र बना लें। फुरसत के समय यह सिनेमा तुम्हारे लिए मनोरंजक तो होगा ही और चित्रकला सीखने में सहायक भी!

पौधों को उल्टा करके देखने पर तुम भी चित्रों को पहचान लोगे। उनकी जड़ों को, जब वे गीली और मुलायम हों उस समय ही, ऐसा मोड़ दो कि सजे–सँवरे बालों जैसी दिखे। अनावश्यक हिस्सा काटकर उन्हें किसी ऐसी बोतल में रख दो। कुछ ऐसा लगें कि कुछ लोग बातचीत कर रहे है।

कभी इनके नीचे वाले सिरे को उँगलियों में पकड़ कर घुमाने पर इनकी छाया में आपकों नृत्य करती हुई आकृति भी दिखाई देगी।

यदि हम हमारे आँगन से प्राप्त होने वाली वस्तुओं की ओर जरा ध्यान दें– जैसे पत्तियॉ, फल, फूल, सूखी टहनियां वगैरा, और उन्हें ठीक से देखें तो वे हमें कितनी सारी बातें बता सकती हैं। उदाहरण के लिए पीपल का एक पत्ता ही लीजिए। पत्ता, उसका डंठल टहनी से जुड़ा प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने है। चित्र के साथ अक्षर के दृश्य रूप का मेल जम गया, और अक्षर के साथ ही चित्र बनाना भी आसान हो गया।

अब इसी प्रकार कुछ अलग–अलग प्रकार की पत्तियाँ और कुछ टहनियाँ जमा करो, उनकी सूरत–शक्ल, उनकी विशेषताओं को गौर से निहारते हुए उन्हें समझने की कोशिश करो।

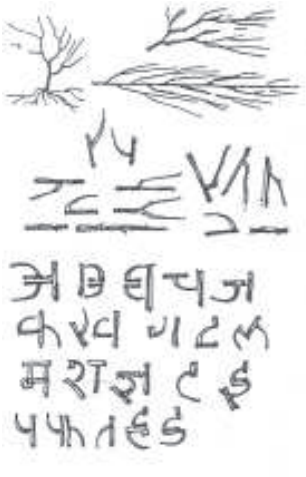

ये हुए पीपल या उसके जैसी पत्तियों से मिलने वाले आकार और उनके द्वारा बने हुए कुछ अक्षरों के नमूने। इसी तरह अक्षरों मे पाए जाने वाले मुख्य आकार तथा उनकी विशेषताओं को समझकर अन्य पत्तियों में भी उन्हें खोजने का खेल हो सकता है।

अब जरा टहनियों को देखो। हमारे आँगन में ही सूखे हुए पौधों को उखाड़कर तथा बागड़ की कटाई–छँटाई से काफी सारी टहनियाँ हम जुटा सकते हैं। अरहर की डंडियाँ तथा सुबबूल की टहनियाँ अच्छी काम आ सकती हैं। जहाँ तक हो सके इनके समान आकार के टुकड़े काट लो। इस प्रकार विभिन्न आकार के टुकड़े बना लो ताकि खेलने के लिए सुविधा हो और इनकी जमावट से तरह–तरह के डिजाइन, चित्र तथा अक्षर बना सकें। सारे अक्षर केवल इन्हीं

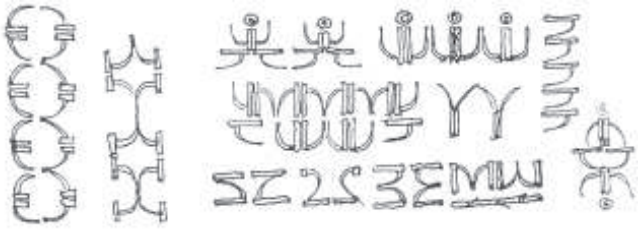

आकारों का प्रयोग करके बन सकते हैं। कुछ नमूने देखो जरा।

इस प्रकार अलग–अलग के टुकड़ों की जमावट का खेल भी तथा अक्षरों का ज्ञान भी।

अक्षरों के अलावा जमावट से भिन्न–भिन्न डिजाइनों की भी रचना खेल–खेल में हो सकती है। जमावट के द्वारा कई प्रकार के डिजाइन अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा बनाए जा

सकते हैं। डिजाइन बनाते–बनाते अक्षर (हिन्दी और अंग्रेजी के भी) बन जाते हैं तो अक्षरों की जमावट में डिजाइन। इसी तरह टहनियों के साथ बीज, फलियों तथा पत्तियों का प्रयोग और भी रोचक हो सकता है। इस बहाने अलग–अलग आकारों के बीज तथा फलियॉ खोजने का मन भी बनेगा।

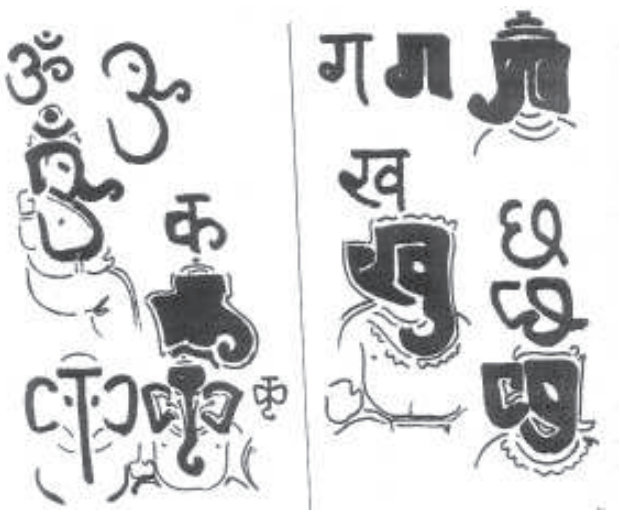

अक्षरों और अंकों की गोद में बैठे चित्रों का यह अनोखा किस्सा अब हम समेटने की तैयारी में है। पर उससे पहले एक बात और। पाठशाला में, वर्णमाला सीखते समय तुमने पढ़ा होगा 'ग' गणपति का।

गणेशजी का नाम लेते ही सामने चित्र आता है हाथी जैसी शक्ल, सूपड़े जैसे बड़े कान, लम्बी सूँड केवल एक दाँत और बड़ा भारी पेट। ये हैं गणेशजी की विशेषताएँ और इन्हीं विशेषताओं के उनके नाम भी हैं – वक्रतुंड, महाकाय, लम्बोदर, एकदंत गजानन आदि आदि। इनमें से एक विशेषता का यानी सूँड का बोध 'ग' इस अक्षर में हो जाता है। और इसी कारण शायद 'ग' गणपति का माना गया होगा।

इन्हीं विशेषताओं का सहारा लेकर अब हम अक्षरों में छिपे हुए गणेशजी को ढूँढेंगें। और यह भी तुम जानते ही हो कि किसी भी शुभ कार्य के प्रारंभ में गणेशजी की पूजा होती है, वैसे ही अधिकांश मंत्रोच्चारण भी 'ऊँ' से ही शुरू होते है। क्योंकि ऊँ अक्षर में भी गणेशजी विराजमान हैं। ध्यान से देखना।

आपकी सुविधा के लिए अब हमने कुछ ऐसे अक्षर चुने हैं। जिनमें गणेशजी की इन विशेषताओं की कुछ झलक दिखाई देती है जैसे :

ऊँ, क, ग, ख, छ, और ढ। नमूने के लिए अभी इतने काफी हैं।

खेल में अक्षरों को थोड़ा आड़ा–तिरछा करने तथा तोड़ने–मरोड़ने की छूट है। गणेशजी का केवल मस्तक का ही हिस्सा बनाया जाएगा, शेष हरेक की अपनी–अपनी कल्पना के अनुसार, क्योंकि भगवान शंकर ने भी गणेशजी का केवल मस्तक ही धड़ पर लगाया था।

'क' लिखो, 'ख' लिखो, चाहे 'ग' लिखो, अक्षरों के इस खेल में से गणेशजी प्रकट होते जा रहे हैं न ? इसलिए यह अंत नहीं इस काम का। यह शुरूआत है अक्षरों में, पेड़–पोधों में टहनियों में फूल–पत्तियों में चित्रों के विचित्र संसार को देखने की।

एक बार हमने इन चीजों में चित्र देखने का मन बना लिया तो फिर कहीं कोई 'विघ्न' नहीं आएगा। एक के बाद एक चित्र खुलते जाएँगे, खिलते जाएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

1. अक्षरों और अंकों द्वारा चित्र बनाने से बच्चों की कल्पना शक्ति और लेखन क्षमता किस प्रकार विकसित होती है ?

2. खेल खेल में अक्षरों और अंकों के द्वारा चित्र बनाने से बच्चे किस प्रकार अपने आस पास के परिवेश से जुड़ सकते हैं?

पठन सामग्री – 2

प्रारंभिक अभ्यास

मेरी अपनी दुनिया

विष्णु चिंचालकर

प्रस्तावना

खेल और काम दो अलग बातें नहीं हैं बच्चों को खेल खेल में बहुत कुछ सीखने को मिलता है और बच्चे ही क्यों बड़ों को भी तो। हम जिन वस्तुओं को बेकार मानकर फेंक देते हैं किन्तु अगर उन्हे गौर से देखें तो उनमें बहुत कुछ देखा जा सकता है। पर हाँ देखने देखने में फर्क हो सकता है। हो सकता है कि किसी को कोई अक्ल दिख जाए और किसी को जानवर, किसी को कोई पेड़ और ये भी हो सकता है कि किसी को कुछ भी ना दिखे। प्रस्तुत अध्याय में इन्ही सब बातों को समझाते हुए बच्चों के प्रति बड़ों के व्यवहार के बारे में भी सचेत किया गया हैं।

उद्धेश्य

- बच्चों की संवेदन क्षमता को समझना व उसे बनाए रखना।
- उनकी कल्पना शक्ति बढाने के लिए पूरा अवसर देना और ऐसे अवसर निर्माण करना ताकि उन्हे प्रोत्साहन मिलता रहे।
- अपने आस–पास के वातावरण के बारे में भी जागरूकता निर्माण करना।
- किसी भी वस्तु को कलात्मक रूप से देखने का नजरिया विकसित करना।

जी, कभी आप मेरे घर नहीं पधारे। आपने तो केवल सुन ही रखा है कि मेरा घर एक अजीब–सा कबाड खाना है। कई तरह का अटाला और ऊट–पटांग चीज़ें जहाँ–तहाँ बिखरी हुई आपको दिखाई देंगी वगैरह–वगैरह। वास्तव में, इसमें झूठ कुछ भी नहीं है। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसी कबाड–खाने में आपको कुछ दिलचस्प बातें भी दिखाई देंगी। इतना ही नहीं वे ऊट–पटांग चीज़ें आपका मनोरंजन भी करेंगी। और उन्हीं चीज़ों को घुमा–फिरा कर यदि मैं कुछ करतब कर दिखाऊँ तो आप अचम्भित भी हो सकते हैं। परन्तु हाँ, केवल मनोरंजन या अचम्भित करना ही मेरा इरादा नहीं है। उसके परे भी जो एक विचार है, दर्शन है उसे आप तक पहुँचाने के लिए ही यह सारी उधेड–बुन है।

वैसे इस कबाड–खाने में कोई भी परिचित या अजनबी आता है तो मेरे यह साथी (हाँ, अब वे सारी चीज़ें मेरे लिए निर्जीव अटाला नहीं बल्कि मेरे आस–पास फैले हुए सदैव मेरा साथ देने वाले साथी ही तो हैं) स्वयं ही अपना परिचय दे देते हैं। परन्तु उनकी कुछ छिपी हुई खूबियाँ विस्तारपूर्वक बताने में मैं ज़रा भी आनाकानी नहीं करता। मेरे इस उत्साह का मित्रों द्वारा मज़ाक भी उडाया जाता है। पर मैं हूँ कि बाज़ नहीं आता। कारण मेरी आन्तरिक इच्छा है कि उन वस्तुओं द्वारा जो सुखद अनुभूति मुझे हो पाई उसमें मित्र भी हिस्सा बँटाएँ और उनके अनछुए, नज़रअन्दाज़ किए गए पहलुओं की ओर मित्रों का ध्यान जाए। केवल किसी एक खामी के कारण वे तिरस्कृत न हों। अब मेरे इस प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हो पाता हूँ इसका अन्दाज़ लगाना कठिन है क्योंकि सफलता तो निर्भर करती है दर्शकों की मानसिकता, उनकी संवेदनशीलता और क्रियान्वयन करने की क्षमता पर। परन्तु हाँ, मेरी आम की गुठली में बना चित्र देखने के बाद कोई व्यक्ति आम खाने के बाद गुठली फेंक देने के पूर्व

रुक कर यदि एक क्षण के लिए भी उसे गौर से निहारे तो इसे मैं अपनी आंशिक सफलता मान सकता हूँ। परन्तु मेरी टूटी हुई चप्पल की मोनालिसा देखने के बाद अपनी टूटी चप्पल यदि कोई मेरे ही पास भेज दे तो फिर सिवाय माथा ठोक लेने के मैं कर भी क्या सकता हूँ।

भई, यह तो आपकी नज़र है। हम कहाँ देख सकते हैं। अपने तो बूते की बात नहीं। इस प्रकार की दलील का मतलब प्रयास करने के झंझटों से छुटकारा।

नज़र और नज़रिया

मैं तो हमेशा ही कहता हूँ कि इस प्रकार की नज़र केवल मेरी ही बपौती नहीं है। हर बच्चे के पास वह होती है, आपके पास भी है। एक तो उसकी जानकारी आपको नहीं है या उसे आज़माने का प्रयास आपने नहीं किया।

मैं वही बातें तो करता हूँ जो बचपन में एक बच्चा भी करता रहता है। जब वह पकौडी में मुर्गा या बतख की शक्लें देखकर माँ को दिखाने का प्रयास करता है तो उसे मिलती है चपत, और यदि मैं गुठली में सुअर या किसी साधु का चेहरा दिखाता हूँ तो मेरी नज़र की तारीफ होती है। यह भी कोई न्याय है? सडक पर या बगीचे में घूमते हुए अजीब–सी लगने वाली चीज़ें, वह भी बटोरता है और मैं भी। क्या फर्क है? फर्क तो केवल इतना है कि उन्हीं चीज़ों को बडे भी समझ पाएँ, इस ढंग से उसे प्रस्तुत करने का तरीका। अब वयस्क होने के नाते मुझे इनाम तो नहीं मिलता। परन्तु हाँ, मेरी इन बचकानी हरकतों का मज़ाक अवश्य उडाया जाता रहा है।

हर बच्चे में, और इसीलिए हर व्यक्ति में यह नज़र प्रकृति ने दे रखी है। लेकिन इसका अहसास उसे नहीं होता और न कभी वह उसे जानने का प्रयास करता है। एक साधारण–सा उदाहरण लें।

कौन चित्रकार है

जब दर्शकों को अपनी कृतियाँ दिखाता हूँ तो आमतौर पर उनकी एक ही प्रतिक्रिया मुझे दिखाई देती है। बादलों में तथा पानी के धब्बों के कारण या रंगों की परतें उखड जाने के कारण बिगडी हुई पुरानी दीवारों पर दिखाई देने वाले चित्रों की स्वीकारोक्ति। अब ज़रा गौर कीजिए, क्या वास्तव में वहाँ चित्र होते हैं? वहाँ तो होते हैं बादलों के कुछ टुकडे या पुंज और धब्बे। बस, हर व्यक्ति अपनी–अपनी कल्पना शक्ति के सहारे इस पुंज में से अपने मनचाहे और परिचित चित्रों का निर्माण कर लेता है। हर व्यक्ति के अन्दर विद्यमान जो एक छिपा हुआ चित्रकार होता है वही तो यह चित्र बनाता है। उस छिपे हुए चित्रकार को प्रकट होने के लिए आसमान के बादल या दीवारों के धब्बे बहाना मात्र हैं।

किसी चीज़ पर दूसरी चीज़ के टकराने से उसमें से आवाज़ निकलती है यह तो हम सब जानते हैं। यदि चीज़ ठोस होती है तो एक प्रकार की आवाज़ निकलेगी। धातु की हो तो भिन्न आवाज़ निकलेगी, मतलब जिस जाति की आवाज़ प्रकृति ने उसमें दे रखी है वही तो निकलेगी। परन्तु यह आवाज़ सुप्त रूप में छिपी हुई नाद या ध्वनि होती है। प्रकट होने के लिए बाहर की किसी टकराहट की आवश्यकता होती है। कहावत भी है, एक हाथ से ताली नहीं बजती। तो इस प्रकार की टकराहट के लिए और अन्दर की छिपी शक्तियों को प्रकट करने के लिए हमारे आस–पास के वातावरण की हरेक चीज़ तैयार है। बशर्ते उसे प्रतिसाद देने और संवाद स्थापित करने के लिए संवेदन क्षमता हो। वह तो अनेक कुप्रभावों के आवरण के नीचे दबकर शिथिल हो जाती है।

अज्ञान का लोन्दा बनाम स्वाभाविक विकास

बच्चे का दिमाग इस मायने में पूरा संवेदनक्षम होता है, कुप्रभावों से अछूता। परन्तु धीरे–धीरे वयस्कों के अनावश्यक दबावों के कारण संवेदनशीलता के कम होने का खतरा बना रहता है। अधिकांशतः यह देखा गया है कि वयस्क, फिर वह पालक हो या शिक्षक अपनी बातें शिक्षा के रूप में बच्चों पर थोपते हैं, अपनी इच्छा या महत्वाकांक्षा के अनुरूप उन्हें ढालना चाहते हैं। और इस दबाव के कारण बच्चे की प्रव त्ति बाहर उभरने की बजाय अन्दर ही दबकर रह जाती है। उसे प्रकट होने का अवसर ही नहीं मिलता और उसके स्वाभाविक विकास की गति रुक जाती है।

हमारी यह पक्की धारणा बन चुकी है कि बच्चे के रूप में प्रकृति ने एक अज्ञान का लोन्दा हमारे सुपुर्द किया है और उसे हमें आकार देना है। बिलकुल शुरू से ही एक विशिष्ट आकार देने की, उसमें ढालने की यह प्रक्रिया शुरू हो जाती है। मैंने तो यह पाया है कि सिखाने के प्रयास में कोई सीखता नहीं। वह तो सीखता है स्वयं के प्रयास से। उसके अन्तःप्रेरित प्रयास को आसान करने के लिए यदि हम केवल सहयोग दें तो सही ढंग से विकास होने की सम्भावना अधिक है।

बच्चे की संवेदन क्षमता बनाए रखना, कल्पना शक्ति बढाने के लिए पूरा अवसर देना और ऐसे अवसर निर्माण करना ताकि उसे प्रोत्साहन मिलता रहे, और अपने आस–पास के वातावरण के बारे में भी जागरूकता निर्माण करना, इसे मैं महत्वपूर्ण मानता हूँ। इसीलिए जब भी मुझे कोई अपने बच्चे को सिखाने के लिए कहता है तो मेरा एक ही निवेदन होता है, भई, बच्चों को सिखाने की गुस्ताखी मैं नहीं करुँगा। उनसे तो मैं खेलूँगा। उनके साथ खेलने पर वह खुद ही अपनी क्षमता के अनुरूप सीख लेंगे।

प्रकृति, प्रकृति, प्रकृति

सिखाने की वास्तव में आवश्यकता है वयस्कों को। ताकि वे बच्चों की सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया में अनावश्यक दखलअन्दाज़ी न करें, बल्कि सहयोग दें। यह मेरा अपना अनुभव है। मैं भी तो खेलते–खेलते ही सीखा हूँ। जब मुझे एक गुरु ने कहा, टीचिंग इज़ चीटिंग, रियल टीचर इज़ नेचर। तो बात मुझे जँची और मैं प्रकृति की शरण में गया। धीरे–धीरे बात समझ में आने लगी। प्रकृति की इस पाठशाला में कोई भाषणबाज़ी नहीं है और न किसी विशेष बात को जानबूझ कर थोपने का प्रयास। वहाँ हर चीज़ में अपने–अपने तरीके से नियमित रूप से काम करते रहने का कार्यक्रम जारी रहता है। बस आप उसे निहारते रहें, उसे समझने का प्रयास करें, उसके साथ तन्मयता स्थापित करें। वह आपको कुछ–न–कुछ सोचने के लिए उकसाएगी और आपका सोचना शुरू हो जाएगा। आप प्रकृति में बिखरी हर चीज़ के साथ खेलें। उसके साथ रिश्ता जोडें –संवाद स्थापित करें। वह अपना सब कुछ आप पर न्यौछावर कर देगी। अपनी औकात के अनुसार आप बटोरते चलें, उसका भण्डार कभी खाली नहीं होगा।

हम अपनी ही बात देखें तो पता चलेगा कि प्रकृति को समझ लेने के प्रयास के कारण ही तो मानव प्रगति के इस पडाव तक पहुँच पाया है। वैज्ञानिक अपने तरीके से, चित्रकार अपने तरीके से तो अन्य विधा के धनी अपने–अपने तरीके से प्रकृति को समझने का प्रयास कर रहे हैं और प्रकृति भी अपना पूरा सहयोग दे रही है। प्रकृति और मानव के आपसी सहयोग से ही एक स्वस्थ विकास की सम्भावना है। सहयोग खेल भावना में ही मिल सकता है। यही वजह है कि मैं बच्चों के साथ खेलना चाहता हूँ। मुझे वह पुराना अँग्रेज़ी मुहावरा जँचता नहीं है, वर्क वाइल यू वर्क, प्ले वाइल यू प्ले, देट इज़ द वे टू बी हैप्पी एण्ड गे।

खेल के समय खेल और काम के समय काम, मतलब खेल और काम मानो परस्पर विरोधी बाते हैं। एक का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यानी हर बात में अलगाव। इसके विपरीत यदि इन दोनों का समन्वय करें तो? हर काम खेल भावना से क्यों न हो? इस तरीके से तो काम का उबाऊपन तथा उसकी बोझिलता कम होकर खेल–खेल में ही काम अपने आप हो जाए।

असीमित सम्भावनाएँ

मैं तो भई काम को इसी रूप में लेता हूँ। घर के आंगन में झाडू लगाना, कपडे धोना या ऐसा कोई भी काम जिससे कि हमारे बहुतेरे लोग जी कतराते हैं, करने में मुझे मज़ा ही आता है। हर काम की अपनी विशेषता होती है, उसका कोई धर्म होता है, हलचल में एक लयकारी होती है। उसे समझने और उसकी लय के साथ लय मिलाते ही वह काम आसान हो जाता है। काम के दौरान कई प्रकार के अनुभव मिलते रहते हैं और काफी कुछ सीखना हो जाता है। मेरे सारे चित्र इस प्रकार के खेल के परिणाम स्वरूप काम करते–करते ही बन पडे हैं। मैं तो खेलता रहा और चित्र अपने आप उभरते रहे। मेरा प्रयास केवल उन्हें खोजने का या थोडा–बहुत संवार कर दूसरों की अनुभूति के लिए प्रस्तुत करने का रहा। वह भी इतना संयमित कि उसका मूल स्वरूप नष्ट न होने पाए। दर्शकों को केवल इशारा मिल जाए ताकि अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा वे अन्य बातें भी खोज पाएँ।

आंगन में सफाई करते समय सूखी टहनियाँ, सूखे हुए पत्ते, फलियाँ, बीज, बेमतलब उगने वाली चीज़ें आदि मेरा ध्यान खींचती रहीं। उन्हें निहारते–सहलाते हुए निकटता महसूस होने लगी और वे भी अपनी–अपनी विशेषताएँ, अपना आकार, बनावट, रंगों की छटाएँ जैसी बारीकियाँ प्रकट करने लगीं। यही तो उनकी भाषा है। उसे समझ लेने के प्रयास में ही बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। और फिर पानी की बोतल साफ करते हुए उसमें की काई, रंगों की प्लेट–ब्रश, या टेबल की जमी धूल साफ करते समय कपडे के पोंछे पर फैले हुए धब्बे आदि चित्र की प्रेरणा देने लगे। घर की सफाई करने पर झाडू में घाघरा फैला कर नाचने वाली गुडिया का आभास हुआ, तो दीवार पर ही मकडी के जाले ने चिपक कर चित्र बना दिया। चप्पल टूटी तो मोनालिसा से मेल जम गया। तो दूसरी, पनिहारिन बनकर सामने आई। आम की गुठली में सुअर तो कभी कोई साधु–महात्मा दिखाई पडे। दूसरी में रवीन्द्रनाथ, कार्ल मार्क्स तथा आंइस्टीन की याद हो गई। कुर्सी की टूटी हुई पीठ के हिस्से में ध्यानस्थ योगी, फिर वह भगवान महावीर हो, बुद्ध हो, विनोबाजी या रामकृष्ण परमहंस के भी दर्शन होते रहे। पुरानी फटी हुई बनियान से बने ईसा मसीह को मुम्बई प्रदर्शनी में देखकर किसी दर्शक की प्रतिक्रिया बडी ही मार्के की रही। ईसा के एक वाक्य, मैं तो बस एक चिथडा हूँ। इससे अधिक कुछ नहीं। का उदाहरण देते हुए उस वाक्य को सार्थक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय उन्होंने मुझे दे दिया।

जली हुई रोटी में बच्चे को दूध पिलाती माता के दिखने की बात कहूँ तो वो मेरी बचकानी हरकत लग सकती है। और बात है भी सही। फर्क केवल उसे संप्रेषित करने के तरीकों में है। अब यदि सच कहूँ तो कहाँ–कहाँ तक गिनती की जाए इन चित्रों की और उनके प्रेरणा स्रोतों की? हमारे आस–पास ही प्रकृति का अखूट भण्डार भरा पडा है पर उसे उलीचने की क्षमता सीमित है। इसी कारण तो हमें कई बातें बेकार और बेमतलब–सी लगती हैं। वास्तव में, वे बेमतलब की नहीं होतीं। हम या तो उनका मतलब नहीं समझ पाते या उन्हें मतलब देने लायक कल्पना शक्ति का हम में अभाव होता है। इस अभाव को दूर करने की दिशा में यदि प्रयास किया जाए तो कोई बात बेमतलब और बेकार नहीं लगेगी और उनके साथ एक नया रिश्ता जुड सकेगा। और यदि इन निर्जीव लगने वाली चीज़ों के साथ अपनेपन का रिश्ता जुड सकता है तो सजीव प्राणी के साथ तो जुड ही सकता है।

निर्जीव संसार से परे सौन्दर्य बोध

यह विचार मेरे मन में तब अधिक प्रबल हुआ जब मेरी मुलाकात बाबा आमटे से हुई। निर्जीव वस्तुओं के साथ खेलना आसान होता है, उनकी प्रतिकार शक्ति सजीव प्राणियों की प्रतिकार शक्ति के मुकाबले कम होती है। इसलिए उसे मनचाहे ढंग से ढाला जा सकता है। परन्तु मनुष्य के साथ यह बात इतनी आसान नहीं। बाबा ने यह कर दिखाया। कोढियों की मानसिकता में बदलाव लाकर और उनकी सुप्त अस्मिता जगाकर उनके द्वारा बडे–बडे निर्माण कार्य करवाए और वे भी सहज हँसते–खेलते।

पन्द्रह साल पूर्व जब पहली बार मैं बाबा आमटे से मिला तो उन्होंने एक सवाल रखा, हम अजन्ता एलोरा जाते हैं और वहाँ भग्न, अवयव विहीन शिल्पों व चित्रों की हम सराहना करते नहीं अघाते। भग्न कलाकृतियों में भी सौन्दर्य खोजने वाला हमारा सौन्दर्य बोध क्या केवल चित्र, शिल्पों तक ही सीमित है? बिना किसी अपराध के जिसके अवयव झड चुके हैं, जो अपना रूप खो चुका है, ऐसे जीते–जागते हाड–मांस के मनुष्य को तिरस्कार की नज़र से देखते हुए हमारा सौन्दर्य बोध कहाँ लुप्त हो जाता है? चित्र, शिल्पों की खामियों को तो हम अपनी कल्पना से पूरी कर लेते हैं। उनके रख–रखाव का पूरा ख्याल रखते हैं। वहीं इन विद्रूप, अपाहिज, कुष्ठ रोगियों से डर कर दूर भागते हैं। क्या उनकी क्षति को पूरा करने लायक कल्पना शक्ति हमारे पास नहीं है?यही सवाल मेरे लिए एक सम्बल बन गया। मनुष्य में कितने सारे पहलू हो सकते हैं। केवल एक ही दृष्टिकोण से उसे परखना उसके साथ अन्याय हो सकता है। बुरे और अप्रिय पहलुओं को नज़रअन्दाज़ कर क्यों न अच्छे पहलुओं को अपनाएँ? किसी के केवल कुछ अंग झड जाने पर उसकी महत्ता समाप्त थोडे ही होती है। उसके अन्दर अन्य कई सम्भावनाएँ हो सकती हैं। उन्हें जगाकर क्यों न उसे उपयोगी बनाएँ?

मुझे निर्जीव, फटी पुरानी बनियान में ईसा दिखाई दिए तो बाबा की नज़र देखिए। वे कंधे पर हल ढोते हुए किसान में अपना क्रूस ढोने वाले ईसा मसीह को देखते हैं और श्रम करते हुए मज़दूर की पीठ पर पसीने की बहती धारा में उन्हें ईसा का क्रॉस दिखाई देता है। मेरी नज़र से खोजी हुई चीज़ तो कलाकृति बनती है और बाबा की नज़र से ..... ?

हमने कला, सौन्दर्य या इसी प्रकार कई बातों को परिभाषित कर उसे एक सीमित दायरे में जकड दिया है। उस घेरे से बाहर निकलकर व्यापक रूप में सोचने को हम तैयार नहीं हैं। इस कारण हमारा सौन्दर्य बोध या कलाकृति की समझ उस व्याख्या के घेरे में ही सिमट कर रहेगी। पर मेरी अपनी निजी मान्यता इसके ठीक विपरीत है। मुझे तो अपनी कलाकृतियों की अपेक्षा बाबा द्वारा निर्मित की गई कलाकृतियाँ श्रेष्ठ जान पडती हैं। मेरा कितना सीमित दायरा, तो बाबा आमटे का इतना विशाल और व्यापक।

अभ्यास के प्रश्न

1. एक बार एक व्यक्ति को बच्चों को कबाड़ से कुछ निर्माण करवाना था तो उसने नये सामान मंगवाकर उन्हे काट पीट कर कलाक तियों का निर्माण करवाया। इस निर्माण के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

2. शहर में एक प्रदर्शनी होने वाली थी जिसमें कबाड़ से कुछ बनाना था। जब शीतल घर पर पुरानी वस्तु ढुंढ़कर कुछ बना रही थी तब उसके दादाजी ने उसे झिड़क दिया की ये क्या कचरा फैला रखा है। शीतल के प्रति उसके दादाजी के इस व्यवहार के बारे में आप क्या कहेंगे ?

3.क्या खेल और काम एक साथ नहीं किये जा सकते हैं ? अपने विचार लिखिए।

4. बाबा आमटे का सौन्दर्य बोध विष्णु चिंचालकर जी के सौन्दर्य बोध से किस प्रकार अलग है ?

प्रोजेक्ट

बड़ों और बच्चों से कबाड़ के निर्माण पर बात कीजिये और दोनों से की गयी बातों का तुल्नात्मक अध्ययन कीजिए।

इकाई 3 कबाड़ से कलाकृति

पठन सामग्री 3

ओरीगेमी– एक आधार अनेक आकार

रविन्द्र केसकर

प्रस्तावना

ओरीगेमी में आमतौर पर वर्गाकार कागज का इस्तेमाल होता है। इस कला में प्रारंभिक भूमिका कुछ आकृतियों के आधारों की होती है। एक ही आधार से बनने वाली विभिन्न आकृतियाँ दी गई हैं पहले आकृति को बनाने का पूरा तरीका बताया गया है, उसके बाद आकृति के साथ कुछ संकेत देकर सवाल दिए गए हैं। संकेतों की मदद से सवालों के जवाब तक का रास्ता आपको खुद ही तलाशना होगा। इससे आपको अपनी रचनाशीलता के उपयोग का मौका मिलेगा। यह कला महज़ खेल तक सीमित नही है। इसका दूसरा पहलू गणित का है। ओरीगेमी की समस्त विधियाँ गणित के सर्वमान्य सिद्धांतों पर आधारित हैं। दुनिया में लाखों बच्चे गणित के भय से स्कूल छोड़ देते हैं। चाहते है कुछ और करना, करने कुछ और लगते है। इसका मुख्य कारण है सामान्य स्तर पर गणित की अर्मूतता। 'नीरस विषय' और 'ऑकड़ों का मायाजाल' जैसे विशेषण भी उसके साथ जुड़े हैं। हकीकत यह है कि गणित किसी भी विषय से कहीं अधिक मूर्त और जीवन के ज्यादा करीब है, सुन्दर है। कोई भी वस्तु चाहे वह मानव निर्मित हो अथवा कुदरती उसमें कुछ न कुछ गणित है। पेड़, पौधे, संगीत, घर सबमें गणित है। परंतु हम जो गणित सीखते हैं वह जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग तक ही सीमित है। हम अपने सामान्य जीवन से गणित को नहीं जोड़ पाते ओरेगेमी के सभी खेलों के पीछे गणित का कोई न कोई सिद्धांत या क्रिया है। इन सिद्धांतों को ओरीगेमी के जरिए सहजता से बताया जा सकता है।

उद्देश्य

- हाथ के कौशलों को बढ़ाना।
- आरेगेमी के माध्यम से गणित विषय के सिद्धांतों को समझने का प्रयास।
- कल्पनाशीलता को बढ़ावा देना।

ओरीगेमी लगभग एक हजार वर्ष पुरानी कला है। यह जापानी शब्द 'ओरी' यानी मोड़ना और 'गेमी' यानी कागज़ से मिलकर बना है। पूरे शब्द का मतलब हो गया कागज को मोड़ना। कागज के मोड़ से अनेक रोचक व जटिल आकृतियाँ बनाई जा सकती हैं। इस कला में जो कुछ भी करना है कागज को मोड़कर ही करना है। मतलब यह कि कागज को काटना या चिपकाना नहीं है। इस मायने में क्राफ्ट और ओरीगेमी एक

ही नहीं होते। ओरीगेमी की अब तक उपलब्ध पुस्तकों में कागज को यंत्रवत मोड़ने की विधि बताई जाती रही है। लेकिन ये विधियाँ पाठकों को नई तरह की आकृतियाँ बनाने के लिए उत्साहित नहीं कर पाती ओर न ही उनकी कल्पनाशीलता का कोई उपयोग हो पाता है। ओरीगेमी में छात्राध्यापकों की रूचि बढ़े, इसलिए इसे लिखा गया है।

ओरीगेमी में पानी गेंद एक लोकप्रिय आकृति है। साथ ही पानी गेंद आधार भी ओरीगेमी करने वालों के लिए जाना पहचाना है। इस पुस्तक में इस आधार को ही हमने नए–नए आकार देने की कोशिश की है। सामान्यतः यह धारणा है कि कागज़ के खिलौने बनाने की पुस्तकें उबाऊ होती है जिनके प्रति पाठक अपना रूझान नहीं बना पाता। जबकि इन्हीं खिलौनों को यदि वह प्रत्यक्ष बनते हुए देखता है तो खुद भी करने को उत्सुक हो जाता है। इस तरह यह बात समझ में आती है कि पाठक सांकेतिक भाषा के प्रति खुद को असहाय महसूस करता है। इसलिए शुरू में ही संकेतों को अच्छे से जान–समझ लेने के लिए कुछ जरूरी बातें दिये गये हैं। आगे बढ़ने से पहले हर छात्राध्यापक से हमारा अनुरोध है कि इन संकेतों से अच्छी तरह से वाकिफ हो लें। हर कला का अपना एक अनुशासन होता है जिसके तहत् वह निखरती है। ओरीगेमी का भी अपना एक आंतरिक अनुशासन है जिसे मानने पर हम इसे सरल बना सकते हैं। इस अनुशासन के मुख्यतः दो सोपान हैं। पहला यह कि प्रत्येक चरण (वर्ग, आयत, कोण, भुजा और कर्ण) को मोड़कर आधा करना तथा दूसरा समरूपता बनाए रखना। आशय यह है कि यह एक सीमित कला है। संभव है हर नया मोड़ और समरूपता आपकी आकृति को नया आकार प्रदान करेगा।

रविन्द्र केसकर

कुछ जरूरी बातें

ओरीगेमी में वर्गाकार कागज का इस्तेमाल होता है। वर्गाकार कागज काटना तो तुम्हें आता ही होगा। किसी आयताकार कागज से वर्गाकार कागज ऐसे काटा जाता है–

1. कोई आयताकार कागज ले लो।

2. एक कोने से ऐसा मोड़ बनाओ की सामने की भुजाएँ एक दूसरे पर ठीक–ठीक बैठ जाएँ।

3. एक त्रिभुज पर दूसरा त्रिभुज पूरी तरह बैठ गया। नीचे बची पट्टी को काटकर निकाल लो।

4. त्रिभुजाकार हिस्से को खोल लो। तुम्हारा वर्ग तैयार है। भुजाएँ मापकर इसकी जाँच कर लो।

वर्ग की जाँच

किसी वर्गाकार कागज़ के आमने–सामने के कोने एक दूसरे पर रखने से जो मोड़ बनेगा, बाकी बचे हुए कोनों से होकर गुज़रेगा । किनारे एक दूसरे पर फिट बैठेंगे। अगर किनारे ठीक–ठीक एक दूसरे पर नहीं बैठते तो इसका मतलब है कि वर्ग सही नहीं है। यह तो हुई जाँच की बात।

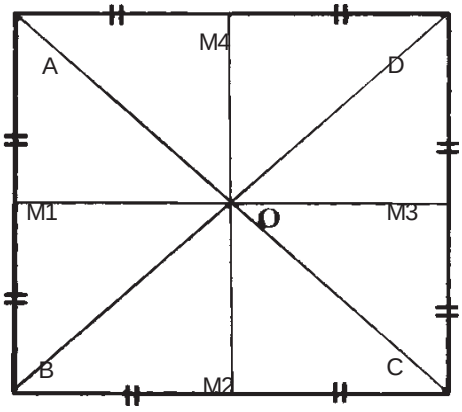

किस तरह का कागज़ हो ?

कोई भी कागज़ जिसे तुम आसानी से मोड़ सको। न एकदम पतला हो (मिठाइयों की पन्नी) और न ही एकदम मोटा (जूते के डिब्बे) । पतले कागज़ के तौर पर तुम कॉपी का पन्ना तथा मोटे कागज़ के रूप में पोस्टकार्ड का इस्तेमाल कर सकते हो।

वर्ग के चारों कोनों का नामकरण कर लो। हो सके तो किनारों के मध्य बिन्दु और वर्ग के केन्द्र बिन्दु को भी नाम दे दो।

जिस सतह पर मोड़ बनाने का संकेत दिया हो उसी सतह पर मोड़ बनाओ। आगे के पन्नों में संकेत दिए हुए हैं। इन्हें ठीक से पहचानकर अभ्यास कर लो। ऐसे संकेत हर चित्र के साथ होंगे।

कागज़ मोड़ने के लिए सख्त सतह का ही इस्तेमाल करो।

मोड़ पक्के बनाने के लिए हथेली या उँगली का इस्तेमाल न करके। अँगूठे के नाखून का उपयोग करो। (देखो चित्र)

हर मॉडल को बनाने में चित्रों का एक क्रम है। यह क्रम 1,2,3..... के रूप में दिया गया है । इसी क्रम से चलना होगा। जितने जरूरी संकेत हैं उतना ही आवश्यक है आधार । इसलिए आधार बनाने और उसे अलग–अलग तरीके से मोड़ने का अभ्यास भी आरम्भ में ही तुम्हें कर लेना चाहिए।

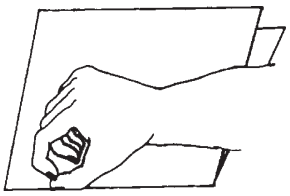

चित्रों के नीचे जो लिखा है उसे ध्यान से पढ़ लो। पहली ही कोशिश में मॉडल नहीं बन पाए तो हताश मत हो जाना। हर कदम और संकेत पर गौर करो और आगे बढ़ों । एक बार के बाद फिर कोशिश करो.....फिर कोशिश करो.....तुम्हें सफलता जरूर मिलेगी।

संकेत

1. खाई मोड़

— — — — — — —

यह मोड़ अन्दर की तरफ धँसा हुआ होता है। इसलिए इसे खाई मोड़ कहते हैं।

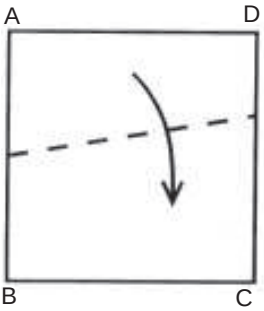

1क. कागज के एड किनारे को तीर की दिशा में मोड़ो।

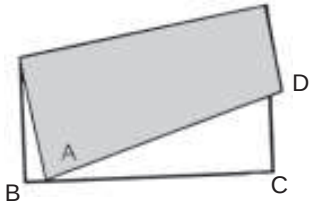

1ख. ऐसी आकृति बनेगी।

2. खाई मोड़ बनाकर खोल लो

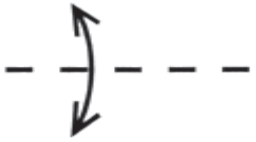

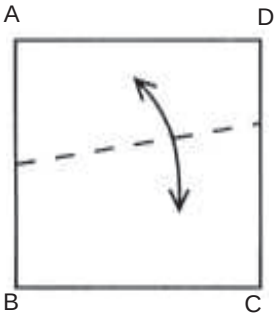

2 क. कागज़ की A D भुजा को नीचे की ओर मोड़ो।

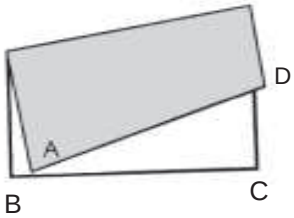

2 ख. ऐसे.....

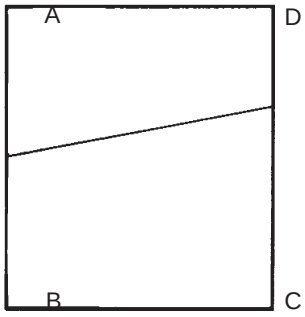

2 ग.मोड़ को खोल लो। चित्र पर हल्की रेखा दिख रही है। यही है खाई मोड़।

3. पहाड़ी मोड़

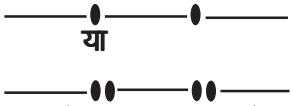

यह मोड़ उभरा हुआ है इसलिए इसे पहाड़ी मोड़ कहते हैं। कागज़ को पलट दो तो यही मोड़ दूसरी ओर खाई मोड़ हो जाएगा । चूँकि खाई मोड़ बनाना आसान होता है इसलिए पहाड़ी मोड़ बनाने के लिए कागज़ को पलटकर खाई मोड़ बना लेते हैं।

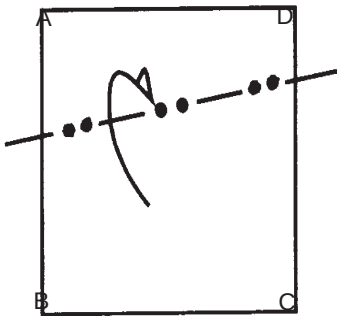

3 क. कागज को उलटी दिशा में मोड़ दो।

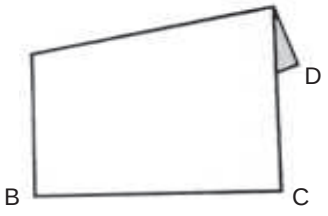

3 ख. कागज़ का ऊपरी हिस्सा पीछे चला गया।

4. दोहराना

जैसा पहले हिस्से पर किया है वही प्रक्रिया दूसरे हिस्से पर भी दोहराओ।

(अ) एक बार

(ब) दो बार

(स) तीन बार

तीर पर जितनी खड़ी रेखाएँ हों प्रक्रिया को उतनी बार दोहराना होता है।

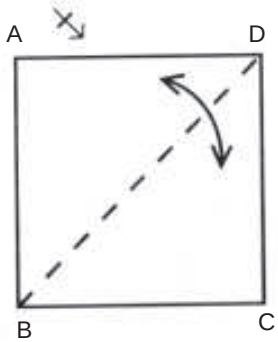

4 क. A कोने को C पर रखकर मोड़ो और खोल लो। यही प्रक्रिया दूसरे कोने पर भी दोहराओ।

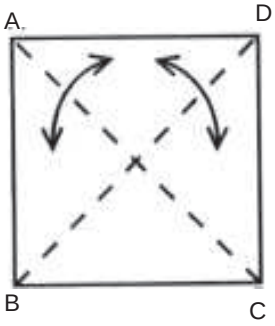

4 ख. AC और BD कर्ण बनेंगे।

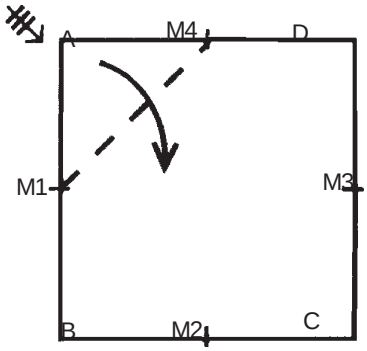

4 ग. कागज के A कोने को तीर की दिशा में मोड़ दो। बाकी तीन कोनों पर भी यह प्रक्रिया दोहराओ।

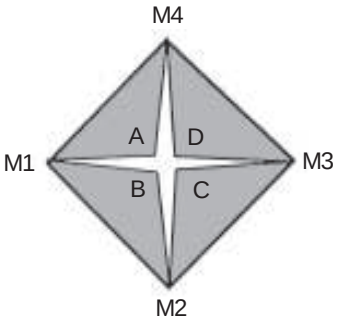

4 घ. ऐसी आकृति बन जाएगी।

5. आकृति को पलटना

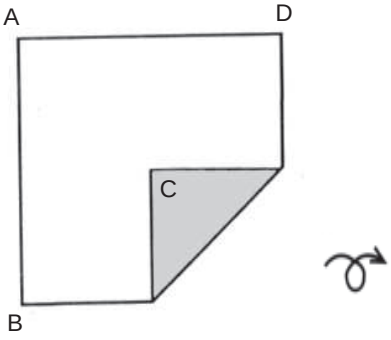

5 क. कागज़ के एक कोने C को मोड़ो। अब कागज को पलटो।

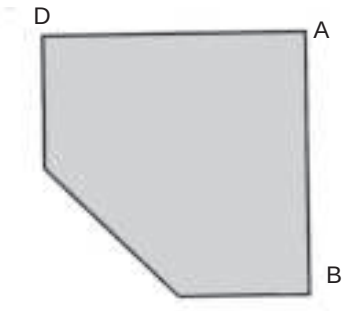

5 ख. पलटने के बाद कोना नीचे दब गया है। रंगीन सतह सामने आ गई।

6. एक हिस्सा दूसरे के बराबर है

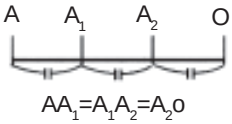

6 क. एक रेखाखंड तीन बराबर हिस्से में बँटा है।

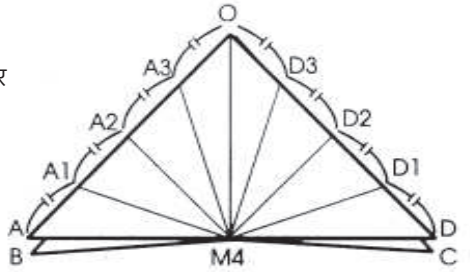

$AA_1=A_1A_2=A_2A_3=A_30=OD_3=D_3D_2=D_2D_1=D_1D$

6 ख. एक त्रिभुजाकार आकृति की सामने की दोनों ओर की भुजाएँ चार–चार बराबर भागों में बँटी हैं।

7. एक्स–रे नज़ारा
(नीचे दबे हुए हिस्से को बताना)

एक्स–रे के बारे में तो तुम जानते ही होंगे। इसकी मदद से हम शरीर के भीतर की स्थिति का भी पता लगा लेते हैं। इस संकेत के जरिए हम आकृति के पीछे या भीतर दबे हिस्से को बताएँगे।

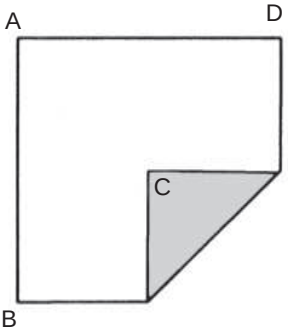

7 क. वर्गाकार कागज़ का एक कोना मुड़ा हुआ है।

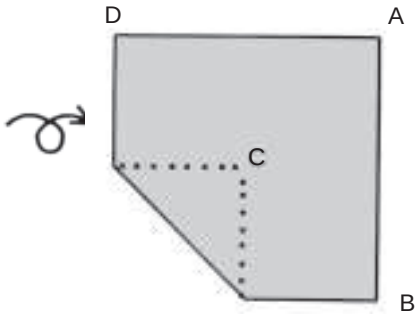

7 ख. पलटने के बाद कोना नीचे दब गया।

8. हवा भरकर फुलाना

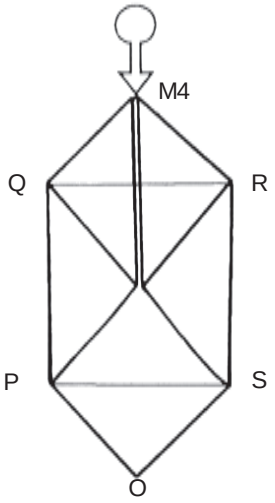

8 क. पिचकी हुई आकृति के सुराख से फूँककर हवा भरो।

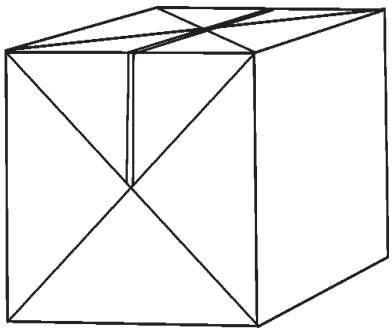

8 ख. फूली हुई आकृति।

9 चोच बनाना या उलटा मोड़ना

जिससतह पर काम करना है उस पर पहले खाई या पहाड़ी मोड़ बना लो।

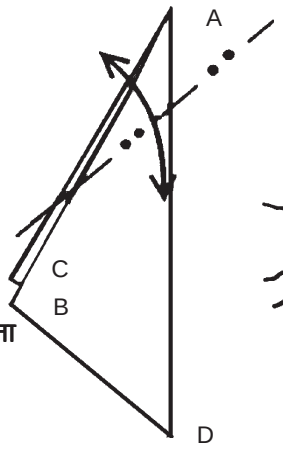

9 क. मोड़कर खोलो।

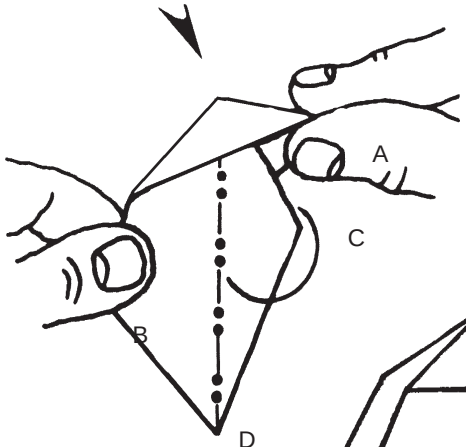

9 ख. मोड़े गए हिस्से को उलट लो।

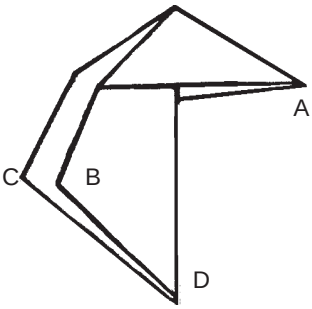

9 ग. चोंच बन गई।

10 . डुबाना

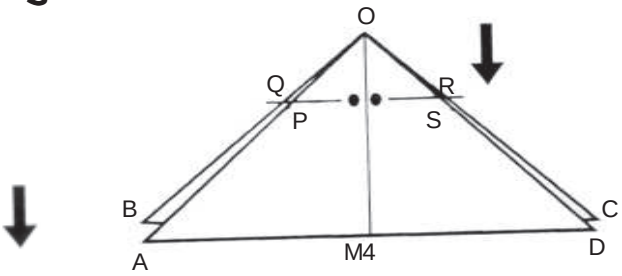

10 क. आकृति के शीर्श को मोड़कर अन्दर की तरफ डुबा दो।

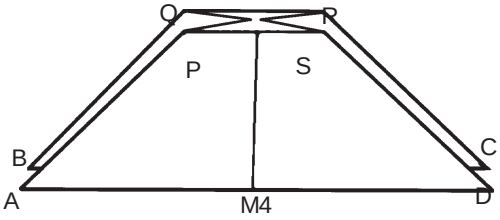

10 ख. ऐसी आकृति दिखेगी ।

11 चपटा करना

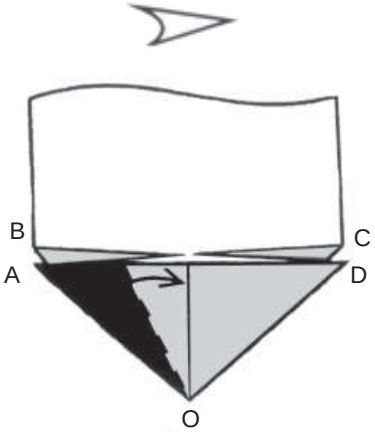

11 क. छायांकित हिस्से को मोड़कर खोलो।

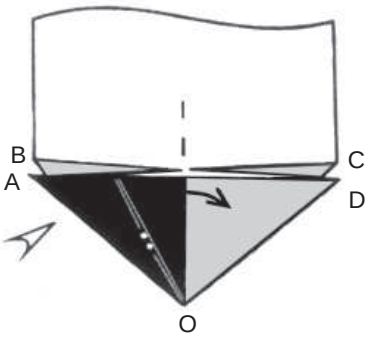

11 ख. खाई मोड़ से A सतह को खड़ा कर लो। अब इसे चपटा कर लो।

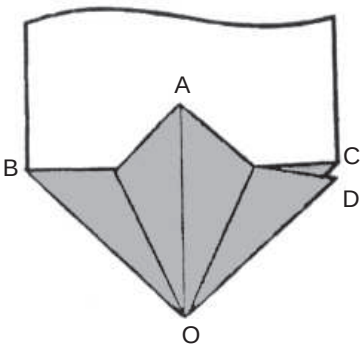

11 ग. ऐसी आकृति बन जाएगी।

पानी गेंद आधार

एक वर्गाकार काग़ज लो। कागज एक तरफ रंगीन और दूसरी तरफ सादा हो। वैसे तुम अपना मनपसंद कागज चुन सकते हो।

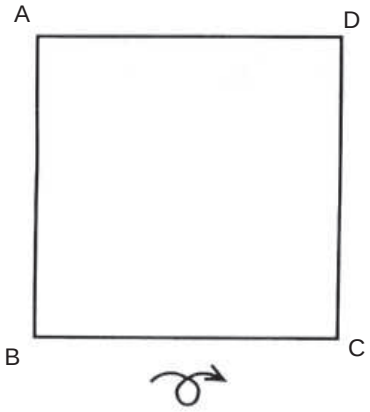

1. कागज़ के चारों कोनों का नामकरण कर लो A , B,C, और D । कागज को पलट लो। कोनों के नाम ध्यान रहें। अब उनका क्रम बदल जाएगा।

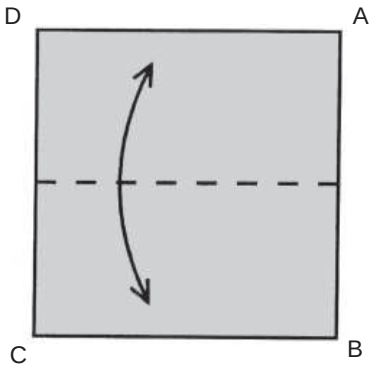

2. बिन्दु A को B पर तथा D को C पर ले आओ। कागज़ बीच से जहाँ मुड़ता हो कसकर दबाओ और खोल लो।

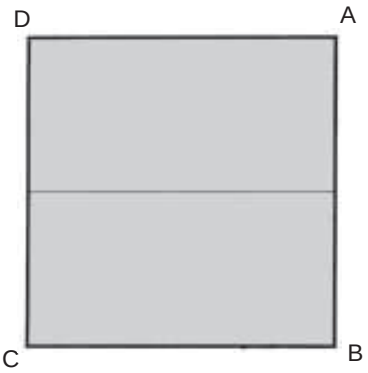

3. कागज के बीचोंबीच एक मोड़ बन गया।

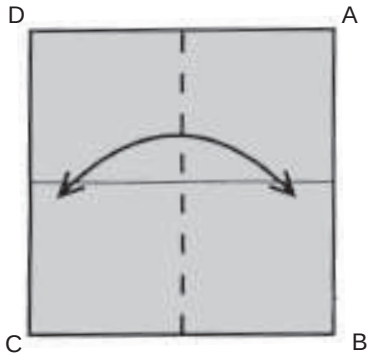

4. अब A कोने को D पर और B को C पर लाओ। मोड़ को पक्का करके खोल लो।

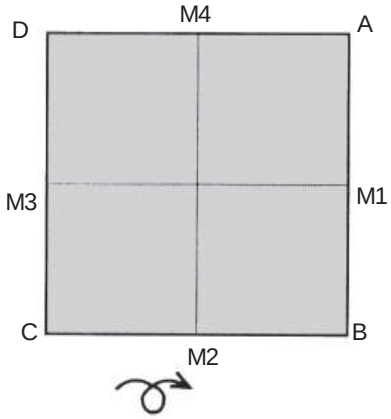

5. एक नया मोड़ बन गया। इन मोड़ो को M1 M3 और M2 M4 नाम दे दो। दोनों रेखाएँ एक–दूसरे को जहाँ काटती हैं उसे O नाम दे दो। कागज़ को पलट लो।

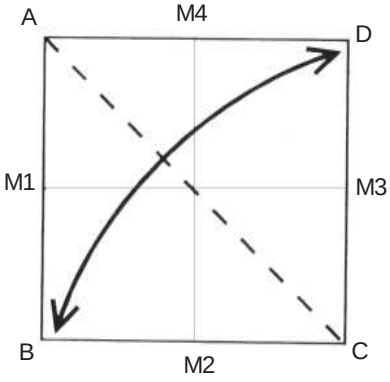

6. B को D पर रखो और पक्का खाई मोड़ बनाकर खोल लो।

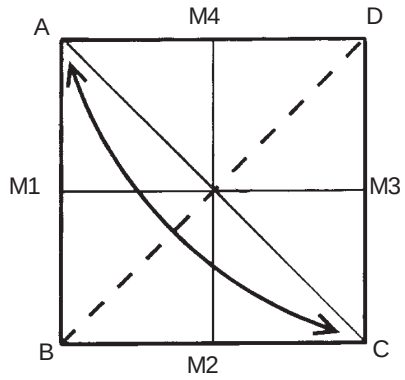

7. वर्ग का एक कर्ण AC बन गया। अब A को C कोने पर ले जाओ मोड़ बनाकर खोल लो।

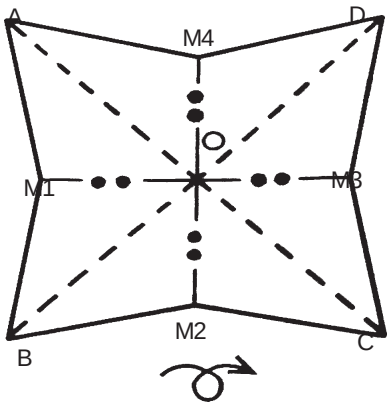

8. वर्ग का दूसरा कर्ण B D बन गया। अब कागज को पलट लो। इस चित्र में तुम देख सकते हो कि कहाँ पहाड़ी मोड़ बने हैं और कहाँ खाई।

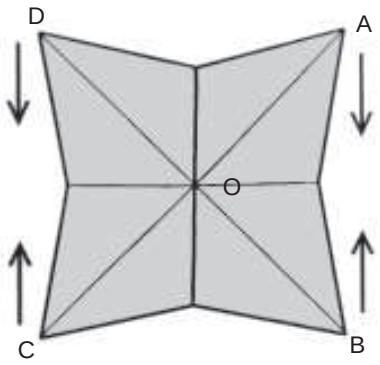

9. अब A, B, C और D में से आमने–सामने के किन्हीं दो कोनों को पकड़कर तीर की दिशा में दबाओ।

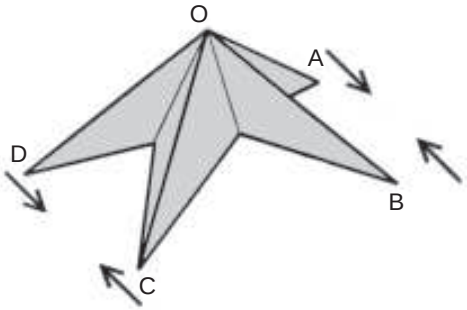

10. इस तरह ।

पानी गेंद आधार आपके द्वारा बनाये जाने वाले ओरगेमी की रीढ़ है। इसको ठीक ढंग से बनाए बगैर आप आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिए इसे बनाने के ढंग को ठीक से समझ लें। यह आधार कई तरीके से बनाया जा सकता है। आप अपना सहज तरीका ढूँढ सकते हैं। यहाँ इसे बनाने का तरीका विस्तार से बताया गया है। इस तरीके से बनाने में आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। बस यह ध्यान रखना होगा कि मोड़ बिलकुल पक्के बनें। इससे तुम्हारे द्वारा बनाई जा रही आकृति में स्पष्टता आएगी और काम भी आसान हो जाएगा।

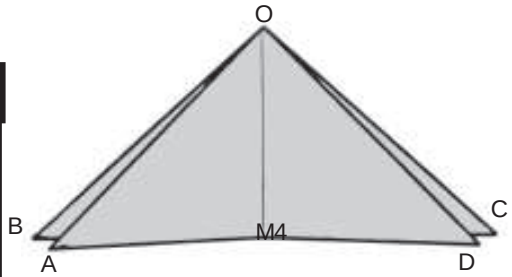

11. बन गया पानी गेंद आधार ।

पानी गेंद आधार के अंग

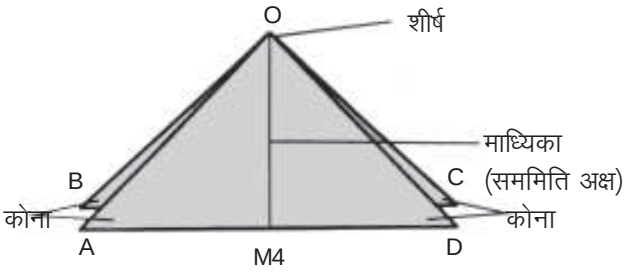

पानी गेंद आधार

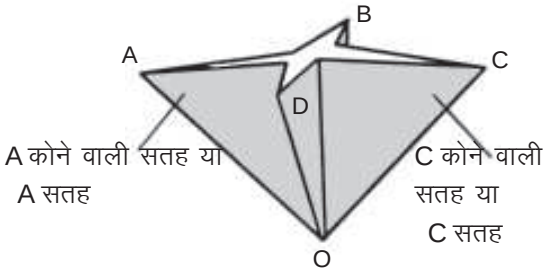

पानी गेंद आधार की फैली हुई चारों सतहें

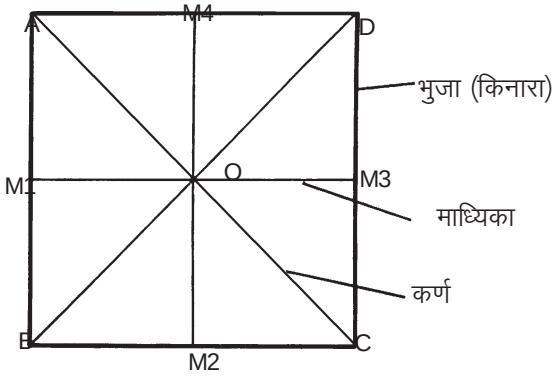

A, B, C, D	कोने
AB = BC = CD = AD	भुजाएँ (किनारे)
M_1, M_2, M_3, M_4	भुजाओं के मध्य बिन्दु
O	वर्ग के केन्द्र
AC = BD	कर्ण (सममिति अक्ष)
M_1 M_3 = M_2 M_4	माध्यिकाएँ (सममिति अक्ष)

सवाल

1. आयताकार कागज से पानी गेंद आधार बन सकता

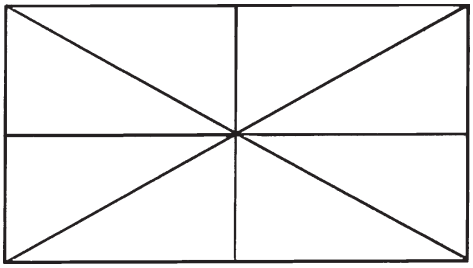

2. छह कोनेवाला पानी गेंद आधार किस तरह बन सकता है?

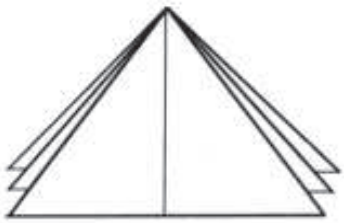

फूल

रंग –बिरंगे फूल भला किसे नहीं भाते ?
लेकिन कागज़ के फूल, चौंक गए न?
वर्गाकार कागज़ से इतने सुंदर फूल बन सकते हैं कि देखने वाले दाँतों तले उँगली दबा लें ।
तुम भी बनाओं हमारे साथ फूल।

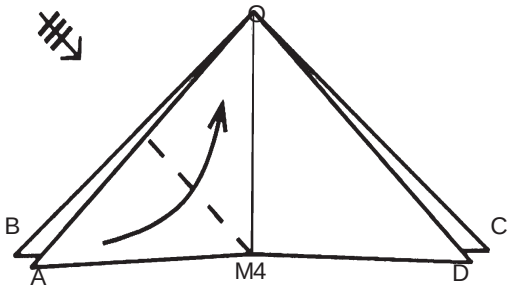

1. पानी गेंद आधार बना लो। A कोने O को बिन्दु पर रखकर खाई मोड़ बना लो। इस प्रक्रिया को बाकी के तीनों कोनों पर भी दोहराओ।

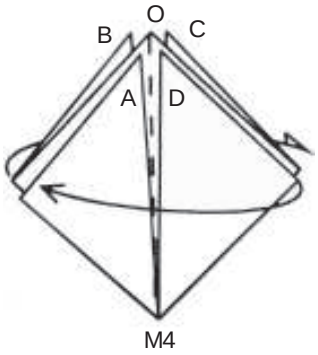

2. चार नए कोने उभर आए। दो ऊपर और दो नीचे। ऊपर के दाएँ वाले कोने को बाईं ओर ले जाओ। नीचे के बाएँ वाले कोने को दाईं ओर ले जाओ।

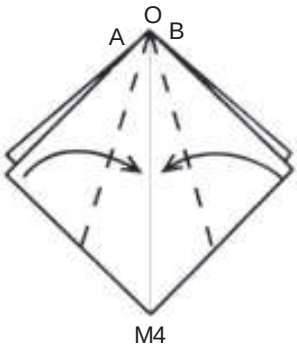

3. D और C कोने वाली सतहों से तिरछे खाई मोड़ बना लो।

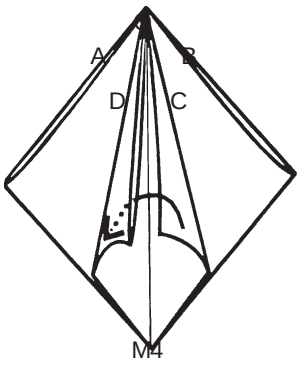

4. मुड़े हुए दोनों कोनों को एक दूसरे में फँसाओ।

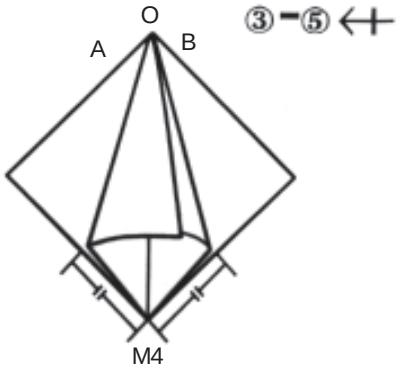

5. कोने एक दूसरे में जहाँ तक जा सकें भर दो। ख्याल रहे कि दोनों कोनों के नीचे की तरफ बची दूरी बराबर रहे। दोनों ओर बराबर दूरी छोड़कर मोड़ पक्के कर लो। आकृति के दूसरी तरफ कदम 3 से 5 तक की प्रक्रिया दोहराओ।

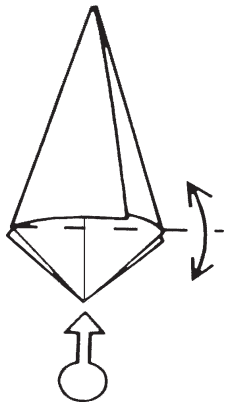

6. आकृति के नीचे के त्रिभुजाकार हिस्से को मोड़कर खोल लो। सुराख से हवा भरकर इसको फुला लो।

7. केन्द्र O से जुड़े हुए A, B, C और D कोनों को बाहर की तरफ मोड़ लो।

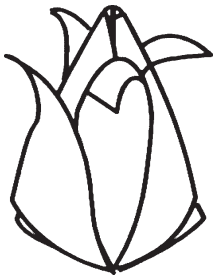

8. चित्र को देखो और याद करो बंद कली को किस तरह से खोलकर तुम फूल बना लेते हो।

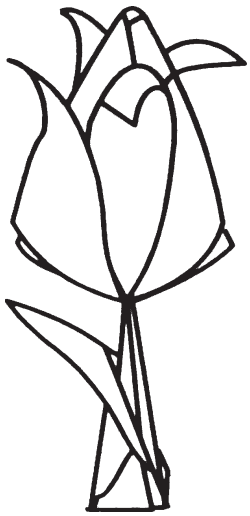

9. इस तरह बनेगा तुम्हारा फूल। सुराख में एक सुंदर डंडी लगा लो।

तुम सोचो

यह फूल कई और तरह से बन सकता है। बीच की कली छोटी, पंखुड़ियाँ बड़ी हो सकती हैं या फिर कली बड़ी और पंखुडियाँ छोटी। दो रंग के कागज़ को मिलाकर रंग–बिरंगा फूल भी बना सकते हो। सोचो कैसे ? और बनाओ।

पानी गेंद

पानी गेंद का मॉडल काफी प्रचलित है। इस पानी बम, घन आदि नामों से भी जाना जाता है। इस मॉडल की लोकप्रियता के कारण ही इसका आधार 'पानी गेंद आधार' भी महत्वपूर्ण हो गया। शुरूआत पानी गेंद आधार से ही करेंगे। पानी गेंद आधार बना लो।

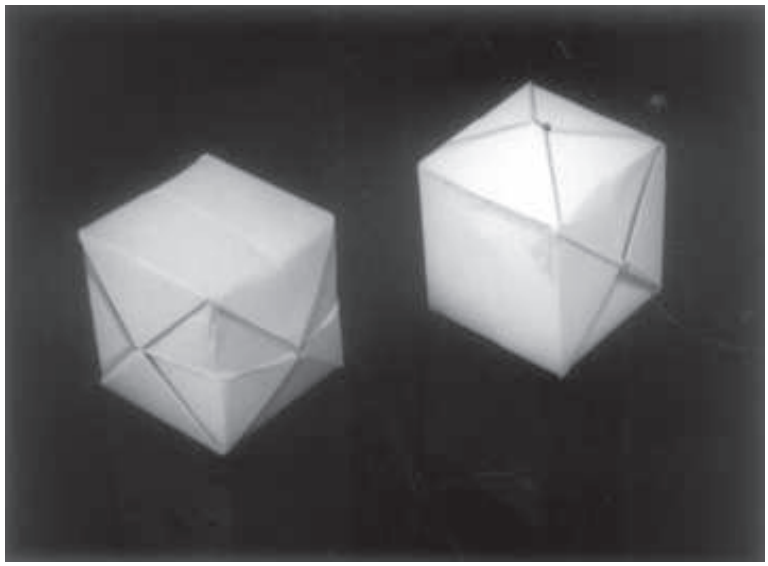

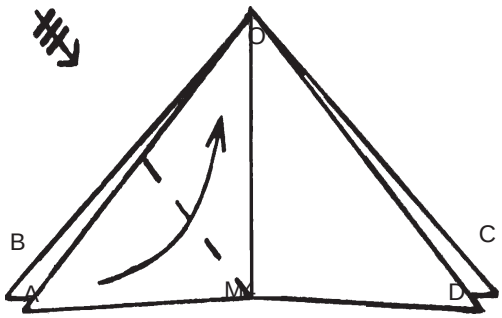

1. A कोने को O बिन्दु पर रखकर खाई मोड़ बनाओं और खोल लो। मोड़ को पक्का कर लो। बाकी तीन कोनों पर भी ऐसा ही मोड़ बनाओ।

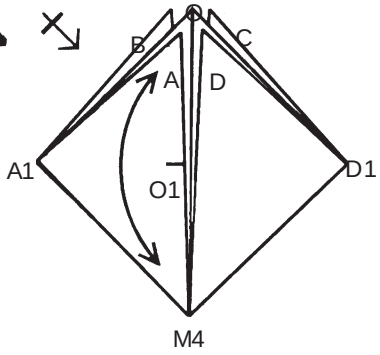

2. A बिन्दु को M4 पर ले आओ। बिन्दु O1 पर मोड़ का सिर्फ निशान ही बनाना है। यह निशान A M4 रेखा का मध्यबिन्दु होगा। सामने की सतह पर भी मध्य बिन्दु का निशान बना लो। चित्र में दिख रही आकृति के बाएँ और दाएँ कोनों को A1 और D1 नाम दो।

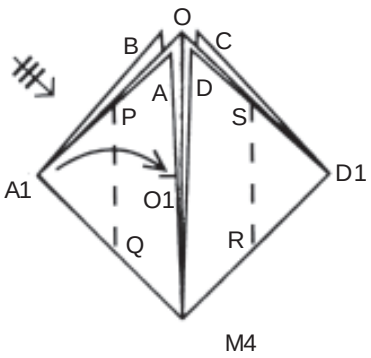

3. अब A1 को O1 तक लाकर मोड़ लो। यही क्रिया बाकी तीन सतहों पर भी दोहराओ।

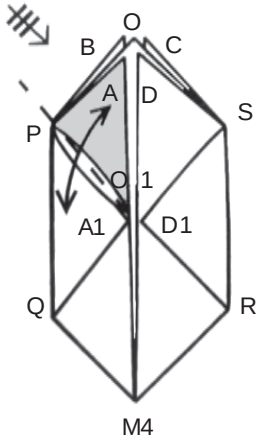

4. इस तरह की आकृति बनेगी। PO1 खाई मोड़ बनाकर खोल दो।

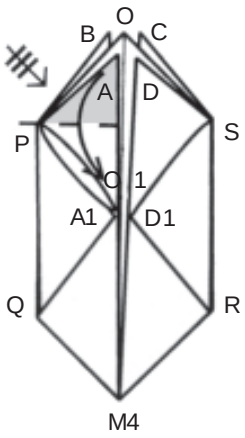

5. A कोने को O1 से मिलाकर खाई मोड़ बना लो। छोटा दोहरा त्रिभुज बन जाएगा। यही क्रिया बाकी तीन सतहों पर भी दोहराओ।

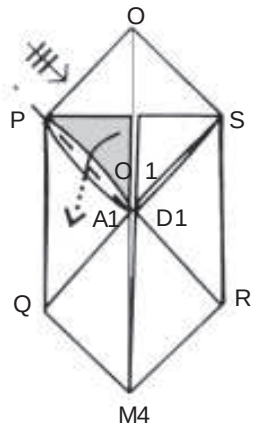

6. कदम–5 में बनाए त्रिभुज को एक बार और PO1 रेखा पर से मोड़ते हुए PA1 पर बनी हुई जेब में ठूँस दो। A कोने की तालाबंदी हो गई।

तालाबंदी की यह प्रक्रिया बाकी तीन कोनों पर भी दोहराओ।

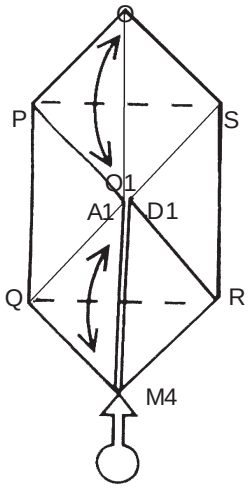

7. PS और QR खाई मोड़ बना लो। निशान पक्के करके इन्हें खोल दो। अब नीचे के सुराख से हवा भर लो।

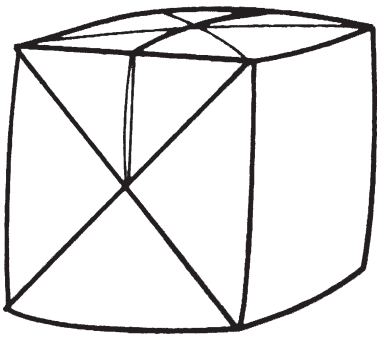

8. पानी गेंद बन जाएगी।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि अगर तुम तालाबंदी नहीं करोगे तो कोने खुले रह जाएँगे और गेंद नहीं बन सकेगी।

नोट : ऊपर बताई गई प्रक्रिया के मुताबिक अगर तुम काम करोगे तो तुम्हारी गेंद सुडौल बनेगी। मोड़ अगर सही और पक्के नहीं बने तो गोल–मटोल होकर रह जाएगी।

पानी गेंद को ठीक तरीके से बनाना सीख लो। एक–एक कदम (स्टेप) का ठीक से अभ्यास कर लेना। इसका इस्तेमाल हम आगे की आकृतियों में भी करेंगे।

बदलाव–1
ईंट

पानी गेंद के कदम–2 (पिछले पेज) शुरू करो।

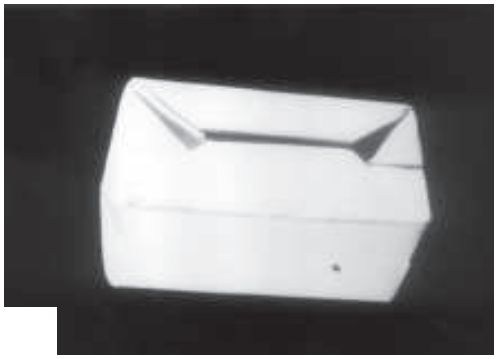

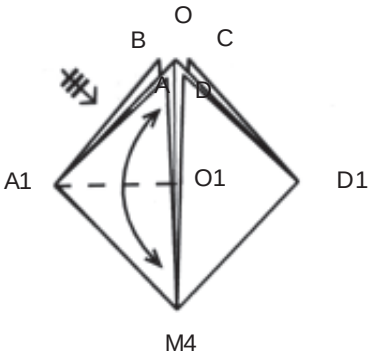

1. A बिन्दु को M4 पर रखकर A1 O1खाई मोड़ बनाकर खोल दो। यह प्रक्रिया बाकी तीन सतहों (B,C,D) पर भी दोहराओ।

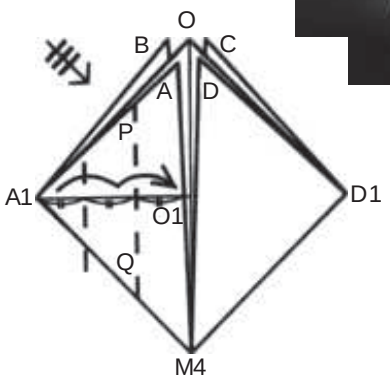

2. A_1O_1 रेखा को अन्दाज से तीन बराबर भागों में बाँट लो। चित्र के मुताबिक कागज को मोड़ो। A सतह के ऊपर जेब बन जाएगी। यही प्रक्रिया बाकी तीन सतहों पर भी दोहराओ।

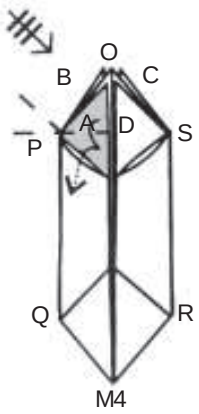

3. चारों कोने (A, B, C, D) ऊपर निकले हुए दिखेंगे। A कोने को पहले आड़ा और फिर तिरछा मोड़कर जेब में ठूँस दो। (तालाबंदी याद है न ?) बाकी तीन कोनों की भी तालाबंदी करो।

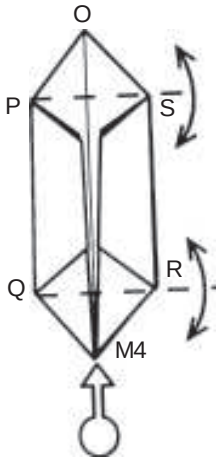

4. P S और Q R खाई मोड़ बनाकर खोल लो। अब सुराख से हवा भर दो।

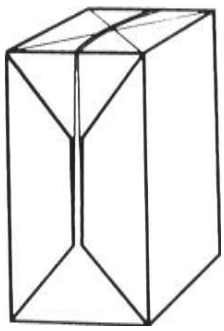

5. ईंट बन जाएगी।

बदलाव –2

आयतकार डिब्बा

ईंट के कदम–2 (पिछले पेज)

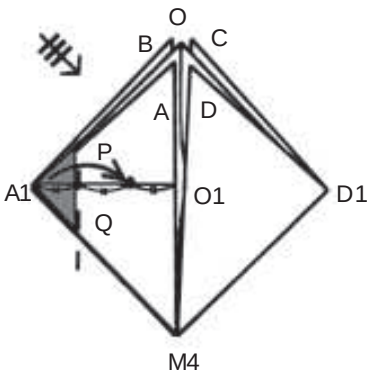

1. A_1 को तीर के निशान तक मोड़ें । बाकी तीन सतहों पर भी यह प्रक्रिया दोहराओं।

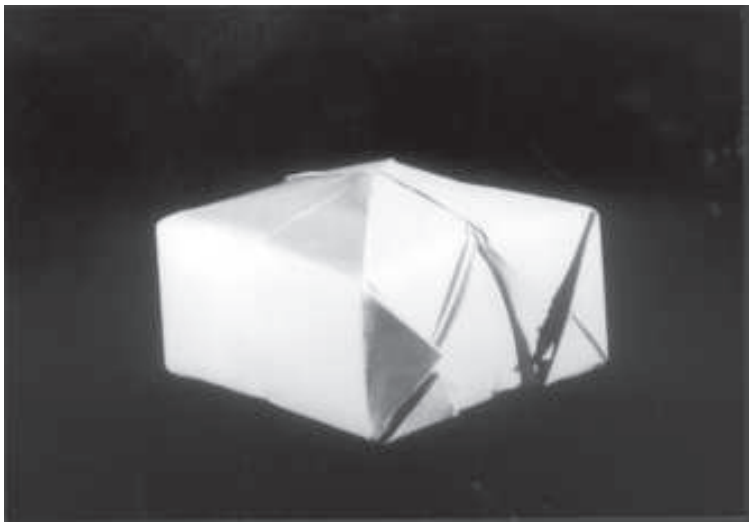

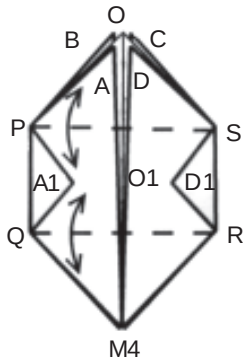

2. P S और Q R खाई मोड़ बनाकर खोलो।

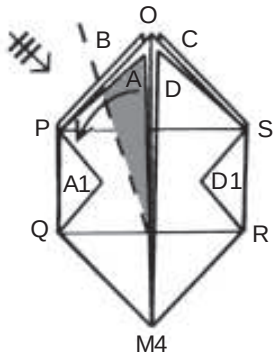

3. A सतह के छायांकित भाग को P A_1 से मिलाकर खाई मोड़ बना लो। यही प्रक्रिया बाकी तीन कोनों पर दोहराओं। चारों कोने ऊपर की तरफ निकले दिखेंगे।

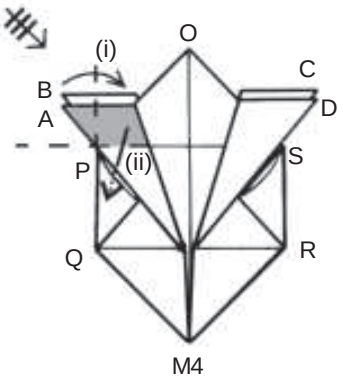

4. A कोने को पहले P बिन्दु से आड़ा और फिर खड़ा मोड़ बनाकर P A_1 पर बनी जेब में ठूँस दो। कोने की तालाबंदी हो गई । इसी तहर बाकी तीन कोनों B, C और D की भी तालाबंदी कर लो।

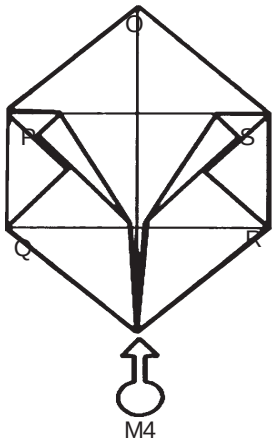

5. सुराख से हवा भरो।

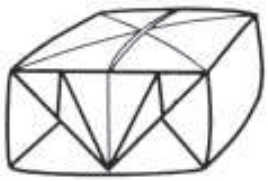

6. आयतकार डिब्बा बन जाएगा।

अभ्यास के प्रश्न–1.

1. रानू कागज को काटकर कुछ बना रही है और उन्हे चिपका भी रही है, क्या इसे ओरेगेमी कहा जा सकता है?

2. कागज को मोड़ मोड़ कर आकृति बनाना किस प्रकार गणित से जुड़ता है?

3. ओरेगेमी में संकेतों को समझना क्यों आवश्यक है? संकेतों का हमारे जीवन में क्या महत्व है? रोजमर्रा की जिंदगी में कहाँ–कहाँ ये संकेत हमें मिलते हैं?

अभ्यास के प्रश्न–4.

वर्ग की जाँच शीर्षक के नीचे एक चित्र दिया हुआ है। इसमें कितने वर्ग, त्रिभुज और आयत हैं?

इकाई –4

बच्चों में चित्रकला का विकास

पठन सामग्री – 1

बच्चों के चित्रों का विकास–क्रम

देवी प्रसाद

बच्चा लकीरें इसलिए मारता है कि वह अपनी आंतरिक दुनिया को किसी सहानुभूतिपूर्ण दर्शक को बता सके, अपने मां–बाप के पास अपने भाव प्रकट करे, जिनसे वह संवेदना चाहता है।''

हर्बर्ट रीड

प्रस्तावना

बच्चों के चित्रों में समय के साथ–साथ परिवर्तन होते रहता है। उनका हर नया अनुभव उनके चित्रों के विकास की अवस्थाओं को थोड़ा–थोड़ा परिवर्तित करता रहता है। ये परिवर्तन क्या हैं और उसमें बड़ों की भूमिका क्या व कैसी हो सकती है यहीं सब बातें इस अध्याय में समझाने की कोशिश की गई है।

पाठ की रूपरेखा

- बच्चे के कला गुण
- कीरम–काटे गूदागादी की अवस्था
- प्रतीक काल

उद्देश्य

- प्रत्येक बच्चे की प्रकृति और स्वभाव अलग अलग होता है,शिक्षकों को यह ध्यान में रखकर शिक्षा योजना बनाने के लिए प्रेरित करना।
- बच्चों के चित्रों के विकासक्रम की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित करवाना।
- विकासक्रम की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तन के कारणों को समझाना।
- बच्चों की रंगबोध व देश विन्यास; स्पेस के उपयोग सम्बन्धी नीति को समझाना।

हमने अपने निरीक्षण में यह देखने की कोशिश की, कि बच्चा जिस समय से हाथ में पेंसिल पकड़ने के लायक हो जाता है, तब से लेकर अपने पूरे बचपन में अगर पूरा स्वतंत्र छोड़ दिया जाए, तो कैसे चित्र बनाएगा? यानी अगर एक, दो या तीन साल के बच्चे के हाथ में कागज, रंग आदि पड़ जाए, तो वह उससे किस तरह के चित्र बनायेगा? और अगर वह इसी तरह आगे भी बनाता रहे, तो कुछ दिनों बाद उसके चित्र कैसे बनेंगे? अर्थ यह है कि बच्चे को स्वतंत्र छोड़कर हमेशा चित्र बनाते रहने देने का मौका दिया जाए, तो उसके चित्रों में किस तरह का विकास होता रहेगा? हमने देखा कि बच्चे के चित्रों में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। उसकी अवस्थाएँ बदलती रहती है। इसका कारण यह है कि बच्चा हर समय कुछ–न–कुछ नई बात ग्रहण करता रहता है। उसके हर अनुभव उसके विकास की अवस्था को थोड़ा–थोड़ा बदलते रहते हैं।

पहले ही कहा गया है कि बच्चे के कला–विकास की अवस्थाएँ हर समय बदलती रहती हैं। फिलहाल इन अवस्थाओं को बारीकी से न लेकर हम मुख्य–मुख्य अवस्थाओं का जिक्र करेंगे और बाद में इन 'अवस्थाओं की उप–अवस्थाओं के बारे में बारीकी से चर्चा करेंगे।

बच्चों के चित्रों के विकास–क्रम की मुख्य अवस्थाएं

1. कीरम–काँटे (गूदागादी)
2. प्रतीक काल
3. वास्तविकता–परिचय काल
4. किशोर–अवस्था और उसके बाद

ये चार अवस्थाएँ हैं, जो बच्चे के कला–अनुभव में आमतौर पर देखी जाती हैं। इनकी निश्चित उम्र कहना कठिन है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में और दूसरी अवस्था से तीसरी और चौथी अवस्था में बच्चा कब प्रवेश करेगा, यह निश्चित तौर पर कहा नहीं जा सकता; क्योंकि यह बच्चे के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। कोई बच्चा एक अवस्था में किसी उम्र में आता है और दूसरा किसी दूसरी उम्र में। यह भी नहीं कहा जा सकता कि एक अवस्था में रहने का समय सब बच्चों का एक जैसा ही होता है। हो सकता है कि एक बच्चा पहली अवस्था को कुछ हफ्तों में ही पार कर ले। कभी–कभी देखा गया है कि कुछ बच्चे महीनों तक, यहाँ तक कि सालो–साल तक पहली अवस्था में ही पड़े रहते है। इस विषय पर बारीकी से चर्चा करने से पहले इन चारों अवस्थाओं को थोड़ा–थोड़ा स्पष्ट कर दें।

1. कीरम–कांटे (गूदागादी) की अवस्था

बच्चा हाथ में पेंसिल पकड़ने लायक होने पर शुरू–शुरू में कागज पर लकीरें घसीटता है। ये लकीरें किसी वस्तुविशेष का चित्र नहीं होती। केवल साधन से परिचय और शारीरिक हलचल करना इस अवस्था में होता है। बच्चा बड़ों की तरह हाथ चलाने की कोशिश करता है (चित्र संख्या 1)

पहले कीरम-कांटे **चित्र संख्या 1** लड़का, उम्र 2.7
जब प्रारंभ में बालक हाथ में पेंसिल पकड़कर गोल-गोल आकार बनाने लगता है। यह विशेष तौर पर स्नायु-क्रिया (मस्क्युलर मूवमेंट) होती है।

2. प्रतीक–काल

हाथ चलाने की शुरूआत करने के बाद वह बाहर की दुनिया के आकारों से संबंध रखने वाले चित्र बनाना शुरू कर देता है। वह कुछ खास तरह के आकारों के द्वारा अपने अनुभवों को प्रकट करता है। ये आकार बच्चे के अपने अनुभव के द्वारा निर्मित, दिखनेवाली वस्तुओं के आकार होते है। किंतु वे वस्तु के वास्तविक आकार जैसे नहीं होते। इसमें बच्चा वस्तु को 'जैसा जानता है' या 'जैसा अनुभव करता है', वैसा चित्र बताता है; वस्तु 'जैसी दिखती है', वैसा नहीं। वह अपने मन में चीजों के 'प्रतीक' बना लेता है। उदाहरणार्थ, आदमी के चेहरे के लिए एक गोला और उसके अंदर तीन–चार छोटे–छोटे गोले (दो आंखें, एक नाक की लकीर या गोला और एक मुंह) यह उसका चेहरे का प्रतीक है इसी तरह हर चीज के प्रतीक नए–नए अनुभवों के आधार पर उसके दिमाग में बनते और बदलते रहते है। इस अवस्था के चित्र प्रतीक–प्रधान होते हैं और बच्चा अभी तक अंतर्मुखी होता है। (चित्र–संख्या 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14,16, 20, 21, 24, 31, 43, 44, 47, 50, और 55)

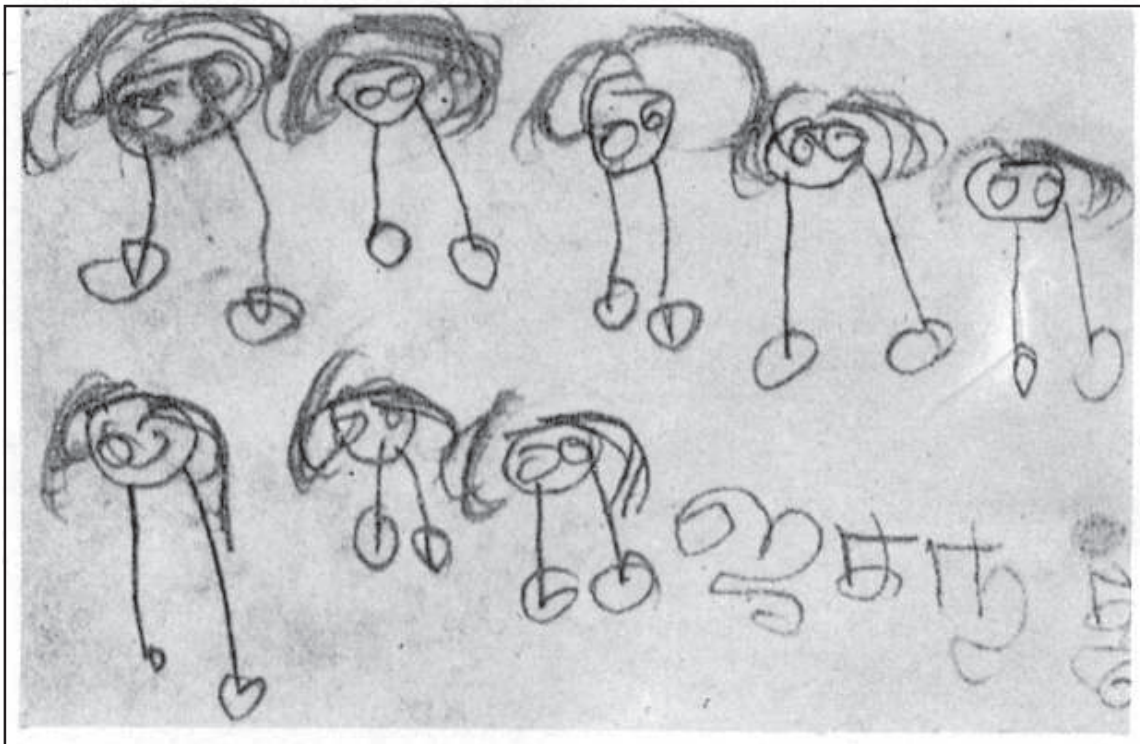

मनुष्य लड़का, उम्र 6.6

इस बालक ने इसी अवस्था में चित्रकला प्रारंभ की। तीन-चार दिनों के कला-वर्ग के बाद ही उसने उत्साह के साथ चित्र बनाना शुरू कर दिया। तमिलनाडु की इस शाला में चित्रकला करने का यह पहला ही मौका था।

वास्तविकता–परिचय काल (रिअलिज्म)

धीरे–धीरे ये प्रतीक भी बदलते हैं। एक चीज के बारे में जो आज अनुभव है, कल और अधिक हो सकता है और वह होता ही है। किसी वस्तु का कुछ हिस्सा आज अनुभव में आता है, तो कुछ और हिस्सा अगली बार नजर में पड़ता है। इस अनुभव का असर उस चीज के प्रतीक पर पड़ता है और वह विकसित होता है। उसमें कुछ और जुड़ जाता या बदल जाता है। उदाहरण के लिए, जैसे आदमी के चेहरे का पहला प्रतीक, जिसका जिक्र

अभी किया उसमें आगे चलकर नाक भी आ जाती है और कुछ अनुभव के बाद कान, बाल वगैरह भी। यहां तक कि ये आकार के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखने लगता है। इस प्रक्रिया के कारण वह वास्तविकता के बारे में सज्ञान होता जाता है। इसमें उसके चाक्षुष अनुभव काम करते हैं और उसके चित्र वास्तविकता–प्रधान बनने लगते हैं। इसीलिए इस काल को 'वास्तविकता–परिचय–काल' कहा गया है।

इस परिवर्तन का दूसरा कारण भी हो सकता है बच्चे का अभी तक का काल अंतर्मुखी था। यानी तब तक वह अपने अंदर ही वास करता है। बाहर की चीजों को भी इस समय अपना ही रूप और अर्थ देता है। यह अंतर्मुख (सब्जेक्टिव) हालत बाद में बदलती है और धीरे–धीरे बहिर्मुख होने लगती है। उसकी 'दुनिया' बदलने लगती है। वह बाहर की दुनिया के साथ अपना संबंध समझने लगता है। वह अपने–आप में से निकलना शुरू करता है। ऐसी अवस्था में उसका आत्म–प्रकटन भी बदलना चाहिए। बाह्म दुनिया की वास्तविकता का सामना करने के अनुभव से उसकी नजर भी वास्तविकता–प्रधान हो जाती है। उसकी वजह से उसके चित्र भी वास्तविक होने शुरू हो जाते हैं। इसकी चर्चा विस्तार से आगे चलकर करेंगे।

व्यक्ति के विकास की सीढ़ी को तय करना सिर्फ उसके व्यक्तिगत गुणों पर ही निर्भर नहीं होता और न केवल उसके व्यक्तिगत सामर्थ्य से ही यह तय कर सकते हैं कि उसका विकास अमुक प्रकार से होगा। व्यक्ति के विकास की सीढ़ी को बनाने में एक बड़ा हाथ समाज के ढांचे का भी होता है। समाज के विचारों और रुचि का असर व्यक्ति पर पड़ता है।

किशोर अवस्था – समाज की रीतियां और बच्चों की कला

बच्चा हर काम को बड़ों की तरह करने की कोशिश करता है। वह कभी यह महसूस नहीं करता कि वह बड़ों जैसा नहीं है। जैसा बड़ों को करते देखता है, वैसा ही वह भी करना चाहता है। कला में भी यही बात लागू होती है। एक उम्र तक तो वह बड़ों से इतना अलग तरह का होता है कि वह अपनेपन को काफी हद तक रख पाता है। लेकिन जब बड़ा होता जाता है, तो यह बात बदलती जाती है।

आज ही नहीं, बल्कि काफी काल से कला में समाज की साधारण रुचि का झुकाव वास्तविकता की तरफ ही है। कुछ कलाकारों को और विशेषज्ञों को छोड़कर अधिकतर व्यक्ति ऐसी ही तस्वीरें या मूर्ति पसंद करते हैं, जो वास्तविकता–प्रधान हों। घरों में, पुस्तकों में और सब जगह अधिकतर चित्र वास्तविक (रियलिस्टिक) ही रहते हैं। बच्चे अगर किसी को चित्र बनाते हुए भी देखते हैं तो वे भी अक्सर ऐसे ही चित्र बनानेवालों को देखते हैं, जो वास्तविक चित्र बनाते हों।

हरिन — लड़का, उम्र 14

बालक वास्तविकता के बारे में खूब सचेत हो गया। हरिन की टांगों के जोड़ आदि दिखाना चाहता है, पर उसमें गड़बड़ा जाता है। ड्राइंग में कमजोरी आने लगती है।

इसका असर यह होता है कि जब बच्चा कुछ संज्ञान होने लगता है, तो वह भी इसी प्रकार के चित्र बनाने की कोशिश करता है। उसके चित्र भी वास्तविक होने लगते हैं।

दूसरी बात यह है कि बच्चे की अपनी एक दुनिया अलग जरूर रहती है, लेकिन यह बात भूलने की नहीं है कि वह भी एक सामाजिक प्राणी है। वह कुछ अपने खुद के लिए करता है और कुछ अपने समाज के लिए भी। उसका यह पहलू, जो कि उसे दूसरों के लिए कुछ कराता है, यानी वह काम, जो वह 'दिखाने' के लिए करता है, उसे बड़ों जैसा करने में मदद करता है। इस कारण भी उसके चित्र एक उम्र आने पर वास्तविक होने लगते हैं।

ऐसी जगह, जहाँ कि समाज में अभी भी लोककला की परंपरा चली आ रही है और सचमुच समाज में उसका आदर होता है, वहाँ व्यक्ति का कला–विकास कैसा होता है, यह बात अध्ययन करने योग्य है। आदिवासी समाज में देखें। उनकी अपनी रूचि होती है। उनकी चित्रकला की परपंरा वास्तविक चित्रकला से कहीं अलग तरह की होती है। उसमें सयानों का काम भी इस प्रयत्न से दूर होता है कि चित्र में वास्तविक आकारों का उपयोग हो। यही कारण है कि उस समाज में बच्चों के चित्र भी किशोर–अवस्था में वास्तविकता लाने का प्रयत्न होता है, वह स्वाभाविक नहीं है। वह तो समाज का असर है, क्योंकि अगर यह स्वाभाविक होता, तो आदिवासी बच्चा भी किशोर–अवस्था में आने पर इस वास्तविकता की तरफ झुकता, चाहे बाद में समाज की रुचि और परंपरा के कारण फिर प्रतीक–प्रधान चित्र बनाना शुरू करता। किंतु वहां, आदिवासी समाज में, ऐसा नहीं होता और बच्चे के अपने चित्र आलंकारिक व प्रतीक–प्रधान होते हैं। बच्चे के स्वाभाविक चित्र कैसे होते हैं, यह तब देखने को मिलता है, जब कि बच्चा चित्र 'अपने लिए' बना रहा हो, किसी को दिखाने के लिए नहीं। तब उसके अंदर की चीज प्रकट होती है और वह उसके लिए 'कलात्मक–लीला', (एस्थेटिकल एक्टिविटी) उसका निर्माणकारक खेल होता है, नकल की प्रवृत्ति नहीं।

किशोर–अवस्था और उसके बाद

बच्चे की किशोर–अवस्था शिक्षाशास्त्रियों और कला–शिक्षकों के लिए अपने–आप में एक अलग ही विषय है। यह उम्र एक समस्या की उम्र कही गई है। कुछ विशेषज्ञ तो इसे 'संकट का समय' मानते हैं। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि बच्चे के लिए यह अवस्था एक नया अनुभव होता है। दुनिया बदल जाती है। हो सकता है कि इस मानसिक परिवर्तन का कारण उसका अपना शारीरिक विकास भी हो। आज तक शरीर, जो एक तरीके से बढ़ रहा था, उसमें तब्दीली होने लगती है। उसके लिए यह एक ऐसा अनुभव होता है, जो उसका मन अधिक–से–अधिक समय तक प्रकाशित नहीं करता। उसे इसका खुलासा नहीं मिलता। मन की अवस्था भी बदल जाती है। मन दूसरी बातों से हटकर इधर–उधर भटकने लगता है। एकाग्रता नहीं रहती। शारीरिक विकास तो एक ढंग से हो जाता है, उसकी शारीरिक प्रवृत्तियां भी सयानों की–सी होने लगती हैं। लेकिन मानस इतना विकसित अभी तक नहीं हो पाता, जिससे वह अपने–आपको ठीक–ठीक समझ सके।

वास्तविकता–परिचय–काल में बच्चा चीजों के वास्तविक आकार के बारे में सज्ञान होने लगता है और अब किशोर–अवस्था आने पर, जबकि उसके मन की अवस्था भी बदलने लगती है, उसके कला के काम पर अत्यंत महत्वपूर्ण असर पड़ता है। वास्तविकता के बारे में सचेत और संज्ञान होने के कारण उसे शीघ्र नैराश्य का अनुभव होता है। वह एक चित्र बनाने जाता है, किंतु चित्र उतना वास्तविक नहीं बनता, जितना उसे 'दिखता है' उसकी आंखें वस्तु में और उसके चित्र में कोई भी फर्क नहीं चाहतीं, लेकिन उसका हाथ हार मान जाता है। बच्चे की हिम्मत टूट जाती है और कला की तरफ से उसका दिल हटने लगता है।

अक्सर कला–शिक्षकों का कहना है कि यह अवस्था हर व्यक्ति के जीवन में आती ही है (कुछ ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर, जो जन्मजात कलाकार हों)। उनका कहना है कि यह विकास की एक प्राकृतिक सीढ़ी है। वे कहते हैं कि हर एक व्यक्ति को इस संकट–काल से गुजरना ही पड़ता है। इस अवस्था की चर्चा विस्तार से आगे चलकर करेंगे, अभी तो केवल यह कहना चाहते हैं कि आज की हालत में किशोर–अवस्था का यह संकट आएगा

ही। किंतु शिक्षा का ढांचा और उसके द्वारा समाज का संपूर्ण परिवर्तन जब तक नहीं होगा, तब तक केवल कलाशिक्षा ही नहीं, जीवन के सभी पहलू हमारे लिये समस्या बने रहेंगे।.....

इन अवस्थाओं के बारे में अक्सर निश्चित उम्र तय की जाती है। कुछ हद तक तो इन अवस्थाओं की उम्र इस तरह निश्चित करना ठीक होता है, लेकिन हर बच्चा दूसरे बच्चे से इतना अलग 'प्रकार' का होता है कि इन अवस्थाओं में साधारण कल्पना से कहीं अधिक अंतर हो सकता है। अनगिनत अनुभवों में से एक यहाँ बयान कर देने से आशा है, इस प्रश्न की कुछ सफाई हो जाएगी। बारह साल की एक लड़की ने जब चित्र बनाना शुरू किया, तो उसने ऐसे चित्र बनाए, जो आमतौर पर सात साल के बालक का काम कहा जाएगा। यह तो एक आत्यंतिक उदाहरण हुआ, लेकिन आमतौर पर दो–तीन साल का फर्क होना कोई आश्चर्य की बात नहीं होती।.

बच्चों का रंग–बोध

चार–पांच से लेकर आठ–नौ साल तक 'प्रतीक–काल' रहता है। इस अवस्था में बच्चा जो 'देखता है', उसका नहीं, बल्कि जो 'जानता है', उसका चित्र बनाता है।यह अवस्था बच्चे की सृजनात्मक प्रवृत्ति के लिए सबसे अधिक क्रियाशील होती है। प्रतीक और आकृति के आकार में बड़ा अंतर होता है। इसी तरह रंग के चुनाव में भी अपनी एक विशेषता रहती है। प्रकृति के रंगों से बच्चे के चित्र में उपयोग किए गए रंग बिल्कुल निराले हो सकते हैं। मेरे सामने इस उम्र के बच्चों के सैकड़ों चित्र हैं। इनमें से बहुत से ऐसे हैं, जिन्हें बच्चों की कला से अपरिचित व्यक्ति यह कहकर बगल कर देगा कि आदमी का मुंह क्या हरा होता है? क्या वह नीला होता है या छत नीली और आकाश पीला होता है ?

बच्चे वास्तविक रंगों की नकल नहीं करते, बल्कि अपने चुनाव के अनुसार रंगों का उपयोग करते हैं। यह गुण बुनियादी तौर पर सृजनात्मक वृत्ति का अंग होता है, नकल या हू–ब–हू बनाने की वृत्ति नही। यही स्वभाव ऊँची कला का भी होता है। अंजता, राजपूत आदि कला–शैलियों को अगर सरसरी नजर से भी देखा जाये, तो ध्यान में आ जाएगा कि रंगों का इस तरह का चुनाव बच्चों की कला में ही नहीं, बल्कि सभी कला शैलियों में पाया जाता है। आज जब कि साधारण व्यक्ति वास्तविकता–प्रधान कला मानकर, यूरोप की कला से परिचित है, उस कला का भी यही स्वभाव था। पंद्रहवीं शताब्दी में 'रेनेसां' के पहले यूरोप की ईसाई–कला में रंगों का चुनाव भी पूर्वी कलाओं की तरह का था। वहाँ वास्तविकतावाद 'रेनेसां' आने पर प्रारंभ हुआ। रंगों के इस तरह आलंकारिक चुनाव के पीछे अनुकरणात्मक नहीं, बल्कि सृजनात्मक वृत्ति होती है।

शुरू–शुरू में जब बच्चे को रंगों का डिब्बा मिलता है, तो वह उसे बड़ी रुचि के साथ देखता है और उसकी परीक्षा करता है। वह रंगों से शुरू–शुरू में जब चित्र बनाता है, तो उसका पूरा चित्र एक ही रंग की रेखाओं से बनता हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि जो भी रंग वह हाथ में लेता है, उससे वह इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे दूसरे रंग का खयाल भी नहीं रहता। यह भी हो सकता है कि रंग इस्तेमाल करने की उसकी वृत्ति के विकास के लिए कुछ समय की जरूरत होती है। उस समय उसे प्रत्येक रंग के साथ परिचय करने की जरूरत होती होगी। एकदम शुरू के दिनों में वह रंगों के आपसी संबंध के बारे में इसीलिये संज्ञान नहीं होता। यह अवस्था कुछ दिन तक चलती है फिर वह एक के बदले दो और फिर अधिक रंगों को इस्तेमाल करने लगता है। रंगों के पहले अनुभव में जो चुनाव बच्चा करता है, वह रंग के डिब्बे से करता है। बाद में चुनाव उसकी 'मानसिक चित्र–योजना' द्वारा निश्चित किया जाता है।

रंगों का पहला उपयोग केवल रेखा द्वारा ही होता है। मकान लाल है, तो वह लाल रेखाओं से बना मकान होगा। रंग भरने की अवस्था दूसरी है। बच्चा रंग भरकर जब चित्र बनाना शुरू करता है, तो रंगों से रेखाकार बनाकर उसमें रंग भरता है। जिस आकार में रंग भरा जायेगा, वह स्वाभाविक ही अधिक दिखेगा। इसलिये रंगीन रेखाओं की अवस्था और रंग भरने की अवस्था के बीच के काल में यह छोटा चित्रकार केवल उसी आकार में रंग भरता है, जिसे वह चित्र में अधिक अहमियत देना चाहता हो। अगर आदमी की कमीज नीली है और अगर वह नीली कमीज चित्र का मुख्य विषय है, तो हो सकता है कि बाकी चित्र तो रंगीन रेखाओं से बने और उसकी कमीज नीले रंग से भरकर बने।

छः साल की उर्वशी ने अपने चित्र में आदमी के बालों का रंग नीला बनाया, इस बात पर शिक्षक ने उसे दंडित किया और बालों में काला या सफेद रंग करने को कहा। उर्वशी के प्रति शिक्षक का यह व्यवहार सही है या गलत? विस्तार से कारण सहित बताइए।

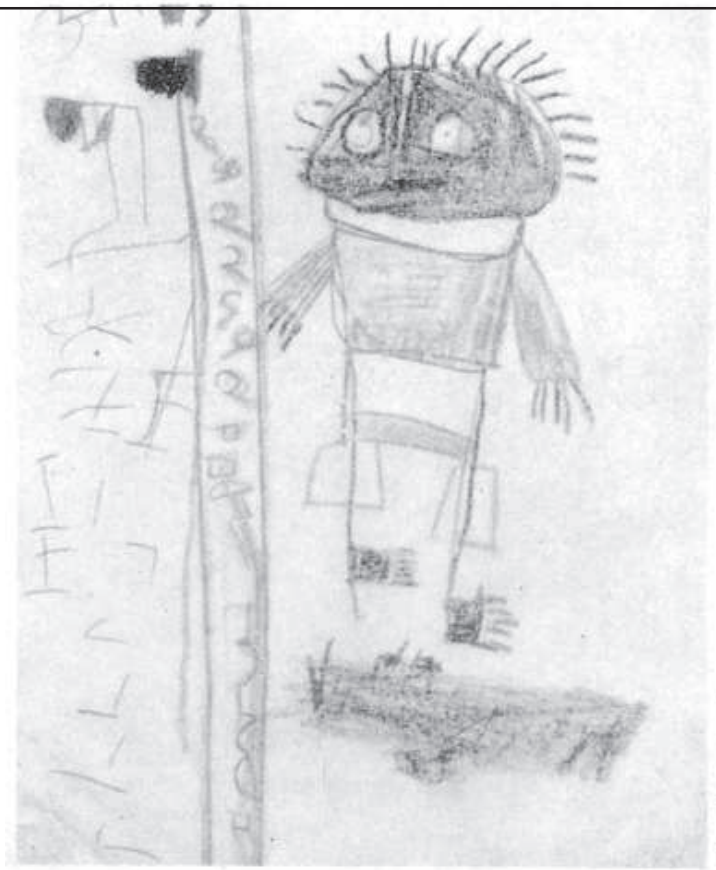

हरा कमीज लड़का, उम्र 6
बालक के मन पर हरे कमीज का विशेष प्रभाव हुआ था, इसलिये उसी पर उसका अधिक ध्यान रहा।

चित्र–व्यवस्था

प्रतीक अवस्था की चित्र–व्यवस्था के बारे में भी चर्चा करना जरूरी है। शुरू–शुरू के प्रतीक सरल होते हैं और चित्रों के विषय भी सरल होते हैं। प्रतीक–काल के आरंभ के चित्र अक्सर एक–दो सरल प्रतीकों द्वारा ही बनते हैं। अगर इस समय बच्चे को कागज और लेखनी देकर चित्र बनाएगा, उसमें यह जरूरी नहीं कि पूरे कागज की जगह का उपयोग हो। हां, आमतौर पर यह अवश्य देखा गया है कि उनका स्थान–निर्णय विशेष प्रकार का होता है। उसी कागज पर वह फिर और कुछ बना देता है। यह दूसरा चित्र

लड़का, उम्र 9.3 चित्र 18
लिखाई की तरह चित्र प्रारंभ करना, यह बालक के संकोच को प्रदर्शित करता है। इसका अर्थ यह है कि बालक को न तो 'देश' का भान ही है और नहीं ही उसका व्यक्तित्व खिल पाया है।

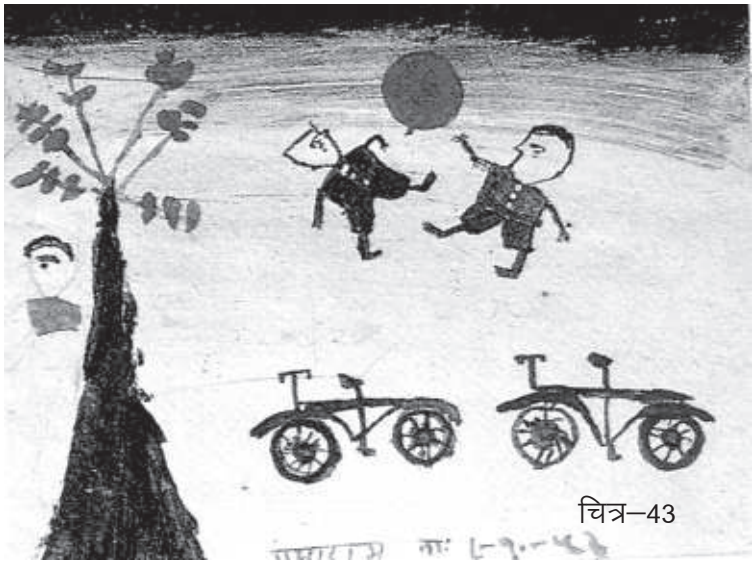

चित्र–43

पहले चित्र से सबंद्ध नहीं होता। इसी तरह इस अवस्था में बच्चे एक ही कागज पर कई 'चित्र' बना देते हैं। इनके इन चित्रों के बारे में यह कहना ठीक होगा कि एक कागज पर बने हुए चित्रों के अलग–अलग प्रतीकों में कोई विचार–समन्वय नहीं होता। विचार–समन्वय या विषय–समन्वय के अभाव के कारण चित्र में 'देश' (स्पेस) की भावना भी नहीं आती। जिस पट पर वे चित्र बने हैं, वह केवल कागज या ऐसी कोई चीज नहीं, बल्कि वह 'देश' है, इसका भान उन्हें नहीं होता।

सयानों को लिखते देखकर कुछ बच्चे चित्र भी उसकी तरह बनाना शुरू करते हैं। यानी कागज के बाएं, ऊपरवाले कोने से चित्र बनाना शुरू होता है और वे उसे उसी तरह बनाते हैं, जैसे बाएं से दाहिने सिरे की तरफ लिखा जाता है (चित्र संख्या 18)। इससे भी पता चलता है कि आरंभ में बच्चों को देश का भान नहीं होता। उस भान को पाने के लिए कुछ समय लगता है। शिक्षा–शास्त्रियों के कथनानुसार इस बोध के विकास के लिए कला–अनुभवों द्वारा बड़ी मदद मिलती है अगर कला–अनुभव न दिए जाएं, तो आमतौर पर यह भान देर से आयेगा। वे कहते हैं कि 'सेंस ऑफ परसेप्शन' के विकास के लिए कला–शिक्षा का बहुत महत्व हैं।

धीरे–धीरे बालक अपने प्रतीकों में समन्वय–निर्माण कर लेता है और उसके चित्र के सब प्रतीक किसी विचार (आइडिया) से संबद्ध होने लगते है। यह अवस्था पूरी विकसित होने पर चित्र में खींचे गये किसी भी आकार को अगर बच्चे से पूछें, तो वह उसे चित्र के विषय से कुछ–न–कुछ संबंध रखनेवाली चीज कह बतायेगा।

अब उसके चित्रों की पृष्ठिभूमि में भी रंग आने शुरू होते हैं। आदमी जमीन पर खड़ा है, तो जमीन भी रंगीन बनती है। यानी चित्रकार अब कागज की जगह का पूरा–पूरा उपयोग करता है अब उसके चित्र में वैचाारिक ऐक्य–यूनिटी इन आइडिया– (चित्र–संख्या 43) होता है। लेकिन देश–विन्यास (कम्पोजिशन) की दृष्टि से यह विकास कोई खास अहमियत का नहीं है। हां, किसी–किसी व्यक्तिगत उदाहरण में विचार–ऐक्य के विकास के द्वारा देश–विन्यास की शक्ति को भी मदद मिलती हैं जो बच्चे लिखने के तरीके से चित्र बनाना शुरू करते हैं, उन्हें खासतौर पर इससे लाभ होता है। क्योंकि जब एक कागज पर ऐसा चित्र बनाने की योजना होगी, जिसमें विचार का ऐक्य हो, तो उसकी स्थान–व्यवस्था की भी स्वाभाविक ही योजना बनेगी।

बच्चों में देश–विन्यास का बोध जन्मजात

आमतौर पर बच्चे के कला–धर्म में देश–विन्यास का संतुलन स्वाभाविक ही पाया जाता है। इस कथन का सबूत हम अपने कुछ प्रयोगों के आधार पर देंगे। मुझे बच्चों के चित्र देखकर हमेशा यह लगता था कि बच्चों को स्वाभाविक तौर पर स्थान–व्यवस्था का बोध (सेंस ऑफ कम्पोजिशन) होता है। रोज–रोज बच्चे जो दर्जनों चित्र बनाते रहे, उनमें से अधिकतर की स्थान–योजना संतुलित होती थी।.....

आइए करें–

अपने आसपास के कुछ बच्चों से चित्र बनवाइए. 3–4 साल के बच्चों और 8–9 साल के बच्चों के चित्रों की तुलना करके उनके देश–विन्यास या स्थान योजना के ज्ञान के बारे में अपने अवलोकन लिखिए.

तीसरी विमा और परिप्रेक्षण के बोध का विकास

प्रतीक–काल अवस्था के चित्र चूंकि चाक्षुष अनुभवों के नतीजे नहीं होते, उन्हें अगर 'तार्किक' कहा जाए, तो शायद ठीक होगा या फिर इन्हें 'यौक्तिक' भी कह सकते हैं।

बच्चे से अगर पूछें कि यह चीज तो ऐसी नहीं होती, जैसे तुमने बनाई, तो उसे वह तर्क द्वारा समझाने की कोशिश करेगा और कहेगा कि नहीं, वह तो ऐसी ही होती है। एक छह साल का बच्चा चित्र बना रहा था। उसने दो समानांतर रेखाएं खींची। वह थी उसकी सड़क। सड़क पर आदमी चल रहे थे। उसके पास बैठे हुए उसके मौसेरे भाई ने, जो पंद्रह वर्ष का था और दूसरे गांव से छुट्टी बिताने के लिए आया हुआ था, उससे पूछा : ''क्या चित्र बनाया ?'' छोटे भाई ने जवाब दिया : ''सड़क पर आदमी चल रहे हैं।'' यह सड़क पर चलने वाले आदमी उसने सड़क की दिशा में इस तरह बनाए कि मामूली तौर पर कहा जाएगा कि वह सड़क पर लेटे हुए हैं (चित्र–संख्या 39)। बड़ा भाई समझाने लगा : ''अरे, आदमी क्या सड़क पर लेटे हैं ? अगर वह सड़क पर चल रहे हैं, तो देखो, ऐसे बनाना चाहिए ।'' यह कहकर उसने सड़क के साथ समकोण बनाते हुए एक लकीर खींची। आदमी जब सड़क पर खड़ा होगा, तो स्वाभाविक ही सड़क पर समकोण बनाते हुए खड़ा होगा। बड़ा भाई जो कह रहा था, वह अपने कला–अनुभव के अभाव के कारण कह रहा था। लेकिन छोटा भाई अपने मन में स्पष्ट 'जानता', उसने यह युक्ति पेश की। यह बातचीत दोनों भाइयों के बीच अचानक ही हो गई थी। अक्सर बच्चे के सचेत मन में इस तरह का युक्तिवाद या तर्कवाद नहीं होता। यह युक्तिवाद की प्रक्रिया बालक के मन में न जानते हुए ही हो जाती है। इसलिए हम इन चित्रों को यौक्तिक या तर्कसंगत कह रहे हैं।

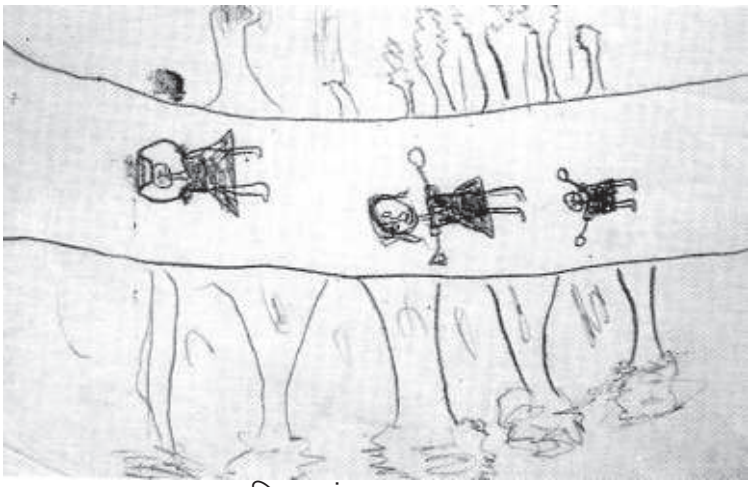

चित्र–संख्या 39

चित्र–20 कबड्डी

प्रतीक–काल के चित्र अगर यौक्तिक या तर्कसंगत होते हैं, तो वास्तविकता–परिचय–काल के चित्र चाक्षुष होते हैं। इन चित्रों पर चाक्षुष अनुभवों का प्रभाव होने लगता है।

आरंभ में केवल आकारों का स्वरूप वास्तविक होने लगता है। किंतु चित्र में गहराई का भान नहीं होता (चित्र–संख्या 28)।

वास्तविकता–परिचय–काल की यह पहली अवस्था है, जबकि बच्चे के चित्र में तीसरी विमा (डायमेंशन) का प्रवेश नहीं होता। पहले चित्र के आगे–पीछे की चीजें एक–दूसरे के ऊपर बनाना शुरू करता है। इस अवस्था के पहले अगर बड़ा पेड़ बनाया, तो उसके पीछे का आकाश पेड़ के पीछे नहीं, बल्कि पेड़ के ऊपर जो जगह कागज पर बची है या कोने में, जहाँ पेड़ नहीं है, वहाँ बनायेगा। चित्र की अलग–अलग चीजें आगे–पीछे हैं। इसकी ओर वह ध्यान नहीं देता। मकान के अंदर आदमी बैठा है, चीजें रखी हैं, यह सब अभी तक वैसे बनाता है, जैसे मकान के सामनेवाली दीवार काँच की या पारदर्शक हो (चित्र–संख्या 20)। ये सब चीजें एक मोटी अपारदर्शक दीवार के पीछे हैं, इस बात का उसके चित्र के लिए कोई महत्व नहीं होता। लेकिन चाक्षुश अनुभवों का असर पड़ना आरंभ होने के बाद उसे तीसरी विमा का भी ख्याल हो गया होता है।

पहले तो चीजों का आगे–पीछे रहना, एक–दूसरी चीजों की गहराई के हिसाब से उनके आगे–पीछे बनाना शुरू होता हैं फिर हर व्यक्तिगत वस्तु की लंबाई–चौड़ाई के अलावा उसकी मोटाई या गहराई पर भी ध्यान जाता है। उसके चित्रों में परिप्रेक्षण (पर्सपेक्टिव) का भी प्रवेश होने लगता है। जो मकान केवल सामने की दीवार बना देने से ही पूरा हो जाता था, अब चित्रकार को मकान की बगलवाली दीवार भी 'दिखने' लगती हैं। वह उस दीवार का दृश्य भी दिखाना चाहता है (चित्र–संख्या 31)। उसे, पास का आदमी या कोई भी चीज बड़ी और वही चीज दूर चले जाने पर छोटी दिखने लगती है, इसका सिद्धांत समझ में आने लगता है।

वास्तविकता–परिचय–काल का समय बारह–तेरह साल की उम्र तक रहता है। इस अवस्था का विशेष महत्व है इसमें बालक की कल्पना–शक्ति का प्राधान्य न रहकर उसकी विवेचनात्मक शक्ति का प्राधान्य रहता है। चाक्षुश अनुभवों का अधिक असर होने के कारण बारीकियों पर नजर पड़ती हे। इसी कारण वह अपने चित्र में भी उन बारीकियों को दिखाना चाहता है। उसकी पूरी दृष्टि ही चाक्षुष–प्रधान हो जाती है।

तीसरी विमा किसे कहा जाता है. इसका ज्ञान व कौशल आ जाने से चित्रों में क्या बदलाव आ जाता है– उदाहरण देते हुए समझाए.

कला का दमन–

बच्चों की कला की अवस्थाओं में यह आखिर की अवस्था है। यह मानना ठीक होगा कि वास्तविकता–परिचय–काल के आखिर का समय ऐसा काल है, जिसकी कला 'बच्चों की कला' नहीं कही जा सकती। इस अवस्था के आखिरी काल को कुछ विशेषज्ञ 'दमन–काल' (एज आफ रिप्रेशन) मानते हैं। अगर इस उम्र में भी कला–प्रवृत्ति जारी रहे, तो वह 'बच्चे की कला' की अवस्था से बदलकर 'सयानों की कला' बन जाएगी। 'दमन काल' इसे इसलिए कहा गया है कि यह ऐसी अवस्था है, जिसमें बच्चे की कुछ शक्तियों का दमन दूसरी कुछ शक्तियों द्वारा होता है। उसका वह विशेष प्रकार के मानसिक प्रतिबिंब अनुभव करने का गुण, जिसके द्वारा वह अपने काल्पनिक आकारों का निर्माण करता है, चाक्षुष अनुभवों और नई पाई हुई विवचेनात्मक दृष्टि दब जाती है।

बाल्यावस्था में आत्म–प्रकटन का मुख्य साधन यही आकारों के उपयोग द्वारा चित्र की भाषा थी। पहले कहा जा चुका है कि बच्चे की कला का एक बहुत बड़ा महत्व उसका एक संसूचन का माध्यम होना है। इसका एक कारण यह भी है कि जबान की भाषा पर तब तक बालक इतना काबू नहीं कर पाता; जैसा कि आत्म–प्रकटन उसे करना है, वह उसे इस भाषा में नहीं रख पाता। जबान की भाषा पर काबू पाने के लिए कुछ परिमाण में मानसिक क्रिया की जरूरत पड़ती है। आदिम मनुष्य के संसूचन का माध्यम भी कला–प्रवृत्तियाँ था। सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ उसने जबान की भाषा का विकास किया। इसी तरह एक व्यक्ति के जीवन में भी जबान की भाषा एक खास अवस्था पर पहुंचने पर ही आती है। तब तक उसका संसूचन का स्वाभाविक माध्यम होती हैं कला–प्रवृतियां, यानी आकार से संबंध रखनेवाली भाषाएं, चाहे वे चाक्षुष हों, चाहे श्रोत। प्रतीक–काल तक बालक के जीवन में आत्म–प्रकटन के माध्यम के तौर पर कलात्मक प्रवृत्तियों का जो महत्व था, वह उसके बाद नहीं रहता। जबान की भाषा, जो तब तक काफी काबू में आ जाती है, उसका स्थान ले लेती है।

बुद्धि का विकास भी कुछ हद तक इस दमन के लिए जिम्मेवार होता है। बालक पहले अनजाने (अन्कान्शस) सर्जन करने में आनंद लेता था। वह तरह–तरह की परी–परिंदों की कहानियों को सुनकर मोहित हो जाता था। अब चूंकि उसकी बुद्धि कहती है : 'यह तो ठीक नहीं, यह तो संभव नहीं', तो वह उस मजे को भूल जाता है। अपने चित्रों में प्रकृति के साथ आकारों की तुलना करता है और उनमें गलती महसूस करता है। वह उसके लिए निरुत्साहित करने वाला अनुभव होता हैं जिस काम को वह ठीक तरह से नहीं कर सकता, उससे उसका दिल हट जाता है।

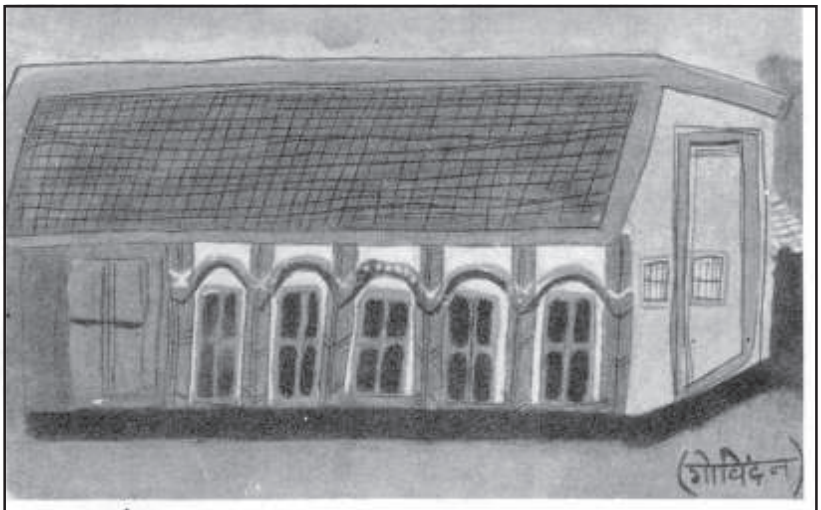

(तीसरी विमा का भान प्रारंभ) चित्र– 31 लड़का, उम्र 14
वास्तविकता-प्रधान अवस्था। परिप्रेक्षण का बोध आ गया।

सहल चित्र– 32 लड़की, उम्र 16
किशोर-अवस्था के संकोच के कारण चित्र में कमजोरी, परंतु चित्रकला चालू रहने के कारण रंग, देश-विन्यास आदि अच्छे स्तर के।

इस अवस्था में अलबत्ता कुछ ऐसे बालक होते हैं, जो अपनी कला–प्रवृत्तियों को चालू रखते हैं। इनका काम वास्तविकता की तरफ झुकाव रखते हुए होता है (चित्र–संख्या 32)। वे प्रकृति की आकृति को ठीक–ठीक उतारने में आनंद लेते हैं, लेकिन इस तरह के बच्चों की संख्या कम होती है। फिर भी जो होते हैं, उनके बारे में यह जानना जरूरी है कि वे एक खास 'मनोवैज्ञानिक प्रकार' (साइकॉलाजिकल टाइप) के होते है। उनकी कला–प्रवृत्ति अगर बाद में भी चालू रहे, और जैसा कि उनके 'प्रकार' की अपनी आवश्यकता होती है, उस तरह का प्रोत्साहन मिलता रहे, तो यह दमन–काल उनके विकास में बाधा नहीं देगा, हो सकता है, उन बच्चों में से कुछ बड़े होने पर सफल चित्रकार बनें। कला–प्रवृत्ति अगर चालू रहे और अगर वह पाठ्यक्रम का अंग बनकर रहे, तो वास्तविकता–परिचय–काल में काफी बच्चे ऐसे होंगे, जो चूंकि स्वतंत्र आत्म–प्रकटन नहीं कर पाते या उसमें संकोच अनुभव करते हैं, वे या तो नकल करना शुरू कर देंगे या फिर जॉमिट्रिकल डिजाइन बनाने में थोड़ी–बहुत रुचि लेने लगेंगे। यह उनकी कलात्मक, सृजनात्मक शक्ति के दब जाने के कारण होता है।

इस काल की चर्चा समाप्त करने के पहले एक बात और! बाल्यावस्था में बच्चा जो कुछ भी देखता, सुनता या अनुभव करता है, उसे वह आत्म–केंद्रित (सेल्फ सेंटर्ड) नजर से अपनाता है। उसे लगता है कि जो कुछ भी है, वह उसी के चारों ओर है और उसी के लिए है। यानी वह अपने–आप में ही वास करता है इसलिये जो कुछ भी अभी तक वह करता रहा, उससे पूरा–पूरा संतुष्ट होता था। उसका मापदंड भी अपने जगत् का ही था। अभी तक उसकी दृष्टि अंतर्मुखी थी। बारह साल की उम्र होने पर, जबकि वह बड़ों की दुनिया के प्रवेश–द्वार पर पहुंचता है, उसका अपना मापदंड काम नहीं करता। सयानों के जगत में काम करने के लिए उसे सयानों जैसा होना है, यह बात वह अंदर से महसूस करता है। इसलिए उसे बचपन की बातें दुहराने में संकोच होता है।

अभी तक बालक जो कुछ करता था, वह केवल अपने लिए ही। लेकिन जब वह समाज के बारे में संज्ञान होने लगता है, तब उसे काफी बातें अपने लिए ही न करके समाज के लिए भी करनी पड़ती है। बाहर के जगत के बारे में संज्ञान होने पर उसकी नजर बहिर्मुखी होने लगती है। आज के समाज के स्वरूप के कारण उसके साथ उसकी बचपन की कला–कृतियां मेल नहीं खाती। जब वह कुछ करता है, तो उसकी कोशिश यह होती है कि उसे बड़ों जैसा ही करे। समाज की साधारण रुचि कला में वास्तविकता–प्रधान है। इसलिए बच्चा भी उसी के मापदंड से अपने काम को देखता है। अभी तक वह जो कुछ करता आया, अब उसे वह करने में संकोच होता है। यही कारण है कि आमतौर पर बच्चे की कला–प्रवृत्ति आज की हालत में करीब–करीब बंद ही हो जाती है।

सारांश

1. बच्चों में कला के विकास की मुख्य अवस्थाएं हैं– कीरम काटे की अवस्थाएं प्रतीक का वास्तविकता परिचय काल और किशोरावस्था व उसके बाद का समय ; जिसमें उसे बच्चों की कला नहीं कहा जा सकता कोई बच्चा किस उम्र तक अवस्था में रहेगा यह निश्चित नहीं कहा जा सकता व्यक्गितगत गुणों के अलावा इसमें संस्कृति का भी असर जैसे कि आदिवासी समाज में लोकशैली के वर्चस्व के कारण बच्चे प्रतीक अवस्था से वास्तविकता आधारित कला के चरण में जाते ही नहीं हैं कीरम काटे बनाने के काल में 4 साल की उम्र बच्चे के लिए सामग्री से परिचय प्राप्त करना वह हाथ चलाना प्रमुख ध्येय रहता है. उसके बाद बाहरी दुनिया के आकरों को अपने मन में सोचता है वैसा किसी प्रतीक से दिखाने की कोशिश करता है. वह वास्तविकता के करीब दिखे यह उसका ध्येय नही होता 8–9 साल की उम्र के आसपास बच्चा अधिक बहिर्मुखी हो चलता और उसके चाक्षुष अनुभव भी बढ़ चुके होते है. वह अपनी आत्मकेंद्रित अवस्था से बाहर आते हुए बाहरी दुनिया से सम्बन्ध बनाता है और अधिक वास्तविक चित्रकारी करता है. किशोर अवस्था में वह भाषा वह विवेचनात्मक बुद्धि पर नियंत्रण पाते हुए उनको अपने आत्मप्रकटन का माध्यम बनाता है और अपने चित्रों में वास्तविकता से मेल रखने में हो रही कमियों के प्रति संवेदनशील हो जाता है तथा निराशा का अनुभव कर अपनी कला रूचियों का दमन करने लगता है.

2. रंग व स्थान की व्यवस्था में भी भिन्न–भिन्न चरण देखने को मिलते हैं. शुरू में बच्चे किसी भी रंग से मुग्ध होकर उसका हर कहीं उपयोग कर लेते हैं, पहले केवल आकार की रेखाएं रंग से बनाता है– फिर आगे जाकर जिस चीज को ज्यादा अहमियत दे रहा है उसके अन्दर रंग भरता है और बाद में जाकर वास्तविकता को दिखाने के लिए रंगों का चुन–चुनकर उपयोग करता है. इसी तरह देश विन्यास या स्थान की व्यवस्था के बोध में भी समय के साथ विकास होता है. शुरू में चित्र के विषय व प्रतीक सरल होते हैं ओर बच्चे एक ही कागज़ पर अलग–अलग असम्बद्ध चित्र बना देते हैं या कागज़ के एक कोने में ही चित्र बनाकर छोड़ देते हैं. आगे चलकर विषयों में विस्तार व अर्न्तसंबन्ध बढ़ता है, और कागज़ के देश का विन्यास सन्तुलित करके होने लगता है. 12–13

साल की उम्र में तीसरी विमा डाइमेंशन का बोध भी बढ़ता है और पास व दूर, आगे व पीछे के आकारों को कागज़ की स्पेस में कैसे व्यवस्थित करना है, यह कुशलता आ जाती है. कुछ प्रयोगों से यह भी प्रतीत होता है कि बच्चों में देश विन्यास का सन्तुलित बोध जन्म से ही होता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. अगर आपके सामने बच्चों के बनाए चित्रों को रखा जाए तो आप किन आधारों पर उन्हे अलग अलग अवस्थाओं में बांटेंगे? किन्हीं दो अवस्थाओं को बताओ।

2. निवेदिता और राजू बारह साल की उम्र तक चित्रों के द्वारा अपने–अपने अनुभवों को रूचिपूर्वक बताते थे परंतु धीरे धीरे राजू की इसमें रूचि कम होने लगी और वो अब पढ़ाई के दौरान ही जरूरत होने पर किताबों से नकल करके चित्र बनाता है जबकि निवेदिता का अभी भी इस क्षेत्र में झुकाव बना हुआ है। ऐसा किन कारणों से हुआ होगा? स्पष्ट कीजिए।

3. प्रतीक काल के चित्रों को यौक्तिकया तार्किक चित्र कहना किस अर्थ में सही है।

4. आठ–नौ साल तक के बच्चों के चित्रों को समझने में वयस्क क्यों दिक्कत महसूस करते है।

प्रोजेक्ट

ऐसे बच्चे जिनके शब्दों की भाषा अविकसित है पर फिर भी चित्रों के माध्यम से अपने अनुभवों और भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं,उनके बनाए हुए चित्रों को देखकर पहले आप अनुमान लगाइए कि ये चित्र उन्होने किसलिए व क्यों बनाए हैं। तत्पश्चात् बच्चों से भी इन पर चर्चा कीजिए। आपके अनुमान और बच्चों से की गई चर्चा में क्या समानता या असमानता आई है लिखिए।

4. बच्चों में चित्रकला का विकास

पठन सामग्री– 2

शिक्षा–पद्धति

देवी प्रसाद

''मुझे केवल एक बात कहनी है और वह यह कि हमेशा अपने सिद्धांत का उपदेश ही देते रहने की चेष्टा न करो, बल्कि करो यह कि प्रेम से अपने–आपको ही दे डालो।''

रवीन्द्रनाथ

उद्देश्य

• बच्चों को ऐसे साधन उपलब्ध करवाना जो उसे अपार संभावनाएं प्रदान करें।

• इस बात को समझना की बच्चों पर बड़ों द्वारा अपनी बात थोपी ना जाए बल्कि सिर्फ जरूरत भर का उचित मार्गदर्शन दिया जाए।

• बच्चों की कल्पना शक्ति को प्रोत्साहन देना।

• उनमें रंग भेद और आकार भेद की पहचान को विकसित करना।

• समूह में कार्य करने की क्षमता को विकसित करना।

दुनिया के कुछ देशों में बच्चों की कला विषय पर काफी काम किया जा रहा है। अब यह पूरी तरह से समझ लिया गया है कि **बच्चे में चित्र बनाने की प्रेरणा (उत्कंठा) जन्म से ही होती है**। जिस तरह आदिमानव की स्वाभाविक वृत्ति चट्टानों और गुफाओं की दीवारों पर चित्र आंकने की थी, उसी तरह हर बालक में भी यह एक आदिवृत्ति होती है। शिक्षक को इसी बुनियादी सत्य को समझते हुए बच्चों को कला–अनुभव देने की योजना बनानी चाहिए। ..

प्रारंभ कब करें? साधनों का प्रश्न

सबसे पहले तो यह जान लेना उचित होगा कि चित्रकला की प्रवृत्ति तभी से शुरू कर देनी चाहिए, जब से बालक पेंसिल या लेखनी द्वारा कीरम–काँटे बनाना शुरू कर दे। इस तरह कीरम–काँटे बनाना बच्चे के कला–अनुभवों में से सबसे पहला अनुभव होता है। वह उसकी पहली कड़ी होती है, जबकि बच्चा अपने साधनों से परिचय करता है। साधारण तौर पर शिक्षक यह समझते हैं चित्रकला का काम बच्चों को तभी देना चाहिये, जब कि उन्हें आकार और रंग का ज्ञान हो जाए। किंतु यह विचार अवैज्ञानिक है बाल स्वभाव के विरूद्ध भी। बच्चों को जगत से जो परिचय होता है, वह आकार और रंग द्वारा ही होता है। इसलिए **बच्चों को शुरू से ही चित्रकला के साधन मिलने चाहिए।** कहीं–कहीं तो शिक्षकों ने अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं। उन्होंने बच्चों को, जबकि वे पेंसिल या तुलिका अच्छी तरह पकड़ नहीं पाते, तभी से रंग की कटोरियां दीं और बड़े–बड़े कागज। बच्चों को रंग में हाथ डुबोकर कागज पर तरह–तरह के आकार ओर छंद आदि बनाने में आनंद आता

है। साथ ही साथ उनका स्नायु–विकास (मस्क्यूलर) और भाव–प्रकाशन होता है। आज यह पद्धति आमतौर पर प्रचलित हो गई है। कुछ लोग यह भी समझते हैं कि बच्चों को पहले पेंसिल से चित्र बनाना आना चाहिये और फिर पेस्टल रंग से और आखिर में पानी के और तेल के रंगों से। कुछ प्रत्यक्ष कार्य के बाद हमें इसका उल्टा ही अनुभव हुआ है। बच्चों की कल्पना में वास्तविक जगत् की बारीक बातें बारीक बनकर नहीं आतीं, किसी आकार की बाराकी में वे नहीं जाते। पेंसिल की बारीक नोक उन्हें एक सीमा में बांध देती है। बालक क्या कभी सीमा–बंधन चाहेगा? उसका तो स्वच्छंद विचरण करने का स्वभाव होता है, इसलिए उसे ऐसे साधन चाहिए, जो उसे असीम संभावनाएं प्रदान करें। पेस्टल रंग भी इतना चूरा–चूरा हो जानेवाला और कागज से उठ जानेवाला होता है कि बालक को कुछ अनुभव के बाद उससे अरुचि पैदा हो जाती है। **हमने देखा कि ब्रश बच्चों को बड़े अच्छे लगते हैं। उनसे बारीक लकीर, मोटा धब्बा, हलका और गहरा रंग, भरट रंग आदि सब प्रकार का काम हो सकता है। ऐसे ही क्रेऑन, जो मोम के होते हैं और जिनसे बना हुआ चित्र उठता नहीं है और जो आसानी से हल्के और गहरे रंग के रूप में मिल सकते हैं, बच्चों को खूब पसंद होते हैं।** आत्म–प्रकटन के साधन जब बच्चों के अनुकूल और रुचिकर होंगे, तभी आत्म–प्रकटन आनंदमय होगा और उसका उद्देश्य पूरा हो सकेगा।

असल बात यह है कि साधन और माध्यम के चुनाव में व्यक्ति का स्वभाव काम करता है। किसी को हो सकता है, क्रेऑन से काम करना अच्छा लगे और किसी को पानी के रंगों से। ऐसे बालक भी होते हैं, जो केवल पेंसिल ही लेकर चित्र बनाना पसंद करते हैं। साथ ही वातावरण और परंपरा का भी असर होता है। बच्चों की जिस टोली में शुरू में पानी के रंगों का इस्तेमाल नहीं किया गया है, उसे आठ–नौ वर्ष की आयु में पानी के रंग दिये जाए, तो कुछ देर में हो सकता है कि उनमें से कुछ बच्चों की हिम्मत टूट जाय, तो हमें ताज्जुब नहीं होगा। इसका कारण यह है कि पानी के रंग तरल होते हैं और अगर ठीक तरह ब्रश में न लिये जाए, तो कागज पर बहने लगते हैं। एक बार लगाने के बाद दूसरी बार लगाने के लिए अच्छा तभी होता है, जबकि पहला स्तर सूख जाए, नहीं तो धब्बे पड़ जाते हैं। चूँकि इन बच्चों को शुरू से ही इस माध्यम का परिचय नहीं हुआ, इसलिये अब आरंभ करते समय संभालना मुश्किल हो जाता है और वे हिम्मत हार जाते हैं। वैसे तो कुछ समझने और स्वयं अनुभव पाने के बाद परिस्थिति ठीक हो जाती है, किंतु हमने यह भी पाया है कि एकआध बच्चा आखिर तक पानी के रंगों से डरता रहा। इसलिए **यह जरूरी है कि बालकों को आंरभ से ही तरह–तरह के साधनों और माध्यमों से परिचय रहे और उन्हें वे हर समय उपलब्ध हों।**

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक होगा कि क्या आम शाला में इतने प्रकार के साधन, माध्यम आदि जुटाना आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक होगा? बच्चों की कला–प्रवृतियों के लिए जो सामान लगता है, वह तो सरलता से संग्रह किया या बना लिया जा सकता है। अगर शिक्षक उत्साही और कल्पनाशील होगा, तो उसे कम–से–कम खर्च में अनेक प्रकार के साधन उपलब्ध हो सकते हैं। गेरू, पीली मिट्टी, हरे पत्थर आदि से रंग बनाना, धुएँ से काला और नील का नीला रंग तैयार कर लेना कोई मुश्किल बात नहीं है। अम्बाड़ी, सन आदि के रेशों से, माचिस की तीली/बाँस की बारीक काड़ी में रूई लपेटकर बहुत सुंदर ब्रश बन जाते हैं। खजूर की टहनी को एक तरफ कूटकर मोटा काम करने के लिए काफी अच्छा ब्रश बन जाता है। इस तरह का काम एक उत्साही शिक्षक के लिए कुछ कठिन नहीं है।

अभ्यास

प्रश्न–1 स्कूलों में अक्सर ही यह देखने में आता है कि जब भी बच्चों को चित्र बनाने को कहा जाता है तो अधिकांश बच्चे स्केल और पेंसिल का उपयोग पहले करते हैं, रंगों का बाद में। आप को ये सही लगता है या गलत? कारण सहित बताइए।

प्रश्न– 2 आपके स्कूल में कला कारीगरी के साधनों के लिए राशि नही है तो आप किस प्रकार से इन साधनों को इकट्ठा करेंगे?

मार्गदर्शन

हमारे देश में अभी तक बच्चों की कला –यह नाम कम शिक्षक ही जानते हैं। जब कभी ऐसे शिक्षक हमारे बच्चों के कला–वर्ग, कला–भवन में आते हैं, तो अक्सर वे यही सवाल पूछते हैं– बच्चे जो चित्र या मूर्ति बना रहे हैं, क्या वह आपके कहे अनुसार कर रहे हैं? इसका उत्तर अस्सी नब्बे मौकों पर नहीं होगा। यही उत्तर शत–प्रतिशत मौकों पर नहीं होगा, इसका कारण समझना चाहिए।

हमने बच्चों की स्वाभाविक कला–सीढ़ी की विस्तृत चर्चा करते समय देखा है कि उनका स्वाभाविक ही विकास होता रहता है। बच्चा दो–ढाई वर्ष की उम्र में गोल–गोल आकारों जैसे कीरम–काँटे खींचता है और 12–13 वर्ष की अवस्था में आकर बाकायदा ऐसे चित्र बनाने लगता है, जो सयानों के काम जैसे दिखने लगें। **अगर बच्चे को उचित वातावरण मिले और अपनी इस कला–सीढ़ी पर उसे स्वाभाविक तौर पर चढ़ने का मौका मिले, तो बिना किसी के कुछ सुझाए ही उसका कला–विकास उसकी अपनी पहुंच तक हो जाएगा।** किंतु इतना आदर्श वातावरण और खासतौर पर ऐसा सामाजिक मानस मिलना संभव नहीं है। इसलिये कभी–कभी कुछ मदद और मार्गदर्शन के तौर पर शिक्षक को सुझाव आदि देने पड़ते हैं और वही यह 10–20 प्रतिशत मौकों पर होता है, जब कि ऊपर जिक्र किये गए प्रश्न का उत्तर नहीं में होगा। किंतु वह हां में तो होगा ही नहीं। क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित होगा, अगर मैं बालक को ऐसा चित्र बनाओ कहूँ तो।

बच्चे स्वयं–प्रेरित होकर चित्रकला जैसी प्रवृत्ति में पड़ते हैं, यह सामान्य तौर पर मानी हुई बात है। किंतु हमने यह भी देखा है कि घर या शाला का वातावरण के ऊपर यह प्रेरणा निर्भर होती है। अगर हम यह मान लें कि शाला का वातावरण इस प्रेरणा को देने के लिए अनुकूल है, तो अनुभव यह आएगा कि अधिकतर बच्चे जब चित्रकला करने के लिए आएंगे, तो उनके मन में पहले से ही कुछ योजना रहेगी। वे किस प्रवृत्ति में लगेंगे–चित्र बनाना, मिट्टी की मूर्ति या बर्तन, अल्पना आदि – यह उनके मन में पहले से ही ठीक होगा और क्या चित्र बनाना है, यह भी। हो सकता है कि हठात् अगर आपने पूछा, तो हर बच्चा यह शब्दों में न बता पाए कि क्या चित्र बनाएगा किंतु जब साधन लेकर बैठेगा, तो सूक्ष्म निरीक्षण करने पर पता चलेगा कि वह बिना किसी सचेत–प्रयास के चित्र बनाना शुरू कर देता है। इसका कारण यह है कि उसे आमतौर पर जो बातें आत्म–प्रकटन की प्रेरणा पाने के लिए आवश्यक हैं, उस वातावरण में मिल रही हैं। यानी उसे नित्य नए–नए अनुभव और भरपूर प्रोत्साहन वातावरण द्वारा मिल रहा है।

कभी–कभी कुछ ऐसे मौके आते हैं, जब कुछ कारणों से बालक अनुकूल वातावरण होते हुए भी कुछ कर नहीं पाता। उसे कुछ सूझता नहीं। सच बात तो यह है कि सचमुच अनुकूल वातावरण आज की हालत में हो नहीं सकता। घर की हालत भी प्रोत्साहन देने वाली हो और शाला की भी वैसी हो, तो भी बाहरी समाज की परिस्थिति के कारण बालक के मन में गांठ बैठ सकती है। कई जन्मजात कारण भी हो सकते हैं, जो हर व्यक्ति की संभावनाओं की सीमा को निश्चित करते हैं। इन बातों के कारण **कुछ बालक ऐसी परिस्थिति में पड़ जाते हैं कि उन्हें कुछ सूझता नहीं। ऐसी हालत में जरूरी है कि परिस्थिति का निदान (डायग्नोसिस) किया जाय। सबसे मुख्य कारण तो पहले कह दिया कि नये अनुभवों का अभाव आत्म–प्रकटन के प्रवाह को रोक देता है। दूसरा कारण न्यूनता का भाव (इन्फीरियारिटी) हो सकता है।** कुछ कारणों से–जैसे उचित प्रोत्साहन की कमी, अनुचित समालोचना, खुद की कमजोरी आदि के कारण–आत्म प्रकटन करने में संकोच हो जाता है। खासतौर पर आठ–नौ साल की उम्र के बाद यह बहुत हो सकता है। इसका इलाज

यही हो सकता है कि **शिक्षक उसे हमेशा उत्साहित करता रहे और कमजोरी के मौके पर उसका सहारा बने।** प्रयत्न यह हो कि बालक का न्यूनता का भाव निकल जाय। जहां तक बालक की सीमा है, वहां तक उसे पहुंचाने की जिम्मेवारी शिक्षक और वातावरण की है।

अभ्यास

प्रश्न– 3 क्या बच्चों को पहले से बताना चाहिए की वो क्या चित्र बनाएं ? स्पष्ट किजिए।

प्रश्न– 4 बच्चे अपने मन से चित्र बना पाएं, इसके लिए उन्हे किस तरह का माहौल देने की जरूरत है? उचित माहौल देने के बाद भी कुछ बच्चे चित्र नहीं बना पाते इसके क्या कारण हो सकते हैं?

प्रारंभ किया चित्र पूरा किया ही जाए

मार्गदर्शन या सिखाने की जो अत्यंत आवश्यक बातें हैं, उनमें से एक तो यह है कि **बालकों को जो भी काम वे हाथ में लें, उसे पूरा करने की आदत डालनी चाहिये।** छोटी उम्र में बालक एक ही बैठक में चित्र पूरा कर देता है। पूरा हुआ या नहीं, इसका निर्णय भी वह स्वयं करता है। कभी चित्र दो मिनट में भी पूरा हो जाता है और कभी एक घंटे तक जमकर भी बालक उसे पूरा कर देता है। परंतु कभी–कभी ऐसे मौके आते हैं, जिनके कारण एक बैठक में चित्र पूरा नहीं हो पाता। या तो वह चित्र इस प्रकार का होता है, जिसमें काम अधिक हो और या किसी दूसरे कारणवश बालक को बीच में उठ जाना पड़ सकता है। शिक्षक का फर्ज है कि वह बालक से दूसरा चित्र बनाने के पहले अपूर्ण चित्र को पूरा करा ले इससे जिस मानसिक ट्रेनिंग की व्यक्ति के विकास करने के लिए आवश्यकता है, वह होगी। हां, इस नियम को इतना कठोर न बनाया जाए कि बालक को नए चित्र बनाने की तीव्र प्रेरणा हो रही हो और शिक्षक उससे कहे कि नहीं, तुम्हें रंग तभी मिलेगा, जबकि पहला चित्र पूरा करोगे। **इन बातों का निर्णय शिक्षक को समझ–बूझ कर करना चाहिए।**

साधनों को स्वच्छ रखें

एक बात और, जिस पर शिक्षक का ध्यान सतत् रहना चाहिए। वह यह है कि **बालकों को रंग, कूची आदि साधनों को गंदगी के साथ इस्तेमाल करने से रोके।** रंग आदि स्वतंत्रता के साथ इस्तेमाल किए जाएँ, परंतु बालक उनको सफाई से इस्तेमाल करे। रंगों को भी जब आपस में मिलाना हो, तो अलग प्लेट पर मिलाए। रंगों की कटोरियों में रंग आपस में मिलकर अपनी शुद्धता खो बैठते हैं। एक रंग का ब्रश बिना साफ किए दूसरे रंग में न डाला जाए। पानी के बर्तन को साफ रखें, पानी बार–बार बदलते रहें। हाथ बिलकुल साफ रहें। जिस बोर्ड पर रखकर चित्र बना रहे हों, वह साफ हो। **सफाई के इस पहलू पर पूरा–पूरा ध्यान रखा जाएगा, तो केवल चित्र ही साफ नहीं बनेंगे, बालक के हृदय में सफाई और सौंदर्य का बोध गहराई तक प्रवेश करेगा।**

केवल चित्र–कला ही नहीं, सभी कामों में कुछ सिद्धांतों का पालन होना आवश्यक होता है। **चित्र बनाते समय बालक सीधे बैठें।** इसमें स्वास्थ्य की दृष्टि तो है ही, कला–प्रवृत्ति में दक्षता हासिल करने के लिए वह जरूरी है। अगर सरल आसन में बैठेंगे, तो शरीर स्वयं संभालेगा और हाथ कंधों से लेकर उंगलियों तक स्वतंत्र रहेगा, जो चित्रकला के लिए अत्यंत आवश्यक है। **हाथ को पूरा खोलकर मुक्त भाव से चित्रण करना चाहिए।** इसमें सारा शरीर काम करता है। हाथ खुलता है, मन स्वच्छंदता से काम करता है।

बैठने का ढंग

वर्ग के बैठने के बारे में भी कुछ सोच लेना चाहिए। आमतौर पर बालक स्वतंत्र आत्म–प्रकटन ही करेंगे। ऐसी हालत में उन्हें पास–पास न बैठाकर अलग–अलग बैठाना अच्छा है। जहाँ कहीं भी–निश्चित क्षेत्र में– बैठने की छूट देना उचित है। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि बालक बेढंगे तौर पर तो नहीं बैठे हैं। इस ओर ध्यान रखना शिक्षक का काम है। बैठने की चर्चा करते समय प्रकाश की आवश्यकता पर ध्यान देना होगा। **बालक जहाँ भी बैठें, उनकी बायीं ओर से प्रकाश आना चाहिए। प्रकाश सामने से या पीछे से नहीं आना चाहिए।** अगर बालक बाएँ हाथ से काम करनेवाला है, तो प्रकाश दाहिनी बाजू से आना चाहिए। ऊपर से भी प्रकाश आना अच्छा होता है। अगर गलत जगह से प्रकाश आएगा, तो चित्र पर छाया पड़ेगी और बालक की आँखें खराब होंगी।

बच्चों को पेंसिल या कूँची को एकदम नोक के पास से पकड़ने की आदत पड़ जाती है। शिक्षक भी उस पर ध्यान नहीं देते। इसका असर यह होता है कि ड्रांइग करते समय हाथ नहीं खुलता, चित्र छोटे–छोटे, छोटी–छोटी लकीरों वाले हो जाते हैं। अगर बिलकुल ही बारीक से काम न हो रहा हो, तो **पेंसिल कम–से–कम डेढ़ इंच दूर से पकड़नी चाहिए।** अगर स्केचिंग कर रहे हों, तो तीन–चार इंच के फासले पर पकड़ी जानी चाहिए।

चित्र–कला की टेक्नीक सिखानी नहीं है, किंतु साधनों का ठीक उपयोग कैसे करना चाहिए, इसके बारे में बालकों को आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन करना चाहिए जिस प्रकार प्रतिभाशाली कलाकार अपनी टेक्नीक अपने–आप निर्माण करता है, उसी प्रकार हर बालक–कलाकार भी अपनी टेक्नीक स्वयं तैयार करेगा।

अभ्यास

प्रश्न–5. कक्षा 4 में चित्र बनाने का काम चल रहा है,बच्चे बहुत पास पास बैठे हैं रंग और रंग लगे ब्रश जगह जगह बिखरे हुए हैं, बच्चे एक रंग में डूबे ब्रश को बिना धोए दूसरे रंगों में डाल रहे हैं व कुछ बच्चे दूसरों के चित्रों की नकल कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिती में आप क्या करेंगे ? उन्हें किस प्रकार का मार्गदर्शन देंगे?

आकार–भेद और रंग–भेद का बोध

अलग–अलग आकारों का आपस में फर्क, रंगों के फर्क का ज्ञान वैसे तो कला–प्रवृत्ति करते–करते आ ही जाता है, परंतु उसका अभ्यास सात और आठ साल की उम्र में योजनापूर्वक प्रारंभ करना अच्छा होता है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इससे बालक के आत्म–प्रकटन पर बुरा असर न पड़े। ठीक ढंग से दिया गया इस प्रकार का ज्ञान चित्र–कला, मूर्ति–कला और दस्तकारियों द्वारा किए गए आत्म–प्रकटन को मदद ही पहुंचायेगा।

आम के पत्ते में और केले के पत्ते में क्या भेद है? आकाश के रंग में और जमीन के रंग में क्या फर्क है? ये प्रश्न वैसे तो मोटे दिखते हैं, परंतु इनका उत्तर बालक ठीक समझा सके और खासतौर पर शब्दों की भाषा की अपेक्षा आकार की भाषा में प्रकट कर सके, तो वह ठीक शिक्षा होगी। आम के पत्ते और अमरूद के पत्ते के आकारों में क्या फर्क है? अमरूद के पत्ते के आकार में और सीताफल के पत्ते के आकारों में में क्या फर्क है? पीपल के पत्ते के रंग में और बेल के पत्ते के रंग का फर्क, तोते का हरा और बेल के पत्ते का हरा, यह सब उसी आकार–भेद और रंग–भेद का सूक्ष्म ज्ञान है, जो धीरे–धीरे बालक को कभी तो विशेष पद्धति द्वारा और कभी स्वाभाविक कला–प्रवृत्तियों के दौरान दिया जाना चाहिए।

इसी सिलसिले में एक बात और कहना आवश्यक है। प्रकृति के साथ बंधुत्व प्रकृति के सौंदर्य के साथ संपर्क की बात पहले अध्याय में कही गई है। कला–शिक्षा स्वयं उस कार्य को तो करती है, परंतु उसका सचेष्ट कार्यक्रम भी हमें बनाना चाहिए। सौभाग्य से भारतीय परंपरा में अनेक बातें ऐसी हैं, जिन्हें अगर समझकर अपना लिया जाए, तो बहुत–सी मंजिल तय हो जाएगी।

रंगों के नाम और सादृश्य

भारतीय चित्र–कला के शास्त्र में षडंगों' (छह अंगों) का जिक्र है। इनमें से एक अंग है सादृश्य। किसी की आँख सुंदर है, तो उसके साथ उसी आकार से सादृश्य रखनेवाले आकार की सुंदरता भी जोड़ दी जाय, तो आँख दुगुनी सुंदर हो जायेगी। मीनाक्षी–मछली के आकार वाली आँख। शरीर का धड़वाला हिस्सा गोमुखी। इस प्रकार जिस तरह भी हो सके, जिन रास्तों से भी हो सके, प्रकृति के साथ संपर्क और एकात्म–बोध करने का यह एक मार्ग है।

इसी तरह रंगों के नाम की बात है। मैं विलायती नामों को समझ ही नहीं सकता। न्यू ब्लू कहने से केवल वही समझेगा, जिसने रंग इस्तेमाल किया होगा। परंतु आसमानी नीला, तोतिया हरा सुनने से फौरन विशाल आकाश, सुंदर तोता पक्षी सामने खिलवाड़ करने लगते हैं। **रंगों के नाम रखने की पद्धति रंग में प्राण डाल देती है। प्रकृति आत्मसात हो जाती है। यह पद्धति हमें शालाओं में अपनानी चाहिए।** सादृश्य का यह पहलू शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बन जाना चाहिए। यह कला–शिक्षा का काम है।

रूपभेदः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्रं षडंगकम्।।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तक *भारत शिल्पेर षडंग* के अनुसार इन छह अंगों का अर्थ इस प्रकार हैः

1. **रूपभेदाः** रूप का ज्ञान, रूप–रूप में विभन्नता, रूप का मर्मभेद या रहस्य–उद्‌घाटन।
2. **प्रमाणानिः** वस्तुरूप के संबंध में प्रमा और भ्रमविहीन ज्ञानलाभ। वस्तु का नैकट्य, दूरत्व और उसका दैर्ध्य, प्रस्थ इत्यादि का मान–परिमाण।
3. **भावः** आकृति पर भाावनाओं की प्रतिक्रिया।
4. **लावण्ययोजनमः** लावण्य का निर्माण। रूप का कलात्मक प्रतिरूपण।
5. **सादृश्यमः** किसी एक रूप के भाव को अन्य किसी रूप की सहायता से हमारे मन में उद्रेक कर देना।
6. **वर्णिकाभंगः** तरह–तरह के वर्णों को उपयोग करने की पद्धति, तूलिका को चलाने की भाव–भंगी।

वर्गीकरण

यह प्रश्न कि किस–किस उम्र में बालकों के साथ काम करने दिया जा सकता है, महत्वपूर्ण है। **सामान्य तौर पर अलग–अलग अवस्था वाले बालकों की अलग–अलग टोलियां बनाना उचित होता है, क्योंकि हम चाहते हैं कि बालकों पर उचित समय से पहले सयानों का असर न पड़े।** इसलिये किशोर–अवस्था में प्रवेश करनेवाली टोली को प्रतीक–प्रधान अवस्थावाली टोली से अलग काम देना उचित है। आमतौर पर अवस्था का ख्याल रखना चाहिये। हालांकि पूरी शाला के सामूहिक प्रोजेक्टों में सभी साथ काम करें, यह वांछनीय है। ऐसे मौकों पर कार्य–विविधता के कारण वर्गीकरण पर अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं।

एक ही चित्र बार–बार

एक समस्या आमतौर पर शिक्षकों के सामने आती है। देखा जाता है कि कुछ बालक एक ही चित्र को हमेशा बनाते रहते हैं। जब कभी भी वे कला–वर्ग में आते हैं, तो वही एक ही चित्र बनाया और चले गए। इस समस्या को हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं तो मानता हूँ कि कला–प्रवृति बालक की समग्र शिक्षा का दर्पण होती है। कुछ ऐसी बातें होती हैं, जो दूसरे समय पता नही चलतीं। जिस तरह रोग का निदान किया जाता है, उसी प्रकार कला–प्रवृति का भी निदानात्मक–डायग्नॉस्टिक पहलू होता है। बच्चा हमेशा जो एक ही चित्र बनाता है, इसका क्या कारण है? नया चित्र न बनाना जरूर किसी बीमारी का लक्षण है। यह बीमारी क्या हो सकती है? बच्चे के मन में नई बातें प्रवेश नहीं कर रही हैं। जो शिक्षा उसको मिल रही है, वह ऊपर–ही–ऊपर रह जाती है। उसका उसे आंतरिक स्पर्श नहीं होता। **शिक्षक को अगर इस बात का बोध हो जाए कि बालक एक ही चित्र बार–बार इसलिए बना रहा है कि उसकी पूरी शिक्षा में कुछ दोष है, उसे जो शिक्षा दी जा रही है, वह उसे स्पर्श नहीं कर रही है, तो वह (शिक्षक) अपनी शिक्षा पद्धति में ही तबदीली करेगा।**

मुझे एक तरह के अनुभव अनेक बार आए हैं। एक बार एक बालक एक ही चित्र को करीब–करीब आठ माह तक बनाता रहा। एक घर और उसके सामने एक मुड़ता हुआ रास्ता। कभी–कभी रास्ते पर एक लड़का भी आ जाया करता था। ऊपर आकाश! मैंने अपना एक इलाज उस पर भी आजमाया। चित्रकला–वर्ग में आने पर उससे कई बार कहता तुम आज ऐसा चित्र बनाओ, जो तुमने आज तक कभी भी न बनाया हो। आमतौर पर बालकों को ऐसा वाक्य कुछ चिंतन करने के रास्ते पर लगा देता है। किंतु इस बार मैं फेल हुआ। फिर यह कहकर कोशिश की आज तुम अपनी चित्रकला ही को पूरा–पूरा देखो और मुझे बताओ कि आज तक तुमने कितने प्रकार के चित्र बनाए ? मैंने बार–बार उसके पास बैठकर इस बात को समझने की कोशिश की कि वह हमेशा एक ही प्रकार के चित्र बनाता है। मैंने कहा आज कुछ नया बनाओ। इसमें भी मैं फेल हुआ।

बगीचे में गोशाला के चारे के लिए सूर्यमुखी का खेत लगाया गया था। पूरा खेत फूलों से भरा था। मुझे सूझा कि जब यह सूर्य जैसा चमकता हुआ खेत मुझे स्पर्श कर रहा है, तो देखूं, बच्चों पर इसका क्या असर पड़ता है। अगले दिन वही टोली आई, जिसमें यह बच्चा था, जिसका जिक्र हम कर रहे हैं। वर्ग में आते ही सैर के लिए जाने का सुझाव जैसे मैंने रखा, सब खुश हो गए। एक बच्चे ने कहा हम अपने रंग और बही भी लेते चलेंगे। मैंने कहा नहीं, जो कुछ चित्र बनाना है, आकर बनाएंगे। अभी तो वहाँ जाकर खेलेंगे और मजा करेंगे। पहले से ही मैंने इस धरती पर उतरे हुए सूरज का किस्सा सुना दिया। बालक, जिनमें से अधिक ने वह खेत नहीं देखा था, उत्सुक हो उठे। हम कूदते–खेलते खेत में पहुंचे। दूर से ही सूर्यमुखी का खेत आह्वान करने लगा। बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता थी। वे बंदरों की तरह खेत में घुस गए। मैंने केवल एक ही वाक्य कहा कुछ भी चित्र बनाओ, किंतु ऐसी चीज का बनाओ, जिसको देखकर तुम्हारा मन कभी खूब आनंदित हुआ हो। कईयों ने सूर्यमुखी के चित्र बनाये। उनमें से वह बालक भी था। **उस दिन उस बालक का हृदय खुला।** उसे शायद अनेक दिनों के बाद दिखा कि उसके रास्तेवाला मकान को छोड़कर दुनिया में और भी कुछ है।

इसका अर्थ यह है कि यह **बार–बार एक ही चित्र बनाने की जो समस्या है, वह केवल कला–शिक्षा की समस्या नहीं, बल्कि आम शिक्षा की समस्या है।** शिक्षक इसे निमित्त बनाकर इससे लाभ भी उठा सकता है और बालक की कल्पना–शक्ति भी जगा सकता है।

तरह–तरह के माध्यम जरूरी

उपलब्ध साधनों में चुनाव के अभाव के कारण भी कुछ रूकावटें आ जाती हैं। यह तो पहले ही कहा जा

चुका है कि साधन का चुनाव व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर करता है। एक ही माध्यम मे हमेशा ही अपने भावों का प्रकटन करते रहने में बालक अरुचि महसूस करने लगते हैं। बच्चे हमेशा नवीनता चाहते हैं और उन्हें जो नए–नए अनुभव मिलते रहते हैं, उनका प्रकटन हमेशा एक ही माध्यम द्वारा नए–नए ढंग से हो नहीं सकता। इसलिए भी आत्म–प्रकटन के लिए माध्यम बदल–बदल कर काम करना जरूरी होता है। यही कारण है – जो पहले ही कहा गया है – कि **शाला में आत्म–प्रकट के लिए तरह–तरह के माध्यम रहने चाहिए। इससे बच्चे अपनी भावनाओं को जब जिस साधन से चाहें, प्रकट कर सकेंगे।** चित्र पानी के रंग से न बनाकर सूखे रंग से या पेपरकट या लीनो–कट, वुड–कट आदि से बनाने की छूट और उन माध्यमों का इंतजाम होना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि बच्चे हमेशा कागज पर ही चित्र बनाएं। अगर शाला में मिट्टी की मूर्ति बनाने का इंतजाम होगा, जो बालकों को मूर्तियाँ बनाने की प्रेरणा भी मिलेगा। जहाँ मिट्टी के बर्तन चाक पर या सीधे हाथ से बनाने के साधन और उसकी शिक्षा का इंतजाम होता है, वहां बच्चे उसमें खूब रुचि लेते हैं।

बालक की कल्पना–शक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है।

कहानी चित्रण

बच्चों की पूरी टोली को कोई सरल कहानी सुनाना और उसके बाद उस कहानी का चित्रण करने को कहना। कहानी बालक स्वयं भी सुना सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि दो–तीन बालक अलग–अलग कहानियाँ सुनाएँ और टोली उनमें से एक कहानी चित्रण करने के लिए चुन ले। इस पद्धति से बालकों की कल्पना शक्ति को आयाम मिलेगा। जिन्हें कोई विषय नहीं सूझ रहा हो, उन्हें विषय मिलेगा।

इसी को और भी असरदार बनाया जा सकता है। शिक्षक बालकों को सरल सुंदर ढंग से बैठाए और उनसे आँख मूंदकर दो मिनट शांत रहने को कहे। जब बालक शांति से आख बंद कर लें, तो वह उन्हें कोई कहानी या अपना कोई अनुभव इस प्रकार वर्णन करके कहे कि वह दृश्य उनके समाने–सिनेमा की भांति चलने लगे। अपने अनुभवों में आकारों का विस्तृत वर्णन करें, रंगों को सादृश्य के साथ बताएँ। गंभीर आवाज में कभी अभिनय के ढंग से भावना के साथ वर्णन करने से बालकों के मन में चित्र खिंच जाता है। कल्पना दौड़ने लगती है।

चित्रों के लिए विषय

चित्रण के लिए दूसरे प्रकार के विषय भी दिए जा सकते हैं (चित्र संख्या 38 और 49)। उदाहरणार्थ :

1. तुम अपने माता–पिता के साथ सैर के लिए जा रहे हो।
2. अपने छोटे भाई या बहन को स्कूल ला रहे हो।
3. सारा परिवार मिलकर खेत में धान लगा रहा है।
4. गाँव के एक उत्सव में तुमने कैसे हिस्सा लिया?
5. तुम अकेले प्रकृति–दर्शन के लिए गए और तुम्हें वहां सबसे अच्छा क्या अनुभव हुआ?
6. तुम्हारे गाँव के अखाड़े में कुश्ती का खेल।
7. पिछले हाट–बाजार में क्या सबसे अच्छा लगा?
8. शाला में सामूहिक सफाई का काम।
9. तुम अपनी टोली के साथ सैर पर जा रहे हो।

10. तुम अपनी शाला का मकान उत्सव के लिए सजा रहे हो।

11. उस दिन जो नट का खेल हुआ।

12. शाला की बाल–सभा में तुम भाषण कर रहे हो।

इस प्रकार के अनेक विषयों को मौका देखकर इस्तेमाल किया जा सकता है। एक बार का अनुभव है कि चौथा वर्ग मेरे पास चित्र–कला के लिए आया करता था। पाँच–छह बार ऐसा मौका हुआ कि जब भी उस वर्ग के बच्चे आते थे, तभी खूब वर्षा होती थी। एक दिन बालक वर्ग में आते ही हँसी–मजाक में कहने लगे कि ऐसा क्यों होता है? मुझे सूझा और मैंने कहा–वर्षा कहती है कि तुम लोग इतनी बार चित्रकला–वर्ग में आते हो, सुंदर–सुंदर चित्र बनाते हो, किंतु मेरा क्यों नहीं बनाते। जब तक नहीं बनाओगे, मैं तुम्हें भिगाती ही रहूंगी। सब बालकों ने उत्साह के साथ कहा अच्छा, हम वर्षा का ही चित्र बनाएंगे। हमने चित्र का विषय रखा वर्षा का एक दिन।

इस पद्धति में एक बात ध्यान रखने की है। चाहे कितनी भी कुशलता के साथ चुनाव किया जाए, **उसी विषय का चित्र बनाना है, इसका आग्रह कदापि नहीं किया जाना चाहिये।** हो सकता है कि टोली के कुछ बालक कुछ और ही चित्र बनाएं। शिक्षक ने विषय चुनने में मदद की और उसके लिए आवश्यक भूमिका तैयार कर दी, तो बस है। **जोर देने से बालकों की रुचि नष्ट हो सकती है।**

कभी–कभी एक ही विषय के अलग–अलग पहलुओं पर टोली के बालक अलग–अलग चित्र बना सकते हैं। अगर एक लंबी कहानी है, तो जितने बालक हों, उतने चित्र बनाकर पूरी कहानी चित्रित की जा सकती है। यह एक संपूर्ण प्रोजेक्ट हो सकता है। पुस्तक बनाने के लिए एक प्रयोग का जिक्र ''बच्चों की नजर'' से शीर्षक वाले अध्याय में किया गया है। सामूहिक कार्य का यह एक बहुत अच्छा तरीका है। जो चित्र बनाना चाहें, वे चित्र बनायें, कुछ सुंदर ढंग से कहानी या लेख जो कुछ भी हो लिखें, कुछ पुस्तक की जिल्द बनायें। इस प्रकार शाला के समग्र जीवन के साथ चित्रकला–प्रवृत्ति का सुंदर मेल बैठ सकता है। भाषा, समाजशास्त्र आदि सभी विषय आ जाते हैं। यहाँ तक होना चाहिये कि जो काम वर्ग में हो रहा हो, उसके साथ पूरा–पूरा समन्वित कार्यक्रम अनेक मौकों पर बनाया जाय।

गतिविधि– नीचे दी हुई गतिविधि को बच्चों के साथ खुद भी शामिल होते हुए करिए।

सामूहिक कार्यों में एक पद्धति हमने अनके बार इस्तेमाल की है। उससे खूब लाभ हुआ है। बालकों को भी वह बड़ी रूचिकर लगती है। **एक खूब बड़े कागज पर सारी टोली मिलकर एक चित्र बनाती है।** चित्र क्या बनेगा, किसी को कल्पना भी नहीं होती। क्रम से बालक एक–एक करके आते हैं और रंग से भरी कूंची एक बार कागज पर रखकर जो कुछ खींच सके, खींचते हैं। रंग जो उन्हें पसंद आए, ले सकते हैं। कूंची भी पतली, मोटी–हर तरह की रखी जाती है। परंतु एक बार हाथ उठ गया, तो ब्रश रख देना पड़ता है। सभी बालकों की चेष्टा यह रहती है कि चित्र कुछ आकार ले, इसलिये अधिक कल्पनाशील बालक चित्र को रूख देने का काम करते हैं। कुछ देर में जब चित्र में कुछ बन जाता है, तो सभी एक–एक टच (कूंची का एक दाग) देकर चित्र पूरा करते हैं। इसमें शिक्षक भी हिस्सा लें, तो अच्छा होता है। चित्र बनाना तो होता ही है, परन्तु सब मिलकर एक ही नमुने पर आखिर पहुंचे, यह सबकी चेष्टा रहती है, जो बड़ी बात है। हर एक के मन में तरह–तरह की कल्पना रहते हुए भी आखिर एक ही चित्र बनता है। इस प्रयोग की यही विशेषता है। चित्र सबने मिलकर बनाया, यह भी बालकों के लिए बड़े गर्व की बात होती है।

अभ्यास

प्रश्न– 6 राजू और मीतू जब भी चित्र बनाते हैं तो वो झंडा, नदी, मकान और पहाड़ ही बनाते हैं। इसके

क्या कारण हो सकते हैं ? आप उन्हें अन्य चित्र बनाने और उनकी कल्पना शक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए क्या प्रयास करेंगे?

समालोचना

अगर शिक्षक समालोचना करेगा, तो बालक पर दबाव पड़ेगा। परंतु **अगर बालक स्वयं आपस में एक–दूसरे के चित्रों की समालोचना करेंगे, तो उससे वे खूब सीख सकते हैं। आपस में सामुदायिक ढंग से समालोचना खूब काटने वाली होने के बावजूद वह न्यूनतम भाव (इन्फीरियोरिटी काम्प्लेक्स) नहीं देगी।** वर्ग के अंत के दस मिनटों में बालकों को अपने–अपने चित्र दीवार पर ठीक क्रम से और सजाकर लगा देने के लिए कहा जाएगा। एक–एक करके सभी अपना–अपना मंतव्य हर चित्र के बारे में दें। इससे चित्रकार अपनी गलतियों को समझेगा। बालक ,बालक की दृष्टि से समालोचना करेंगे, इसलिये वह अधिक स्वाभाविक होगी।

कला–वर्ग और समय–पत्रक

शाला में चित्र–कला आदि का कार्यक्रम आमतौर पर दो प्रकार से नियोजित किया जायेगा। एक तो चित्रकला का निश्चित समय हो, यानी बच्चों को हफ्ते में अमुक परिमाण मे कला–प्रवृत्तियों के लिए समय मिले। दूसरा यह कि बच्चे जब भी कला–प्रवृत्तियों में भाग लेना चाहें, उन्हें कला–वर्ग में जाने की छूट हो। इस प्रकार आमतौर पर बालकों के मन में जब वे कला का काम करने जाते हैं, तो योजना रहती ही है। अगर शाला में कई प्रवृत्तियों के लिए इंतजाम होता है, तो मन की यह योजना बनाते समय अमुक माध्यम से काम करूंगा, यह भी निश्चित हो जाता है।

हमारे पास जब बालक आते हैं, तो स्वयं ही सब अपना–अपना काम चुन लेते हैं। कभी एक बालक बड़ा चित्र पानी के रंग से बनाता है, तो अगले वर्ग में वह मिट्टी के बर्तन बनाने का काम ले लेता है। इस तरह बच्चों को दो–तीन तरह के रंगों से, लीनो या काठ कटाई से, स्टेंसिल, पेपर–कट से चित्र बनाना, मिट्टी के बर्तन चाक पर या बत्ती–पद्धति से या मिट्टी से मूर्ति बनाना, अल्पना करना आदि कई माध्यमों से किसी में भी काम करने की गुंजाइश रहती है। ऐसा होने से एक ही माध्यम को हमेशा इस्तेमाल करने के कारण कल्पना–शक्ति के विकास में जो रूकावट आ जाती है, वह नहीं आयेगी।

कागज का नाप

बालकों का नवीनता की तरफ खूब ध्यान रहता है। एक छोटी–सी बात है, किंतु वह शिक्षक को बालकों में रूचि पैदा करने में मदद कर सकती है। जिन कागजों को चित्र के लिए इस्तेमाल किया जाता है, उन्हें शिक्षक आमतौर पर एक साइज का काटकर रख देते हैं। इससे नये चित्र के लिए छोटा या बड़ा, चौकोन या लंबाकार आदि चुनाव करने के लिए बालकों को कोई गुंजाइश नहीं रहती। **हमेशा वही साइज और उसी परिमाण का चित्र बनाने में मजा नहीं आता। इसलिये बच्चों को चित्र बनाने के लिए कागज अलग–अलग साइज और परिमाण के होने चाहिये। जब वे कागज लेना चाहें, तो किस साइज का और किस परिमाण का लेना है, यह वे स्वयं निश्चित करें।**

शिक्षक को यह ख्याल रखना पड़ेगा कि कोई बालक ऐसा तो नहीं है, जो हमेशा छोटे–छोटे कागज ही लेता है। अगर कोई ऐसा हो, तो उसे बड़े शीट लेने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिये। आजकल इस क्षेत्र में काम करने वाले सभी शिक्षक और विशेषज्ञ यही कहते हैं कि **बालकों को बड़े–बड़े चित्र बनाने की आदत डालनी चाहिये।** इसका कारण है कि बड़ी ड्राइंग बनाने में हाथ खोलकर निःसंकोच काम करना पड़ता है। इससे बालक

का हाथ भी सुधरता है और अंदर का संकोच भी चला जाता है। साथ ही उससे चित्र में जिस देश–विन्यास के बोध की आवश्यकता होती है, उसका विकास होता है।

बड़े–बड़े कागज इस्तेमाल करने में जो सबसे बड़ी समस्या आती है, वह है कागज की कीमत। हमारे देश के एकआध स्कूलों को छोड़कर शायद ही कोई स्कूल होगा, जो इतना आर्थिक भार उठा सके। किंतु हम यहां इस बात का विशेष तौर पर खुलासा करना चाहते हैं कि **यह जरूरी नहीं है कि बच्चों को कीमती कागज दिये जाए। हमने तो देखा है कि पुराने अखबार इसके लिए बहुत उपयोगी होते हैं। अखबारों की ऐसी शीट लेनी चाहिये, जिन पर कोई फोटो या विशेष दिखनेवाला विज्ञापन न हो।** ऐसे अखबार पर बड़े–बड़े ब्रश से सुंदर चित्र बन सकते हैं। इससे यह खयाल नहीं होना चाहिये कि ऐसा करने में कुछ हलकापन है। कभी–कभी अगर आर्थिक संभावना हो, तो न्यूजप्रिंट का कागज, जो खूब सस्ता होता है, बालकों को चित्र बनाने के लिए देना अच्छा होगा।

बड़े चित्र बनाने के बारे में एक और बात है। यह विचार की 'बालकों का हाथ खुले और संकोच खतम हो,' यूरोप आदि देशों में जनमा। इसका कारण यह है कि बालकों को वहां इस तरह 'हाथ खोलकर', ड्रांइग आदि करने का मौका कम मिलता था। किंतु हमारे देश में जो रंगोली और अल्पना की परंपरा है, उससे यह प्रश्न स्वयं ही काफी हद तक हल हो जाता है। फर्श पर खूब बड़ी–बड़ी अल्पना करते समय ऐसे ढंग से हाथ चलता है, जो बड़े–से–बड़े कागज पर भी नहीं चल सकता। इसलिये हमें इस बात पर इतना जोर देने की आवश्यकता नहीं, जितना दूसरे देशों में लोग देते हैं। फिर भी इसका महत्व कम है; ऐसी बात नहीं। बल्कि यह ख्याल रहना चाहिये कि कागज जितना भी हो सके, बड़ा दिया जाये, क्योंकि आदमी, जानवर और दृश्य आदि के चित्र भी खुलकर बनाने चाहिये। तभी तो देश के बोध का विकास होगा।

कागज की लंबाई–चौड़ाई

देश–बोध के लिए कागज की लंबाई–चौड़ाई में विविधता का होना बड़ा जरूरी है। चित्रों को तरह–तरह के परिणाम की भूमि पर बनाने से ही देश–संयोजन की नयी–नयी समस्याओं का सामना करने से उसका ठीक विकास होता है। मुझे एक बार छापाखाने से कागज के लंबे–लंबे कुछ टुकड़े मिल गये थे। उन्हें लाकर कला–भवन में बालकों के उपयोग के लिए रख दिया। उसे देखते ही उस बालक को लंबी रेलगाड़ी बनाने की बात सूझी। उसने गाड़ी का इंजन और दो डिब्बे बनाये। और बच्चों ने भी ऐसा ही अनुभव लिया और एक दिन तो देखा कि बालक 6–7 टुकड़ों को लंबाई में चिपकाकर जोड़े जा रहा है। सारा समय बैठकर उसने एक 9–10 फुट लंबी रेलगाड़ी बनायी। साधन की विविधता के कारण विविध प्रकारों और विविध रास्तों से आती है। शिक्षक को इससे फायदा उठाना चाहिये।

चित्र– 54

अभ्यास

प्रश्न–7 बच्चों को चित्र बनाने के लिए अलग–अलग आकार के और बड़े कागज क्यों देना चाहिए?

पर्सपेक्टिव का प्रश्न

वास्तविकता–परिचय–काल के अंत के समय ऐसी एक अवस्था आती है, जबकि बालक को अपने चित्रों में गहराई का भान देने की जरूरत होती है। तब उसे वस्तुओं को केवल लंबाई और चौड़ाई में ही बैठाने से संतोष नहीं होता; बल्कि गहराई में भी वस्तुएं बैठायी जानी चाहिये, इसका बोध होने लगता है। काफी बालक तो ऐसे होते हैं, जो अगर वातावरण ठीक रहा, तो इस परिस्थिति का मुकाबला अपने–आप कर लेते हैं (चित्र–संख्या 54)। किंतु कुछ बालकों को इस समय मदद की जरूरत महसूस होती है। अगर इस समय उचित मदद न मिले, तो संभव है, बालक हताश हो जाय और चित्रकला की प्रवृत्ति में अरूचि महसूस करने लगे। ऐसे मौके पर निरीक्षण करने की शक्ति को सूक्ष्मता के साथ बढ़ाने का मौका मिलना चाहिये।

बालक आकर कहता कि उसे बगल वाली दीवार तो दिखती है, लेकिन चित्र कैसे बनाये, यह नहीं जानता या फिर कहता है : यह तो ऐसा लगता है कि पहाड़ पेड़ के ऊपर है, वह तो सचमुच पेड़ के पीछे है। कैसे बनाऊं? ऐसे मौके पर शिक्षक क्या करे? क्या बालक को चित्र बनाकर दिखाए या उसे उस तरह के पर्सपेक्टिव वाले चित्र दिखा दे? ये सब बातें बालक को कमजोर बना देनेवाली होती हैं। उसे तो परिस्थिति का मुकाबला करनेवाला बनना है। इसलिये **हमारा काम है कि उसकी निरीक्षण–शक्ति और उसके मानसिक तर्कवाद को विकसित करने की पद्धति उसे दिखाये। चित्र बनाना नहीं, बल्कि चित्र बनाते समय जो समस्याएं आती हैं, उन्हें हल करने के लिए निरीक्षण के द्वारा परिप्रेक्षण के प्राथमिक सिद्धांत को स्वयं ही ढूंढ लेने की कोशिश करनी चाहिये।**

आमतौर पर 12–13 साल की आयु में जब इस पहलु पर कुछ मार्गदर्शन की आवश्यकता हो, परिप्रेक्षण के सरल नियमों का परिचय दिया जा सकता है, किंतु ऐसे ही बालक को, जो स्वयं उसकी आवश्यकता महसूस करे। कोई खास चीज पास होती है, तो बड़ी दिखती है और अगर वह दूर चली जाती है तो छोटी दिखने लगती है। जैसे – रेल की पटरी। दो पटरियों के बीच खड़े होकर अगर दूर देखा जाय, तो ऐसा दिखता है कि दोनों पटरियां आपस में मिल जाती हैं। सड़क के किनारे के दूर वाले पेड़ छोटे दिखते हैं। ऐसे कई प्रसंगों पर इस नियम का परिचय होता है। कभी–कभी बालक किसी चौकोनी वस्तु के चित्र में गहराई दिखाना चाहता है, तो बाजूवाली दीवारों को टेढ़ा बनाता है। जब तक इस तरह का चित्र बनाने में बालक को संकोच नहीं होता, तब तक तो मानना चाहिये कि उसकी अभी तक वह अवस्था नहीं आयी, जबकि वह इसे गलती समझने लगे किंतु यह खयाल हो जाने के समय कि चित्र ठीक नहीं बन रहा है, उसे इस नियम की आवश्यकता महसूस होने लगती है। चौकोनी चीजें, जैसे –मकान, पेटी, आलमारी आदि समतल स्थान पर सीधी खड़ी हों, तो उनके कोने, चाहे उन्हें किसी भी कोण से देखा जाय, भूमि पर लंब बनाते हुए ही दीखेंगे।

बालक जब चाक्षुष अनुभवों को चित्र में दर्शाना चाहता है, तो उसे इस तरह के नियमों को बड़ी सरलता के साथ बताना चाहिये। वह आमतौर पर 12–13 वर्ष की आयु से पहले जरूरी नहीं होता। कुछ ऐसे बच्चे होंगे, जो बिना पर्सपेक्टिव के बोध का चित्र बनाना चालू रखेंगे। यह अच्छा लक्षण है, क्योंकि **सच्ची कला के लिए पर्सपेक्टिव की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।** इसके बारे में शिल्प–गुरू नन्दलाल बसु ने कहा है : परिप्रेक्षित विज्ञानसम्मत नियम का उल्लंघन करके भी प्राच्य और प्रतीच्य में उच्च कोटि के शिल्प का सजृन हुआ है, जो स्वतः प्रमाणित है; इसका कारण संक्षेप में कहा जा सकता है कि उन क्षेत्रों में विषय के साथ विषयी का अर्थात शिल्प की विषय–वस्तु के साथ, शिल्पी का एकात्म–बोध हो गया है।

अभ्यास

प्रश्न–8. तनु चित्र बना रही है पहाड़ पर पेड़ का, उसने पहाड़ और पेड़ का आकार एक सा बनाया है लेकिन उसे खुद को वो चित्र ठीक नहीं लग रहा है और वो परेशान है। क्या आप बता सकते हैं की तनु की समस्या क्या है? उसकी समस्या को हल करने के लिए आप कैसे और क्या मदद करेंगे?

क्राफ्ट का काम

क्राफ्ट का बड़ा महत्व है। कुछ बच्चों का रूझान दस्तकारी की तरफ अधिक होता है। 8–9 साल की उम्र में ही उन्हें ऐसी प्रवृतियां देने का प्रयत्न करना चाहिये, जिनके द्वारा **चित्रकला के साथ–साथ दस्तकारी की रूचि को भी आत्म–प्रकटन का मौका मिले।** और चीजों के साथ–साथ लीनो कटाई, काठ कटाई और रंगीन कागज काटकर या हाथ से फाड़कर चित्र बनाने की प्रक्रिया में चित्रकला और दस्तकारी दोनों का काम बड़ी सरलतापूर्वक हो जाता है। इतना ही नहीं, इस तरह के साधनों और पद्धति के द्वारा बच्चों का आकार–बोध भी स्पष्ट होने लगता है।

कुछ और बड़ा होने पर, जब कि बालक वास्तविकता–प्रधान–अवस्था में आ जाता है, तब दूसरी दस्तकारियों द्वारा सृजनात्मक प्रवृत्ति दी जानी चाहिये। जब कि बच्चे के मन में ड्राइंग और पेंटिग के बारे में थोड़ा संकोच पैदा होने की संभावना होती है, बल्कि कुछ बच्चे तो जैसा जिक्र किया जा चुका है, उसमें रूचि लेना बंद कर देते हैं, उस समय दस्तकारी द्वारा बालक की सृजनात्मकता को प्रकट होने में मदद होती है। वह कोई भी दस्तकारी हो सकती है पर उसके पीछे दृष्टि कलात्मक हो और वह बालक की अपनी रूचि द्वारा चुनी गयी हो।

भांत (पैटर्न) बनाने का महत्व

जीवन की हर चीज में आलंकारिक भांत का इतना स्थान है कि उसे भूलना या इच्छा करके छोड़ना असंभव है। हर वस्तु में डिजाइन का प्रश्न आता है। डिजाइन में संतुलन, सममिति (सिमिट्री) का सवाल आता है। चित्रकला, मूर्तिकला आदि कलाओं में संतुलन के बारे में भान होना अत्यंत आवश्यक होता है। दस्ताकारी में भी भांत का बड़ा महत्व है। आर. आर. टामलिनसन अपनी पुस्तक 'पिक्चर एंड पैटर्न मेकिंग बाई चिल्ड्रन' में भांत (पैटर्न मेंकिंग) के बारे में लिखते हैं ''सबसे अभिलक्ष्य विकास, जो स्कूल में कला–शिक्षा के हाल के वर्षों में हुआ है, वह भांत (पैटर्न) सिखाने के बारे में है। भांत निकालना **(पैटर्न मेकिंग) आत्म–प्रकटन का एक स्वरूप है और उसका महत्व चित्र बनाने में, डिजाइन के साथ है।** भांत निकालना कुछ व्यक्तियों के लिए चित्र द्वारा प्रकटन (विजुअल एक्सप्रेशन) करने की पूर्वी कला की अनेक शैलियों की तरह स्वयं में एक संपूर्ण भाषा हो सकती है। भांत बनाने के लिए जिस बोध का हमारी शालाओं में (इंग्लैंड में) विकास हो रहा है, उसका बच्चों के चित्र बनाने की शक्तियों पर बड़ा लाभप्रद असर पड़ा है। इससे बालकों और किशोरों में चित्रबोध का निर्माण होगा और उसकी पुष्टि होगी।

इस दृष्टि से हमारा देश बड़ा भाग्यवान है। हिन्दुस्तान के लगभग हर प्रदेश में किसी–न–किसी आलंकारिक सजावट की परंपरा है – बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि में अल्पना; उत्तर प्रदेश, राजस्थान में मांड़नी; दक्षिण में रंगोली, मुग्गू और कोलम्। हमारे ग्रामीण जीवन में अभी भी अच्छे परिणाम में भांत का महत्व है। उसका लाभ बालकों को पूरा–पूरा मिलना चाहिये। बालक पारंपरिक अल्पना, रंगोली आदि तो करेंगे ही, पर उन्हें अपने मन से नये–नये भांत डालने की वृत्ति देनी चाहिये। नये संदर्भ में नये–नये आकारों का उपयोग किया जाना चाहिये। प्रकृति से खोजकर आलंकारिक आकारों का निर्माण करना एक उद्देश्य होना चाहिये। एक पत्ता एक पेड़ का और दूसरा–दूसरे पेड़ का लें, उसे दोहरा कर अच्छे किनारे बनते हैं। जीवन की और प्रवृत्तियों के साथ इसका अच्छा–खासा योग है। बुनाई के लिए, लकड़ी–खुदाई आदि के लिए उसकी जरूरत पड़ती है। शिक्षक को अपनी

इस दृष्टि में विकास करना चाहिये। उत्सवों की सजावट के समय हम इस प्रकार की सजावट खूब कर सकते हैं। मैदान में, जहां जमीन पर अल्पना नहीं कर सकते, वहाँ तरह–तरह की रंगीन मिट्टी, चूना, रेती, कोयले का चूरा, लाल रेती और पत्तों, फूलों तथा फूलों की पंखड़ियों से सजा–सजाकर बड़े सुंदर भांत बनाते हैं।

भांत बनाने के सिद्धांतों का अध्ययन शिक्षक को केवल शिक्षा–क्रम तैयार करने में मदद नहीं करता, बल्कि उसे कला–प्रवृतियों को समझने में मदद करता है। **ये सिद्धांत प्रकृति में से खोजकर निकाले गये होते हैं। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण का स्थान होता है, उसी तरह कला में डिजाइन, भांत आदि के सिद्धांतों का स्थान होता है।** टामलिनसन उसी पुस्तक में इस तरह के नौ सिद्धांतों का जिक्र करते हैं, पर हम उनमें से अत्यंत आवश्यक दो–तीन का यहां जिक्र करेंगे।

भांत में कुछ छंद और पुनरावृत्ति का महत्व होता है। किनारों आदि में पुनरावृत्ति अधिक होती है। जहां भांत–सममिति (सिमिट्री) अधिक होती है, वहां पुनरावृत्ति का स्थान अधिक है। जहां 'रेपीटीशन' (पुनरावृत्ति) कम होती है वहां छंद का महत्व है। जैसे संगीत में बार–बार सम आकर पड़ता है, वैसे ही आलंकारिक चित्र–कला का छंद होता है। बालकों को तरह–तरह के भांत बनाने पर इसका भान हो सकता है।

इस अभ्यास के लिए तरह–तरह के माध्यम इस्तेमाल किये जा सकते हैं। कागज पर या टीन पर आकार काटकर उन्हें स्टेंसिल–छपाई–पद्धति से छापकर किनारों, पल्लों और फर्श आदि के भांत तैयार किये जाते हैं। छोटे बच्चों के लिए अति सरल और कलात्मकता का विकास करने वाला एक तरीका आलू काटकर ब्लाक तैयार करने का है (चित्र संख्या 15)। इसे 'पोटेटो–प्रिंटिग' कहते हैं। बालक आलू को आधा–आधा काटकर सुंदर ब्लाक तैयार कर लेते हैं और एक कपड़े का पैड बनाकर उसमें रंग डालकर 'स्टाम्प–पैड' की तरह कागज पर अलग–अलग क्रम से छाप सकते है।

दूसरा सिद्धांत भांत के देश–विन्यास का होता है। इसमें भांत की छूटी जगह और उस पर बनाये गये आकारों का आपसी संबंध चरित्र और परिणाम का होता है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि एक हिस्सा तो प्राकृतिक आकार से और दूसरा आलंकारिक आकार से बना है। इसके सिलसिले में सामंजस्य का होना अत्यंत आवश्यक है, यानी भांत के आकारों का चरित्र एक ही हो।

इसी तरह आकार और देश का प्रश्न है, दोनों में सामंजस्य चाहिये। दोनों का आपसी संबंध आँखों का और फलतः मन को अच्छा लगने वाला होना चाहिये।

तीसरा सिद्धांत, जो शिक्षक के मन में स्पष्ट होना चाहिये, वह है अनुकूलता का। भांत जिस उपयोग के लिए बने, वह उसके लिए अनुकूल हो। अगर बालक फर्श के किनारे पर अल्पना करना चाहता है, तो अल्पना किनारे और जिस माध्यम से वह बना रहा है, उसके अनुकूल बने। रंगोली की डिजाइन अल्पना में नहीं हो सकती। साड़ी के पल्ले के लिए जो भांत बनेगी, वह कमीज के कपड़े के लिए लागू नहीं हो सकती। लकड़ी पर खुदाई करने के लिए जो भांत होगी, वह छपाई करने के लिए अनुकूल नहीं हो सकती। इस तरह यह अनुकूलता का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इन सब सिद्धांतों को समझने के लिए शिक्षक को खूब अध्ययन करने की आवश्यकता होती है – खासतौर पर उनको, जो किशोर–अवस्था के बालकों के शिक्षक हों।

भांत के ऊपर और भी अधिक जोर आज इसलिये देना है कि हमारी शिक्षा की सब प्रवृत्तियों और उद्योगों में भांत–डिजाइन की आवश्यकता पड़ती हैं उसे अनदेखा या टाला नहीं जा सकता। जो कला–शिक्षक इस पहलू की अवहेलना करेंगे, वे कला के महत्व को समझते हैं, यह नहीं कहा जा सकता।

अभ्यास

प्रश्न–9. कला शिक्षा में भांत; पैटर्न और डिजाइन के सिद्धांतों का क्या महत्व होता है?

क्लास–रूम

आदर्श तो यह होगा कि शाला में चित्र–कला, मूर्ति–कला आदि के लिए एक अच्छा कमरा खूब रोशनी वाला रहे। पर गांवों की अनेक शालाएं ऐसी होती है, जिनमें पूरी–पूरी कक्षाओं के लिए भी कमरे नहीं होते। ऐसी हालत में किसी एक कमरे को या जहां एक ही कमरा हो, उसे ही, ऐसा व्यवस्थित करके रखना चाहिये कि बालकों को काम करने की प्रेरणा मिले। **कमरे की दीवारों पर बालकों के बनाये हुए नये–नये चित्र लगे हों और नये चित्र बनते ही वे बदल दिये जाए। प्रदर्शनी सजाने का यह काम बालक स्वयं ही करें।** दीवार पर बांस की चटाइयों या और कुछ ऐसी स्क्रीनें (चटाइयां फ्रेम में लगाकर) लगी हों, जिन पर साधारण बबूल के काँटों से चित्र लगाये जा सकें। इससे चित्र में छिद्र नहीं पड़ते और बिना एक कौड़ी खर्च किये हुए चित्रों के लिए ऊंची रूचि की पृष्ठभूमि (बैकग्राउंड) तैयार हो जाती है। मामूली खजूर की चटाई और बांस के फ्रेम से सुंदर काम होता है। बालक आसानी से उन पर अपने चित्र लगा सकते हैं। चित्र लगाने में समिति, संतुलन आदि – कौन–सा चित्र कहां, किस चित्र के साथ लगाना है, इस सबका अभ्यास होता है। दीवारों पर बच्चों के अपने चित्र व्यवस्थित लगे रहें, तो उन्हें उत्साह मिलता है।

कमरे के एक तरफ चित्रकला का स्थान खूब सजा हुआ होना चाहिये। रंग, कूची आदि साफ–सुथरे, सजे हुए होने चाहिये। साधन तैयार हैं, ऐसे सजे हों, तो बालक को आह्वान देते हुए दिखाई देते हैं। बालक भी ऐसी हालत में आहान लेता है और हमेशा चित्र बनाने के लिए प्रस्तुत रहता है।

शिक्षक का काम है, बीच–बीच में **दीवारों पर दूसरी जगह के बच्चों और अन्य कला–कृतियों के नमूने लगाकर प्रदर्शनी सजाना। इससे बालकों को हमेशा नयी–नयी प्रेरणा मिलती है।** सारांश यह कि जितना शिक्षक का महत्व होता है, उतना ही स्थान और स्थान के वातावरण का होता है। अगर वातावरण ठीक होता है, तो शिक्षा भी अच्छी होती है। शिक्षक और वातावरण वाले अध्याय में हम काफी विस्तार से कह चुके हैं कि वातावरण तैयार करना शिक्षक का काम है, उसी पर शिक्षा का दारोमदार होता है ।

अभ्यास

प्रश्न–10 बच्चों के द्वारा बनाए चित्रों को कक्षा की दीवारों पर लगाने से वातावरण और बच्चों पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा?

बालकों के चित्रों का रिकार्ड रखना

अपने काम में शास्त्रीयता लाने के लिए शिक्षकों को एक और काम करना चाहिये। **बालकों के चित्रों का रिकार्ड नियमित रूप से रखा जाना चाहिये। प्रारंभिक चित्रों से लेकर जब तक बालक शाला में रहें, उनके चित्रों में से कुछ चुनकर नियमित फाइल में रखे जाएं। हर चित्र के पीछे बालक का नाम, चित्र बनाने की तारीख, टोली का नंबर और अगर हो सके, तो चित्र की क्रम–संख्या भी साफ अक्षरों में लिखनी चाहिये।** अच्छा तो यह होगा कि एक बालक के चित्र एक साथ रखे जाएं, क्योंकि एकआध साल के बाद छंटाई संभव नहीं होती। कुछ ही ऐसे शिक्षक होंगे, जो उस काम को विशेष रूचि से कर सकेंगे। फाइलिंग का तरीका हर कोई अपने ढंग से बना सकता है।

यह जरूरी है कि चुनाव ठीक हो, जिससे बाद में वह केवल एक ढेर ही न बन जाय। अगर चित्र क्रमवार रखे होंगे, तो कभी भी बालक की प्रगति का स्पष्ट दर्शन एक नजर में ही हो जायेगा। बालक स्वयं भी अपने पुराने चित्र देखना चाहते हैं। उससे उन्हें लाभ होता है। ''मैं प्रगति पर रहा हूं'' या ''मैं हमेशा एक ही प्रकार का चित्र

बना रहा हूं'' यह जानकारी उसे स्वयं की अपने चित्र–संग्रह को देखने से हो जायेगी। अनेक मौकों पर प्रदर्शनियों में चित्र रखने की आवश्यकता होती है। इसके लिए भी एक अच्छा संग्रह चाहिये। हमारे पास आज भी अनेक चित्र उन बालकों के हैं, जो अब सयाने और गृहस्थ हो गये हैं। जब वे उन चित्रों को देखते हैं, तो उन्हें बड़ा मजा आता है।

बालकों के चित्रों का विनिमय दूसरी शालाओं के बालकों के चित्रों से करने में उन्हें उत्साह मिलता है। इस प्रकार के चित्र–विनिमय अगर शालाओं के बीच होते रहें, तो बंधुत्व भी कायम होगा, साथ ही बालकों का कला–बोध भी विकसित होगा।

प्रोजेक्ट–

बच्चों से समय–समय पर चित्र बनवाइये और उपरोक्त तरीके से उनके द्वारा बनाए चित्रों को फाइल करके रखिए। चित्रों के आधार पर बच्चों की प्रगति की रिपोर्ट तैयार कीजिए।

4. बच्चों में चित्रकला का विकास

पठन सामग्री – 3

कला–परिचय

देवी प्रसाद

प्रस्तावना

छोटी उम्र में कला परिचय आवश्यक नहीं होता है वे जैसा जानते या अनुभव करते हैं वैसा ही अपनी कला के द्वारा दर्शा देते हैं। पर किशोरावस्था आते–आते बच्चे भी बड़ों की तरह काम करने की कोशिश करने लगते हैं बच्चों की इस अवस्था में यदि उन्हें कला से परिचय कराया जाये तो वे अपने कला बोध के द्वारा अच्छी कलाकृति निर्माण में प्रवेश करने योग्य बन जाते हैं।

उद्देश्य

- बच्चों को कला के माध्यम से प्रकृति तक पहुँचाना व प्रकृति के माध्यम से कला को समझाना।
- कला बोध निर्मित करने के लिए बच्चों में सृजनात्मकता व संवेदनाओं का विकास करना।
- कला बोध विकसित करने के विभिन्न तरीकों से परिचित करना।

कला–परिचय कला–शिक्षा का एक अंग है। कला–परिचय का सामान्य अर्थ अपने देश की और अन्य देशों की कला–शैलियों से परिचय होना ही माना जाता है। परंतु हम कला–परिचय में कला–बोध को केवल उतना ही नहीं, बल्कि अधिक महत्व का स्थान देते हैं। इसलिये प्रस्तुत चर्चा में केवल कला–बोध का निर्माण करने के लिए क्या कार्यक्रम बनाया जा सकता है और कला–शैलियों आदि का ज्ञान, इन दोनों मुद्दों का जिक्र करेंगे।

कुछ उम्र होने पर, करीब–करीब किशोर–अवस्था तक पहुँचने के समय **बालकों को प्राचीन और आधुनिक कला से परिचय हो, यह जरूरी है।** छोटी उम्र में न तो उन्हें उसकी आवश्यकता होती है और न उससे उनके अपने कला–विकास में कोई लाभ ही होता है। हाँ, शायद कला–परिचय की दृष्टि से जरूर कुछ होता है। बच्चों की अपनी कला पर तो मैं सोचता हूं, उससे अगर कुछ होता भी होगा, तो वह नुकसान ही होगा। हमने कहा ही है कि बालक पर प्रौढ़ की कला का प्रभाव अच्छा नहीं होता। परंतु जब बालक किशोर–अवस्था के नजदीक पहुंचता है और उसे बड़ों की तरह काम करने की जरूरत महसूस होती है, तब उसे कला से परिचय कराना आवश्यक है।

यह परिचय दो प्रकार से होगा मनुष्य का प्रकृति के साथ परिचय होना चाहिये। उसे प्रकृति के साथ एकरूपता का अनुभव होना चाहिये। इसलिये कला के माध्यम से प्रकृति तक पहुंचना और प्रकृति की मदद से कला को समझना, ये दोनों रास्ते हमें अपनाने होंगे।

एक बात स्पष्ट करना चाहता हूँ। आमतौर पर जो ''आर्ट एप्रीसिएशन'' और ''कला इतिहास'' का शिक्षा–क्रम होता है, उसमें केवल जानकारी की बात ही होती है। एक व्यक्ति भारतीय कला का इतिहास खूब बारीकी से जानता है, वह उस पर पांडित्यपूर्ण पुस्तकें भी लिखता है। किंतु जब बाजार में चित्र खरीदने जाता है, तो वही कैलेंडरवाली तस्वीरें पसंद करता है। राजपूत–शैली की हर तस्वीर को देखते ही कह सकता है कि यह तो फलानी शैली या फलानी शताब्दी की है, परंतु उसके बैठकखाने में बाजारु तस्वीरें लगी होंगी। ऐसे ज्ञान

से कोई लाभ नहीं। **हम तो कला–बोध चाहते हैं। सुदंर और असुदंर को समझने की विवेक–बुद्धि हो। वहीं पहली नजर में ही अपने बोध के द्वारा अच्छी कला–कृति में प्रवेश कर सके, ऐसी शक्ति का निर्माण करना है।**

इस तरह की शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है, इसके बारे में नया लिखने की आवश्यकता हमें महसूस नहीं होती। कला–गुरू नन्दलाल बसु ने इसके बारे में अत्यंत मूल्यवान सुझाव रखे हैं। हम उन्हीं के शब्दों को यहां उद्धृत करते हैं। यह उन्होंने आज के विश्वविद्यालयों को ध्यान में रखते हुए कहा था, पर हम अगर उन बातों को अपनी परिस्थिति और वातावरण मे लागू करें, तो इससे अधिक कोई सुझाव दिया नहीं जा सकता। .

शिल्प–गुरू की ये बातें स्पष्ट करती हैं कि कला और प्रकृति में कितना संबंध है। एक–दूसरे की मदद से ही दोनों समझे जा सकते हैं। इन सुझावों के द्वारा बालकों की शिक्षा तो होगी ही, पर शिक्षकों के लिए उन पर चिंतन, मनन और आचरण करने से सच्चा लाभ होगा। यह दृष्टि वही शिक्षक दे सकता है, जो स्वयं उसमें रत हो या कम–से–कम उस तरह की साधना में लगा हो।

कला–बोध के ऊपर कहे गये पहलू के साथ कला के इतिहास आदि पर ध्यान दिया जाय, तो उससे लाभ ही होगा। परंतु यह खयाल रहे कि **केवल कला का पुस्तकीय ज्ञान होने से कला द्वारा जिस तरह के व्यकितत्व का निर्माण करने की बात सोची जाती है, वैसा अल्प मात्रा में भी होना असंभव है। वह तो सृजनात्मकता और संवेदना का विकास करने से ही निर्मित हो सकता है।**

स्थायी कलाबोध तभी विकसित हो सकता है, जब कि उसके साथ जीवन का संबंध हो। जैसा कि पहले भी जिक्र किया है कि बुद्धि से व्यक्ति कला का इतिहास और किसी कला के अच्छे–बुरे पहलुओं को समझता हो, पर उसके अपने जीवन में सौंदर्य के कुछ दूसरे ही मापदंड काम करते हों, तो वह किस काम का! यानी मनुष्य की बुद्धि और उसकी रूचि (टेस्ट) में ऐक्य होना चाहिये। इसलिये प्रश्न है, शिक्षा के द्वारा सुरूचि का निर्माण करना। इसके लिए ऊपर से जो सुझाव रखे गये हैं, उनके अलावा दो–चार बातें और सुझाना चाहता हूं।

कला–बोध का निर्माण करने का एक कारगर तरीका है, व्यक्ति को ऐसे काम देना, जिसमें उससे सौंदर्य–निर्माण की अपेक्षा हो। **कक्षा का कमरा या छात्रालय का कमरा पूरा–पूरा खाली करके नये ढंग से सजाने का काम एक विद्यार्थी का या विद्यार्थियों की एक टोली को देना चाहिये।** उपयोग की दृष्टि से कमरे का संगठन सरल हो। सजावट की दृष्टि से उसमें एकआध चित्र चुनकर ठीक जगह लगाना और फूलदान में ठीक ढंग से फूल सजाने तक का 'प्रोजेक्ट' आखिर तक किया जाय। उसमें सादगी और सजावट का सामांजस्य हो; रंग–मेल की दृष्टि पर पूरा–पूरा ध्यान दिया जाय। प्रोजेक्ट पूरा होने के बाद टोली के विद्यार्थियों से व्यक्तिगत तौर पर समालोचना की अपेक्षा हो, साथ–साथ सब मिलकर भी समालोचना करें इससे सजावट के मूल सिद्धांतों का अच्छा विस्तार किया जा सकता है। इसी प्रकार छोटी–छोटी प्रदर्शनियों का आयोजन, उत्सव–त्यौहारों के समय सजावट और नाट्यमंच आदि की सजावट में भी विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट दिए जाएं।

किसी व्यक्ति या राष्ट्र की रूचि और उसके सौंदर्य–बोध के स्तर का इस बात से भी पता चलता है कि वह टूटन 'वेस्ट–मेटीरियल' का उपयोग कैसे कर लेता है। इस सिलसिले में दो उदाहरण मेरे सामने आते हैं: एक तो जापान का और दूसरा बंगाल का कांथा बनाने की पंरपरा का। सुना है, जापान में टूटन से अनेक प्रकार की सुंदर–सुंदर चीजों का निर्माण कर लेते हैं कपड़ों की कतरनों से और लकड़ी के टुकड़ों से तरह–तरह की अत्यंत सुंदर गुड़िया बना लेना, कागज के छीजन से पेपर में से कूट का काम आदि वहाँ की विशेषताएँ हैं। छोटे–छोटे बाँस के टुकड़ों का इतना सुंदर उपयोग कर लेते हैं कि देखते ही बनता है। एक छोटी–सी–बाँस की कमची को लेकर उसे तराश–तराशकर उस पर कुछ कॅलीग्राफी या चित्र बना लेना आमतौर पर देखा जाता है।

इसी तरह पुरानी धोतियों और साड़ियों को लेकर अत्यंत ऊँची रूचि की सुजनियां, कांथे बनाने की बंगाल की परंपरा भी इस बात की घोतक है कि वहाँ की स्त्रियां 'वेस्ट–मेटीरियल' लेकर उन्हें कैसे कला–कृतियों में परिणित कर सकती हैं। यही गुण है, जो कला–बोध का एक अंग बन जाना चाहिये। किसी शाला में इस तरह के 'वेस्ट–मेटीरियल' का कितना और कैसा उपयोग होता है, यह देखकर वहां की शिक्षा स्तर का पता चलता है। हमारी शिक्षा में ऐसे कार्यक्रम रखे जाने चाहिये, जिनसे बालकों को इस प्रकार की वस्तुओं का कलात्मक उपयोग करने की रूचि का निर्माण हो। इसके लिए प्रदर्शनियां भी रखी जा सकती हैं।

मनुष्य का बोध कल्पना के सूक्ष्म विकास के द्वारा भी बनता है। हमने अच्छी रूचिवाले ऐसे बहुत–से व्यक्तियों को तरह–तरह की अजीब चीजें संग्रह करते हुए देखा है। तरह–तरह के पत्थरों के टुकड़े, पेड़ की पुरानी टेढ़ी–मेढ़ी जड़ों या डालियों के टुकड़े इस तरह का आकर ले लेते हैं कि सूक्ष्म कल्पना वाला व्यक्ति उसमें अनेक प्रकार के रूप देख सकता है। इस तरह की चीजों में कुछ कल्पना– जगत का निर्माण कर लेना एक अच्छी ट्रेंनिग है। उससे व्यक्ति में बोध का सृजनात्मकता का विकास होता है। शाला में इस तरह की प्रवृत्तियों को उत्साह मिलना चाहिये।

इस कार्यक्रम के स्पष्ट दो भाग करने चाहिये। **पत्र–पत्रिकाओं में से कुछ तो ऐसे चित्र संग्रह किये जाएं, जो सामान्य ज्ञान–विज्ञान से संबंध रखनेवाले हों।** इनके भी अलग–अलग विषयों के अनुसार अलग–अलग एलबम बनाने चाहिये। टेक्नीकल दृष्टि के अलावा इसमें यह ध्यान रहे कि सब चित्र साफ और सुंदर हों। इनमें अधिकतर फोटो और डायग्राम आदि होंगे। फोटो हों, तो टेक्नीकल दृष्टि से अच्छे होने चाहिये। इस प्रवृति का दूसरा विभाग कला के दायरे का होगा। इसमें **चित्र–कला, मूर्ति–कला, वास्तु–कला और दस्तकारियों के अच्छे–अच्छे नमूनों के फोटो या प्रिंट होंगे।** इसके चुनाव का काम करना कुछ कठिन है। कठिनाई दो कारणों से है एक तो किस चित्र को चुनना और किसको नहीं, यह काफी जानकारी के बाद सधता है। दूसरा, चित्र शायद सचमुच माना हुआ अच्छा है, पर क्या वह प्रिंट चित्र के रंगों को सच्चाई के साथ दिखाता है या छपाई में उसके मूल रंग इतने बदल गये कि उसके सारे गुण समाप्त प्राय ही हो गये? इसलिये इस काम के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है। मेरा एक सुझाव इसके बारे में है– शाला में कुछ उच्च कोटि के प्रिंट हों, यह बात आसान नहीं हैं; क्योंकि ऐसे प्रिंट बड़े महंगे होते हैं। हर शाला के लिए खर्च करना संभव नहीं हो सकता। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि सरकारी पैमाने पर कुछ अच्छे–अच्छे सेट संसार की अलग–अलग कला–शैलियों के स्कूलों में घूमते रहें। यह घूमती प्रदर्शनी बीच–बीच में शिक्षकों और बालकों को देखने को मिले, यह उसका उद्देश्य हो। इस तरह की परंपरा बनने के बाद जो शिक्षक स्वाध्याय करके अपने स्कूल में पत्र–पत्रिकाओं से कटिंग द्वारा प्रिंट संग्रह करना चाहें, कर सकते हैं। उनका संग्रह सुरूचिपूर्ण होगा।

कला–इतिहास और कला के सिद्धांतों का महत्व कम नहीं है। जगत् में मनुष्य की कला–कृतियों का जो खजाना भरा पड़ा है, उससे परिचय करना और उसको जानना कला–बोध के विकास मे महत्वपूर्ण कदम है। इसमें विशेष ध्यान जागतिक दृष्टि की ओर रहना चाहिये। भारतीय कला का इतिहास जान लेने से नहीं चलेगा और न केवल भारतीय कला की पहचान लेने से चलेगा, क्योंकि उससे संकुचित दृष्टि का निर्माण हो सकता है। मनुष्य ने अलग–अलग परिस्थितियों में अलग–अलग उपकरणों से अपने आंतरिक रूप–जगत को किस–किस तरह प्रकट करने की कोशिश की है, यह जानना जरूरी है। बुनियाद में बात एक ही है, मनुष्य हर जगह एक ही है। उसकी आंकाक्षाएं, उसकी आनंद–प्राप्ति के रास्ते ऊपरी ढंग से देखने में अलबत्ता अलग दिखते हैं, किंतु उनके अंदर एक ही दृष्टि है, सौंदर्य–निर्माण की। कहीं वह कुछ काल के लिए अधिक विकसित हुई,

कहीं कभी कुछ पिछड़ गयी; पर वह अमुक जाति या अमुक देश होने के कारण नहीं। इस तरह की ऊपरी भेद बड़े समुद्र की अलग–अलग लहरों की तरह हैं, जिनके नीचे है महासमुद्र और यहां अगाध मनुष्य–हृदय!

कला–इतिहास के विषय का इसी दृष्टि से अध्ययन किया जाय। यह आवश्यक है कि जो हमारे अधिक निकट है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय है, वह पहले देखा–समझा जाय। पहले का अर्थ यह नहीं कि उसे देखें और दूसरा नहीं; पर चूंकि उसे समझना हमारे लिये सरल और स्वाभाविक है, उसे हम अच्छी तरह से समझें। अगर अपनी सांस्कृतिक बुनियाद अच्छी तरह से समझ ली जाय, तो दूसरी परंपराओं को समझना आसान हो जाता है।

अभ्यास

प्रश्न–1 कला के माध्यम से प्रकृति को व प्रकृति के माध्यम से कला को किस प्रकार समझा जा सकता है ?

प्रश्न–2 अपनी कक्षा के बच्चों में कलाबोध का निर्माण करने के लिए आप कौन–कौन से तरीके अपना सकते है ?

प्रश्न–3 दीपक भारतीय कला का इतिहास बहुत बारीकी से जानता है व उसके बारे में पुस्तकें भी लिखता है परंतु वो जब भी बाजार से तस्वीरें खरीदता है तो वे साधारण कैलेण्डर वाली होती हैं। दीपक के कलाबोध के बारे में आपके क्या विचार हैं?

इकाई – 5 नाटक व कठपुतली

प्राथमिक कक्षाओं में नाटक का उपयोग

सारा फिलिप्स

अनुवाद– भरत त्रिपाठी व मनीषा शर्मा

यह पुस्तक मूलतः इंग्लैंड व अमरीका के स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षण को ध्यान में रखकर लिखी गई थी। इसका उद्देश्य या नाटक विधाओं का भाषा शिक्षण में उपयोग। इसे हमने डी एड छात्र–छात्राओं के उपयोग के लिए न केवल हिन्दी में अनुवाद किया है, बल्कि इसे हिन्दी भाषा शिक्षण की दृष्टि से बदला है। जो लोग इसके अंग्रेजी मूल को पढ़ना चाहते हैं वे Sarah Philips, Drama with Children (Oxford) को देखें।

प्रस्तावना

यह किताब किसके लिए है?

बच्चों के लिए इस किताब में दी गयी लगभग सभी गतिविधियां पांच से बारह साल की आयु के बच्चों के साथ कक्षा में विभिन्न स्तरों पर की गयी हैं। निश्चित ही इनमें से अलग–अलग गतिविधियों की अलग–अलग बच्चों के लिये उपयुक्तता को दूसरे कारक भी प्रभावित करते हैं। उन्होंने पहले कितना नाटक किया हुआ है, वे शिक्षण के कैसे वातावरण के आदी हैं, उनका लड़का या लड़की होना, कक्षा का वातावरण तथा शारीरिक अभिव्यक्ति के प्रति सांस्कृतिक दृष्टिकोण। शिक्षक यह तय करने के लिये सबसे उपयुक्त व्यक्ति होते हैं कि उनकी कक्षा को ये कारक कैसे प्रस्तावित करते हैं। इसलिये, इस किताब में प्रत्येक गतिविधि के लिये जो उम्र और स्तर सुझाये गये हैं, वे केवल मार्गदर्शन के लिये हैं।

शिक्षकों के लिए यह किताब प्राथमिक स्तर के अनुभवहीन व अनुभवी, दोनों ही तरह के ऐसे भाषा शिक्षकों के लिये है जिन्हें नाटक को अपने शिक्षण के एक अतिरिक्त आयाम के रूप में शामिल करने या विकसित करने में रुचि है। यह किताब उन शिक्षकों के लिये प्रारंभिक स्तर की प्रायोगिक गतिविधियां सुझाती हैं, जिन्होंने इससे पहले अपनी कक्षाओं में नाटक का कभी इस्तेमाल नहीं किया है। इसके अलावा इसमें उन लोगों के लिये, जो नाट्यकला को अपनी शिक्षा के अभिन्न हिस्से के रूप में इस्तेमाल करने के प्रति ज्यादा आश्वस्त हो या जो सत्र के अंत में होने वाले कार्यक्रमों जैसे किसी प्रदर्शन की तैयारी करना चाहते हों, स्वांग और नये रूपक गढ़ने जैसी अन्य महत्वाकांक्षी गतिविधियां भी हैं। इस किताब का लक्ष्य कक्षा में नाट्यकला से व्यावहारिक परिचय कराना और एक ऐसा शुरुआती बिन्दु प्रदान करना है, जहां से शिक्षक खुद अपने तरीके विकसित कर सकें।

उद्देश्य

- नाटक की गतिविधियों के इस्तेमाल का भाषा सीखाने में लाभ लेना।
- बच्चों में आत्मविश्वास की बढ़ोत्तरी के लिए।
- बच्चों के बौद्धिक और सामाजिक विकास को बढ़ाना।
- शारीरिक हाव भाव के साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त कर पाना।

नाटकीकरण न कि नाटक

नाटक शब्द से मन में साल के अंत में घबराये हुए बच्चों द्वारा प्रदर्शित, बदहवास शिक्षकों द्वारा आयोजित और स्नेही माता–पिताओं द्वारा देखे जाने वाले किसी नाटक की तस्वीर बन सकती है। मैं इस छवि को बदलकर उसे इससे कहीं कम नाटकीय बनाना चाहती हूँ। इसके लिये नाटकीकरण शायद नाटक से बेहतर शब्द है। नाटकीकरण साल के अंत के परेशान कर देने वाले नाटक से कहीं सरल है। **नाटकीकरण का मतलब है कि बच्चे किसी भी पाठ में सक्रिय रूप से भागीदारी करने लगें।** बहुत ज्यादा कवायद करने या यांत्रिकीय ढंग से दोहराव करने के बजाय, ऐसा आत्मीयकरण भाषा को ज्यादा अर्थपूर्ण और यादगार बना देता है।

नाटक का मतलब सिर्फ उसका उत्पाद (प्रदर्शन) ही नहीं होता, बल्कि **यह तो भाषा सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है। इससे बच्चों को यह मौका मिलता है कि वे जिस साधारण व यांत्रिकीय भाषा का इस्तेमाल करते हैं उसे अपने–अपने व्यक्तित्व से जोड़कर अपना बना सकें। इससे उन बच्चों को, जो किसी बोली को बोलते समय संकोच महसूस करते हैं, एक दूसरा चरित्र मिल जाता है जिसके पीछे वे छिप सकते हैं।**

नाटक की गतिविधियों का उपयोग क्यों करें?

नाटक और नाटक की गतिविधियों के इस्तेमाल का भाषा सीखने में निश्चित ही लाभ मिलता है। इससे बच्चों को **बोलने के लिए प्रोत्साहन मिलता है और उन्हें मौका मिलता है कि वे सीमित भाषा के साथ भी, अमौखिक संवाद–साधनों, जैसे कि शारीरिक गतिविधियों और चेहरे के हाव–भावों का इस्तेमाल करते हुए अपनी बात को संप्रेषित कर सकें।** इसके अलावा ऐसे बहुत से अन्य कारक भी हैं जो नाटक को भाषा की कक्षा में एक बहुत सशक्त उपकरण बनाते हैं। जरा सोचने की कोशिश करें कि किसी पाठ्यपुस्तक में से किसी संवाद को सिर्फ जोर से पढ़ने की अपेक्षा उसी संवाद को अभिनय सहित व्यक्त करना कितने तरह से भिन्न होता है। आप पायेंगे कि यह सूची काफी लंबी होगी। यह इसलिये क्योंकि नाटक में कई स्तरों पर– जैसे कि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, भाषा तथा सामाजिक मेलजोल के स्तरों पर बच्चों की भागीदारी शामिल रहती है। कुछ ऐसे क्षेत्र, जिनमें मुझे लगता है कि भाषा सीखने वालों तथा शिक्षकों के लिये नाटक बहुत उपयोगी हो सकता है, नीचे रेखांकित किये गये हैं।

उत्साहवर्धन

किसी पाठ का नाटकीकरण बहुत उत्साहवर्धक होता है और इसमें मज़ा भी आता है। इसके अलावा, एक ही गतिविधि एक ही समय पर विभिन्न स्तरों पर की जा सकती है जिसका मतलब है कि सभी बच्चे उसे सफलतापूर्वक कर सकते हैं। अंतिम उत्पाद अर्थात् प्रदर्शन, मन में स्पष्ट रहता है, इसलिये बच्चे आश्वस्त महसूस करते हैं और उनके पास पाने के लिये एक लक्ष्य होता है (भले ही यह उनके शिक्षक के लक्ष्यों से मेल न खाता हो)। बच्चों में जोश आ जाता है, अगर उन्हें यह पता हो कि उनके एक या दो समूहों से उनके द्वारा तैयार किये गये प्रहसन को मंचित करने के लिये कहा जायेगा, या कि उनका वीडियो बनाया जा रहा हो, या उन्हें किसी सार्वजनिक कार्यक्रम में शामिल किया जा रहा हो।

परिचित गतिविधियाँ

नाटकीकरण बहुत छोटी उम्र से बच्चों की जिंदगियों का हिस्सा होता है। **बच्चे लगभग तीन या चार साल की उम्र से दृश्यों और कहानियों का अभिनय करने लगते हैं।** वे खरीदारी करने या फिर डॉक्टर के पास जाने जैसी उन स्थितियों में वयस्कों का अभिनय करते हैं, जो उनकी जिंदगियों का हिस्सा होती हैं। रोजमर्रा के जीवन में ऐसी कई संभावित स्थितियाँ होती हैं। बच्चे स्वांग (रोल प्ले) करते हुए अलग–अलग भूमिकाएँ निभाते हैं। वे उस स्थिति की भाषा और पटकथा का अभ्यास करते हैं और उसमें शामिल भावों को अनुभव करते हैं, यह जानते हुए कि वे जब चाहें तो वास्तविकता में लौट सकते हैं।

ऐसे स्वांग बच्चों को उनकी जिंदगी में आगे आने वाली वास्तविक परिस्थितियों के लिये तैयार करते हैं। यह असली चीज का पूर्वाभ्यास है। इस तरह के स्वांग उनकी सृजनात्मकता को बढ़ावा देते हैं और उनकी कल्पनाशीलता को विकसित करते हैं और साथ ही उस भाषा को इस्तेमाल करने का मौका देते हैं, जो उनकी रोजमर्रा की जरूरतों से बाहर की होती है। भाषा के शिक्षक, परिस्थितियों का अभिनय करने की इस स्वाभाविक अभिलाषा का उपयोग कर सकते हैं। आप उनसे पंचतंत्र का बंदर या खरगोश या बुद्धु शेर, अलादीन का जादुई कालीन, या एक डाकू होने के लिये कह सकते हैं, और फिर उस व्यक्तित्व या भूमिका को विकसित करने वाली हर तरह की भाषा का उपयोग कर सकते हैं।

आत्मविश्वास

किसी भूमिका को निभाने में बच्चे अपनी रोजमर्रा की पहचान से बाहर निकल सकते हैं और अपने संकोच से छुटकारा पा सकते हैं। यह उन बच्चों के लिये उपयोगी होता है, जो हिन्दी बोलने में संकोच करते हैं या सामूहिक गतिविधियों में शामिल होने से बचते हैं। यदि आप उन्हें कोई विशिष्ट भूमिका दे दें, तो उससे उन्हें उस चरित्र को अपनाने का और अपने शर्मीलेपन या झेंप को तोड़ने का प्रोत्साहन मिलता है। यह बात खासतौर पर तब और सही साबित होती है जब आप कठपुतलियों या मुखौटों का उपयोग करते हैं। शिक्षक भूमिकाओं का उपयोग उन बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिये कर सकते हैं, जो अन्यथा खुद को पीछे रखते हैं और उन बच्चों पर नियंत्रण रखने के लिये कर सकते हैं, जो कमजोर बच्चों को दबाते हैं।

सामूहिक क्रियात्मकता

बच्चे नाटकीकरण के दौरान अक्सर समूहों या जोड़ों में काम करते हैं। यह समूह कार्य काफी ढांचागत हो सकता है, जहां बच्चे किसी दिए गए प्रारूप की नकल करते हैं या इसका अर्थ बच्चों द्वारा खुद अपने काम की जिम्मेदारी लेना भी हो सकता है। **बच्चों को एक समूह की तरह निर्णय लेना पड़ते हैं, एक–दूसरे की बातों को सुनना पड़ता है और एक–दूसरे के सुझावों को महत्व देना पड़ता है। अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिये उनका आपस में सहयोग करना जरूरी होता है, उन्हें अपने मतभेदों को दूर करने के तरीके ढूंढ़ना होते हैं और समूह के प्रत्येक सदस्य के मजबूत पहलुओं का उपयोग करना होता है।**

सीखने की अलग शैलियां

नाटकीकरण सभी तरह के सीखने वालों को आकर्षित करता है। हम अलग–अलग तरीकों से सूचना को प्राप्त करते और व्यवस्थित करते हैं। प्रमुख रूप से देखकर, सुनकर और अपने भौतिक शरीरों का उपयोग करके हम ऐसा करते हैं। हममें से प्रत्येक में इनमें से कोई एक माध्यम ज्यादा प्रभावी होता है। यदि हम इस माध्यम द्वारा कोई जानकारी हासिल करते हैं, तो हमारे लिये उसे समझना और इस्तेमाल करना आसान हो जाता है। पर यदि वह जानकारी किसी कमजोर माध्यम के द्वारा हमारे सामने आये, तो हमें उन विचारों को समझना ज्यादा मुश्किल हो जाता है। जब बच्चे नाटकीकरण करते हैं तो वे इन सभी माध्यमों का उपयोग करते हैं और प्रत्येक बच्चा अपने माफिक माध्यम से प्रेरणा लेता है। इसका मतलब यह कि वे सभी उस गतिविधि में सक्रिय रूप से शामिल रहेंगे और उसकी भाषा उनके लिये सबसे उपयुक्त माध्यम के द्वारा उनके भीतर प्रवेश करेगी।

भाषा का आत्मीयकरण

नाटकीकरण बच्चों को यह मौका देता है कि वे उनके द्वारा पढ़े गये या सुने गये किसी पाठ में कोई भावना या व्यक्तित्व जोड़ सकें। कोई भी शब्द, वाक्य या लघु संवाद (दो से चार लाइनों का) लें, और बच्चों से उसे चरित्र में पैठकर कहने का अभ्यास करने को कहें। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि कैसे तुम्हारा नाम क्या है? जैसे सरल वाक्य का मतलब भी उसको कहने के ढंग और उसके उपयोग के

स्थान के अनुसार बदला जा सकता है। सोचिये कि इस सवाल को एक पुलिस वाला किसी चोर से कैसे पूछेगा और इसी सवाल को फादर क्रिसमस (सैंटा क्लॉस) किसी आशावान बच्चे से कैसे पूछेंगे। शब्दों का मतलब समझकर बच्चे उन्हें अपना बना लेते हैं। इससे भाषा भी याद रखने योग्य बन जाती है।

संदर्भ में भाषा

कक्षा में हम अक्सर बच्चों को पूरे वाक्यांशों या खंडों के बजाय भाषा के छोटे–छोटे टुकड़ों जैसे कि स्वतंत्र शब्दों से परिचित कराते हैं। बोलते समय बच्चों से आमतौर पर उनके द्वारा सीखी जा रही विभिन्न वाक्य–संरचनाओं को जोड़ने के लिये नहीं कहा जाता। नाटक किसी दिए गए संदर्भ में किसी अनजानी भाषा के अर्थ का अनुमान लगाने के लिये बच्चों को प्रोत्साहित करने का एक ऐसा आदर्श तरीका है जिससे अक्सर अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह बच्चे सफलतापूर्वक संवाद कर पाएं, इसके लिये जरूरी है कि वे कई तरह के भाषायी ढाँचों और कारकों का इस्तेमाल करें।

बहु–विषयी सामग्री

नाटक को इस्तेमाल करते समय आपके लक्ष्य भाषायी से ज्यादा भी हो सकते हैं। आप अन्य विषयों से लिए गए टॉपिकों का भी इसमें इस्तेमाल कर सकते हैं। बच्चे ऐतिहासिक दृश्यों का अभिनय कर सकते हैं या फिर किसी मेंढक के जीवन चक्र का अभिनय कर सकते हैं। आप पाठ्यक्रम में आए हुए विचारों और मुद्दों जैसे लैंगिक भेदभाव, पर्यावरण के प्रति सम्मान और सड़कों पर सुरक्षा आदि पर भी काम कर सकते हैं। प्रहसनों और स्वांगों के द्वारा महत्वपूर्ण संदेशों का संप्रेषण किया जा सकता है और उनकी पड़ताल की जा सकती है। नयी भाषा की संस्कृति से परिचित कराने के लिये भी नाटक का इस्तेमाल कहानियों और रिवाजों के माध्यम से किया जा सकता है, साथ ही किसी संदर्भ के साथ इसका इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के मानवीय व्यवहारों पर काम करने के लिये भी किया जा सकता है।

पाठ की गति

नाटक कक्षा की गति या मनोदशा में बदलाव ला सकता है। नाटकीकरण विद्यार्थी–केन्द्रित होता है, जिससे कि आप उसका इस्तेमाल अपने पाठ के ज्यादा शिक्षक–केन्द्रित भागों से अंतर स्थापित करने के लिये कर सकते हैं। यह सक्रिय गतिविधि है, इसलिये आप इसका उपयोग चुपचाप किये जाने वाले काम या वैयक्तिक कार्य के बाद कक्षा को अधिक जीवंत बनाने के लिये कर सकते हैं।

कक्षा में नाटकीकरण का इस्तेमाल करने के लिये व्यावहारिक सुझाव

सही गतिविधि चुनें जब आप किसी नाटक सम्बंधी गतिविधि की योजना बनाते हैं तो आपको अपना लक्ष्य पता होना चाहिये। कुछ गतिविधियां सटीकता और प्रवाह पैदा करने वाले कामों के लिये हो सकती हैं और कुछ भाषायी कौशल का अभ्यास करने के लिये। आपका लक्ष्य पिछले पाठों की भाषा को दोहराना या उसका अभ्यास करना हो सकता है या फिर आपका लक्ष्य पाठ की गति को बदलना हो सकता है। किताब के शुरू में दिये गये विषय–सूची वाले पृष्ठ के फोकस कॉलम को देखें।

बच्चों की उम्र आपके द्वारा बनाई जाने वाली गतिविधि की योजना को प्रभावित करती है। छोटे बच्चों को समूहों में काम करने में ज्यादा दिक्कत होती है। अतः पूरी कक्षा को सम्मिलित करके की जाने वाली गतिविधियां या काफी मार्गदर्शित गतिविधियाँ उनके लिये अच्छी होती हैं। बड़े बच्चे छोटे समूहों में बेहतर काम कर सकते हैं हालांकि यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस शिक्षण शैली के आदी हैं। वे कई जगह खुद पहल भी कर सकते हैं। चरित्रों और परिस्थितियों के बारे में अपने विचार रख सकते हैं और यदि वे कुछ समय से पढ़ रहे हों, तो शायद उन्हें सिर्फ भाषा को लेकर शिक्षक की मदद लगे। **बच्चे जितना ज्यादा नाटकीकरण करेंगे और अपने किये हुए काम का वे जितना विश्लेषण करेंगे, उतना ही वे बेहतर होते जाएंगे।**

छोटे से शुरुआत करें

सभी बच्चे अभिनय में अच्छे नहीं होते खासकर तब जब नाटक उनके पहले भाषा पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं होता। छोटे –छोटे चरणों के साथ अपनी कक्षा में नाटक से बच्चों का परिचय कराएं। सरल व मार्गदर्शित ।

गतिविधियों से शुरुआत करें जैसे– किसी दानव की नकल करो और फिर जैसे–जैसे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़े तो कम नियंत्रित गतिविधियों जैसे– नाटक की ओर बढ़ें। आपको आश्चर्य हो सकता है कि आपको उन्हें साधारण सी चीजें जैसे–अपने हाथों को फैलाना, छोटे और बड़े कदम लेना, और मनोभावों को प्रदर्शित करने के लिये अपने चेहरे और पूरे शरीर का इस्तेमाल करना सिखाना पड़ता है। **बच्चों को नाटकीकरण में ले जाने के लिये संपूर्ण शारीरिक प्रतिक्रिया वाली गतिविधियाँ एक शानदार तरीका हैं। बच्चे भाषा के प्रति अपने शरीरों से प्रतिक्रिया करते हैं, जो स्वांग और अभिनय की तरफ पहला कदम है।** बच्चों को अक्सर यह आभास नहीं होता कि वे चीजों को अलग–अलग ढंग से कह सकते हैं। उनसे शब्दों या वाक्यों को जोर से, धीमे से, क्रोधी स्वर में या दुखी स्वर में बोलने के लिये कहना भी उनके लिये अपनी आवाजों की शक्ति को पहचानने का अच्छा तरीका हो सकता है। **बच्चों को यह महसूस होना जरूरी है कि आपके भीतर नाटकीकरण के प्रति जोश है और आप अपने द्वारा प्रस्तावित गतिविधियों को करने में मज़ा लेते हैं।** आप उनके लिये एक प्रारूप या आदर्श की तरह काम करते हैं और उन्हें कक्षा में सक्रिय रहने के लिए प्रोत्साहन देते हैं।

कक्षा को व्यवस्थित करें

बच्चे अधिकांश गतिविधियाँ खड़े रहकर करते हैं और आमतौर पर कक्षा की सामने वाली जगह पर्याप्त होती है। यदि बच्चे गोले में खड़े हों या समूहों में काम कर रहे हों तो आपको ज्यादा जगह की जरूरत होगी। टेबल और कुर्सियों को कक्षा के एक कोने में सरका दें या फिर बच्चों को बाहर ले जाएं।

प्रतिक्रिया (फीडबैक) दें

आप किन्हीं व्यावसायिक अभिनेताओं या अभिनेत्रियों को प्रशिक्षित नहीं कर रहे हैं बल्कि बच्चों को हिन्दी का अभ्यस्त होने का और उसका इस्तेमाल करने का एक रोचक तरीका सिखा रहे हैं। बच्चों ने जो कुछ भी किया हो, न केवल अंतिम उत्पाद और भाषा बल्कि जिस प्रक्रिया से वे गुजरे, जिस तरह उन्होंने एक दूसरे का सहयोग किया और कैसे उन्होंने अपने निर्णय लिये, आप इस सबका विश्लेषण करते हुए अपनी प्रतिक्रिया दें। कुछ अच्छी बात देखकर उस पर टिप्पणी करें। बच्चों के काम में ऐसे क्षेत्र भी रहेंगे जिनमें सुधार की गुंजाइश होगी और बच्चों को बताए जाने वाले अपने विश्लेषण में आपको यही बात उजागर करना होगी। जब बच्चे गतिविधि में संलग्न हों तो उन्हें ध्यान से देखें और सुनें, दखल न देने की कोशिश करें और जो आप देखें उसके नोट्स बनाते जाएं। आपका मुख्य लक्ष्य है इस सारी प्रक्रिया पर बच्चे प्रदर्शन को इस पाठ के सबसे अहम हिस्से के रूप में देखेंगे। आपको उनके प्रदर्शनों को महत्व देना चाहिये। जब वे अपना काम खत्म कर लें, तो आप कुछ समूहों से अपना काम दिखाने को कह सकते हैं और फिर उन्हें अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ऐसा करने के कई तरीके हो सकते हैं। आप उनके करने के लिये एक प्रतिक्रिया शीट तैयार कर सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं। यदि रचनात्मक प्रतिक्रिया नाटकीकरण की गतिविधियों का नियमित हिस्सा बन जाए, तो बच्चे धीरे–धीरे नाटकीकरण की अपनी क्षमताओं और अपनी भाषा में सुधार कर लेंगे।

अभ्यास

प्रश्न– 1. भाषा या अन्य किसी विषय के सीखने में नाटक की क्या उपयोगिता होती है?

प्रश्न–2. कक्षा में बच्चों को उनके द्वारा किये गये कार्यों व नाटकों पर प्रतिक्रिया किन आधारों पर देंगे?

प्रत्येक गतिविधि को कैसे नियोजित किया गया है

स्तर

1. प्रारंभिक रूप उन बच्चों से लेकर जिन्हें हिन्दी का थोड़ा –सा या बिलकुल ज्ञान नहीं है, उन बच्चों तक के लिए जो रंगों के हिन्दी नाम पहचान लेते हों या बारह तक की संख्या जानते हों और कुछ बुनियादी शब्दावली जैसे–परिवार, पशुओं और कुछ खाने के पदार्थों के नाम जानते हों या मैं हूँ, तुम हो, यहां है, वहां है; का प्रयोग करना जानते हों या और कक्षा में इस्तेमाल होने वाले आदेशात्मक वाक्यांशों जैसे बैठो, खड़े हो जाओ और अपनी किताबें खोलो; को पहचानते हों। उनके द्वारा इस भाषा का सक्रिय इस्तेमाल बहुत सीमित रहेगा।

2. प्राथमिक रूप से ये बच्चे पहले स्तर की भाषा का इस्तेमाल ज्यादा सक्रिय रूप से कर सकते हैं और सरल वाक्य व प्रश्न बना पाते हैं। उनके पास ज्यादा बड़ी शब्दावली होती है। उदाहरण के लिये, कपड़े, दुकानें, शरीर के अंग, रोजमर्रा में इस्तेमाल होने वाली क्रियाएं और समय बता पाना (यदि वे अपनी भाषा में ऐसा करना जानते हों)।

3. पूर्व–माध्यमिक रूप से ये बच्चे वाक्यों के ढांचों को पहचानने और अपनी खुद की भाषा रचने में ज्यादा सक्षम होंगे। वे सामान्य भूतकाल, तुलनावाची शब्द तथा आभार, निवेदन या सुझाव व्यक्त करने जैसे भाषायी ढांचों को सीखने के लिये तैयार होते हैं।

यह बहुत महत्वपूर्ण है कि इन स्तरों को उम्र के वर्षों से जोड़कर न देखा जाये क्योंकि बच्चे के परिपक्व हो जाने पर उसकी क्षमता में बहुत फर्क आ जाता है। थोड़ा बड़ा बच्चा एक ही साल में दूसरे स्तर पर पहुंच सकता है, जबकि छोटे बच्चों को धीरे–धीरे आगे बढ़ना होता है।

आयु वर्ग

अक्षर अ, ब और स बच्चों की उम्र को इंगित करते हैं।

अ. 6 से 8 साल तक के ब. 8 से 1 0 साल तक के स. 10 से 12 साल तक के

यह सिर्फ एक मोटा–मोटा मार्गदर्शन है। आप स्वयं अपने हिसाब से निर्णय करें।

समय

गतिविधि को पूरा करने में कितना समय लगेगा यह बताने के लिए एक मोटा–मोटा मार्गदर्शन। कुछ बातों का समयावधि पर खासा असर पड़ेगा जैसे बच्चों की संख्या के हिसाब से कक्षा का आकार, बच्चों की उम्र, बच्चे समूह में कार्य करने के आदी हैं कि नहीं इत्यादि।

उद्देश्य

इन गतिविधियों के उद्देश्यों को दो भागों में बांटा जाता है। भाषायी उद्देश्य और अन्य उद्देश्य। भाषायी उद्देश्यों में भाषा और कौशलों के विकास को लक्ष्य मानकर चला जाता है जबकि अन्य उद्देश्यों में बच्चों के बौद्धिक और सामाजिक विकास को ध्यान में रखा जाता है।

वर्णनः गतिविधि का संक्षिप्त वर्णन ताकि आपको समग्र तौर पर उसका एक अनुमान हो जाये।

सामग्रीः गतिविधि के दौरान इस्तेमाल होने वाली चीजों की सूची।

तैयारीः एक संक्षिप्त रूपरेखा कि आपको पाठ के पहले क्या–क्या करना होगा?

कक्षा मेः गतिविधि करने का चरण दर चरण मार्गदर्शन।

बाद की गतिविधिः आगे की गतिविधियों के लिये सुझाव व विचार ताकि जो सीखा गया है उसे और सुदृढ किया जा सके।

बदलावः उन तरीकों के उदाहरण जिनके द्वारा आप उस गतिविधि को अपने बच्चों के माफिक ढाल सकते हैं।

टिप्पणियांः गतिविधि को सुगमता से करने के लिये संकेत और सुझाव।

1. शुरुआत

इस भाग की गतिविधियां आपको मौका देती हैं कि आप अपने रोजमर्रा के पाठों में नाटकीकरण का तत्व डाल सकें और लंबी गतिविधियों के लिये जरूरी कौशलों पर काम कर सकें। ये गतिविधियां छोटी हैं, इन्हें करने में मजा आता है, आयोजित करना आसान है और अन्य भाषायी विषयवस्तु के साथ इस्तेमाल करने के लिये इन्हें उसके अनुरूप ढाला जा सकता है। कई गतिविधियां नकल उतारने पर ध्यान केन्द्रित करती हैं ताकि बच्चे अर्थ को व्यक्त करने के लिये अपने शरीरों का इस्तेमाल कर सकें। ध्यान केन्द्रित करने में यह बदलाव भाषा सीखने के लिये बहुत सशक्त तरीका हो सकता है। बच्चे एक अधिक अवचेतन तल पर भाषा को ग्रहण करते हैं क्योंकि वे इस बारे में नहीं सोच रहे होते कि वे क्या कह रहे हैं बल्कि उनका ध्यान इस पर होता है कि अर्थ को कैसे स्पष्ट किया जाये।

सभी गतिविधियों में बच्चे जोड़ों, समूहों या फिर एक पूरी कक्षा की तरह करते हैं और स्वांग या लघु–स्केचों की तैयारी करते हैं। यदि आपके बच्चे जोड़ों में काम करने और अपने काम की जिम्मेदारी लेने के आदी नहीं हैं, तो आपको इस गतिविधि का इस्तेमाल चरण दर चरण करना होगा उन्हें उन्मुक्त कार्य जैसे 1 से 9 कथा चित्र पर जाने देने से पहले उनसे शिक्षक–नियंत्रित गतिविधियां–जैसे 1–1 दानव की नकल करो; करवाना होंगी। बच्चे एक साथ मिलकर कैसे काम करते हैं इस पर अपनी प्रतिक्रिया व टिप्पणी देना आवश्यक होता है ताकि उन्हें समूहों में काम करना सीखने में मदद मिले।

यदि आप इस तरह की गतिविधियों का खूब प्रयोग करेंगे तो बच्चे नाटकीकरण की प्रक्रिया के साथ सहज महसूस करने लगेंगे। यदि आप ज्यादा महत्वाकांक्षी होना चाहते हैं और किसी लघु नाटक पर काम करना चाहते हैं, तो ये शुरुआती गतिविधियां पाठ को पढ़ने और उसका अभिनय करने के बीच एक अत्यावश्यक कड़ी का काम करती हैं।

1 राक्षस की नकल करो

स्तर 1 **आयु समूह. सभी,** समय .15 मिनट, **उद्देश्यः**भाषा– शारीरिक अंगों की शब्दावली और ब्यौरे के लिये सुनना। अन्य– जोड़ों में काम करना या शारीरिक संयोजन पर काम करना।

तैयारीः दानवों के विवरणों को तैयार करें। उदाहरण के लिये दो सिरों, तीन बाहों, एक पैर, और एक पूंछ वाला दानव बनाएं।

कक्षा में

1. शरीर के उन विभिन्न अंगों की ओर इशारा करें जिनका आप उपयोग करने जा रहे हों और यह देखने के लिये कि बच्चे उनसे परिचित हैं कि नहीं उनसे उनके नामों को बुलवायें।

2. दो इच्छुक बच्चों से कक्षा के आगे आकर खड़े होने को कहें। उन्हें समझाएं कि उन्हें आपके निर्देशानुसार राक्षस बनाने के लिये इकट्ठे मिलकर काम करना होगा।

3. राक्षस का विवरण बताएं और इन बच्चों की मदद करें ताकि वे अपने हाथों, पैरों और शरीर के दूसरे अंगों से उसे बना पाएं। कक्षा से टिप्पणियां मांगें और सकारात्मक प्रतिक्रिया दें जिससे दूसरे बच्चों को मदद मिलेगी जब दानव बनाने की उनकी बारी आएगी।

4. पूरी कक्षा के साथ यह प्रक्रिया दोहराएं।

5. उन जोड़ों पर ध्यान दें जिन्होंने रोचक दानव बनाए हैं। उनसे अपने दानवों को पूरी कक्षा को दिखाने को कहें।

बाद की गतिविधि– बच्चों से राक्षसों के चित्र बनाने को कहें और एक चित्र प्रदर्शनी या एक राक्षस सूची बनाएं।

बदलाव–बच्चे तीन या चार के समूहों में काम करते हुए दानव बनाते हैं। हर समूह में एक बच्चा निर्देश देता है जिसका दूसरे बच्चे अनुसरण करते हैं। शिक्षक पूरी कक्षा में घूमते हैं, किसी एक दानव का वर्णन करते हैं और फिर दूसरे बच्चे उसकी पहचान करते हैं।

1.2 मैं कौन हूँ

स्तर–1

आयु समूह– ए. व बी.

समय–15 मिनट

लक्ष्य भाषा– पाठ्यपुस्तक के वाक्यांशों को दोहराना।

अन्य– बच्चों को जोड़ों में काम करने के लिये प्रोत्साहित करना, संयोजन पर काम करना और बच्चों को प्रेरित करना कि वे पाठ्यपुस्तक में से भाषा को दोहराएं।

वर्णन– अपने किताब के किसी पन्ने पर दिये गये चरित्रों को निभाने के लिये बच्चे जोड़ों में काम करते हैं। प्रत्येक जोड़ा बाकी कक्षा को अपना स्वांग दिखलाता है और फिर बाकी बच्चे उन चरित्रों के बारे में अनुमान लगाते हैं और यह याद करने की कोशिश करते हैं कि वे उस समय क्या कह रहे थे।

सामग्री– आपकी पाठ्यपुस्तक।

तैयारी– पाठ्यपुस्तक के किसी यादगार दृश्य पर एक सरल स्वांग की तैयारी करें।

कक्षा में

1. बच्चों से उनकी किताब के चरित्रों के नाम पूछें जैसे पशुओं के इत्यादि।

2. बच्चों को अपना स्वांग दिखाएं। उनसे पूछें कि क्या वे पहचाने कि आप कौन हैं। क्या वे यह याद कर पाते हैं कि वह चरित्र उस समय क्या कह रहा था।

3. बच्चों को बता दें कि उन्हें किताब में से एक स्वांग तैयार करने के लिये जोड़ों में काम करना होगा। उन्हें जोडों में या तिकड़ियों में बांट दें और उन्हें समय दें ताकि वे किताब को फिर देख जाएं, उसमें से एक दृश्य चुनें, और फिर उसे तैयार करें। यह जरूरी नहीं कि दृश्य स्थिर हो, वे उसमें गतिविधि कर सकते हैं।

4. जब अधिकांश जोड़ें तैयार हों, तो तैयारी को रोक दें और कुछ समूहों से अपना दृश्य दिखाने को कहें। दूसरे बच्चों को यह अनुमान लगाना होगा कि वे कौन हैं और उनके चरित्र क्या कह रहे हैं।

बाद की गतिविधि आप या कोई बच्चा इन दृश्यों की तस्वीर ले सकते हैं। बच्चे इन तस्वीरों में कथनों के गोले बना सकते हैं और फिर उन्हें दीवार पर प्रदर्शित कर सकते हैं।

1.3 मूर्तियां

स्तर 1

आयु समूह–ए. एवं बी.

समय 15 मिनट

उद्देश्य भाषा – शब्दावली को दोहराना।

अन्य– बच्चों को जोड़ो में मिलकर काम करने के लिये प्रोत्साहित करना, कल्पनाशक्ति और सृजनशीलता को प्रेरित करना और शारीरिक संयोजन पर काम करना।

वर्णन– बच्चे जोड़ों में काम करते हुए किसी शब्द–परिवार में से किसी एक ऐसे शब्द का स्वांग करेंगे जिस पर उन्होंने काम किया हो। उदाहरण के लिये पेंसिल, पेन और पेंसिल बॉक्स। वे इसे बाकी कक्षा को दिखाते हैं जिन्हें अनुमान लगाना होता है कि वह क्या है।

कक्षा में

1. बच्चों को शब्द–परिवारों के विचार से परिचित कराएं। आप बच्चों से पूछ सकते हैं कि वे उन विषयों के बारे में बताएं जिन पर वे हाल में काम कर रहे थे और उनसे वे शब्द बताने को कहें जिन्हें वे उन विषयों से जोड़ कर देखते हैं। उदाहरण के लिये– कार, ट्रेन, और एक बस। इसके अलावा, आप प्रत्येक विषय से कुछ शब्द लिख सकते हैं और फिर बच्चों से उन शब्दों को विभिन्न शाब्दिक परिवारों में रखने के लिये कहें और उनसे उनके वर्गीकरण का कारण पूछें।

2. बोर्ड पर लिखे इन शब्द परिवारों में से किसी एक परिवार में से एक शब्द चुनें। बच्चों से कहें कि किसी एक शब्द को प्रदर्शित करने वाली मूर्ति बनने जा रहे हैं और उन्हें वह परिवार बता दें जहाँ से आपने वह शब्द लिया है। उस शब्द का स्वांग करें और बच्चों से अनुमान लगवाएं कि वह शब्द कौन सा है।

3. बच्चों को जोड़ों में बांट दें। उनसे बोर्ड पर लिखे शब्द परिवारों में से किसी एक परिवार में से एक शब्द चुनने को कहें।

4. बच्चों को अपनी मूर्ति तैयार करने के लिये कुछ मिनट दें। कक्षा में चक्कर लगाते रहें और बच्चों की मदद करें व उनको प्रोत्साहित करें।

5. अब तैयारी को रोक दें। जोड़ों से अपनी मूर्ति को कक्षा के समक्ष दिखाने को कहें और फिर वे लोग अनुमान लगाएं कि वह क्या है। यदि कोई बच्चे अपनी मूर्ति दिखाने के लिए बिलकुल अनिच्छुक हों, तो उनके साथ जबरदस्ती न करें।

बदलाव– बच्चे अपनी मूर्तियाँ बनाने के लिये तिकड़ियों या चौकड़ियों में भी काम कर सकते हैं।

1.4 सुनो और स्वांग करो

स्तर सभी

आय–समूह सभी

समय– 15.30 मिनट, कहानी पर निर्भर करेगा

उद्देश्य– भाषा– किसी कहानी को सुनना और खास शब्दों और वाक्यांशों पर ध्यान देना।

अन्य– किसी कहानी का चित्रण करने के लिए शारीरिक गतिविधियों का उपयोग करना।

वर्णन–बच्चे कोई कहानी सुनते हैं, और विभिन्न शब्दों को सुनने पर अलग–अलग शारीरिक गतिविधि करते हैं।

सामग्री–एक कहानी, उदाहरण के लिये, विशाल हाथी की कहानी।

तैयारी–

1. एक कहानी चुनें और उसकी एक रूपरेखा लिख लें।

2. इसे कहने का अभ्यास करें, संभव हो तो किसी साथी को सुनाएँ।

3. कहानी से कुछ अहम शब्द चुनें और इन शब्दों का चित्रण करने वाली शारीरिक भंगिमाओं के बारे में सोचें।

4. ये शारीरिक भंगिमाएं करते हुए कहानी कहने का अभ्यास करें।

कक्षा में

कहानी के पहले

1. बच्चों को बता दें कि आप उन्हें एक कहानी सुनाने वाले हैं, पर उन्हें पहले कुछ भंगिमाएं सीखना पड़ेगा।

2. बच्चों से खड़े होने को कहें, संभव हो तो एक गोले में खड़ा करवाएं। गोले में उनके साथ खड़े हो जाएं उन्हें दो या तीन शब्द और भंगिमाएं सिखाते हुए शुरुआत करें। फिर बदले हुए क्रम में इन्हीं शब्दों को दोहराएं और बच्चों से संबद्ध भंगिमाएं करवाएं (बच्चों को शब्दों को कहने की जरूरत नहीं है)।

3. कुछ और शब्द और भंगिमाएं सिखाएं। बच्चों से इन नये शब्दों से जुड़ी भंगिमाएं और पिछले शब्दों की भंगिमाएं एक साथ करवाएं। एक–एक करके कुछ और शब्द और भंगिमाएं सिखाते जाएं जब तक कि आप उन सबका प्रदर्शन और अभ्यास न कर लें।

उदाहरण–

स्वांग के लिये शब्द भंगिमाएँ

विशाल– अपने सिर के ऊपर से शुरू करते हुए अपने हाथों से एक विशाल गोला बनाएं।

हाथी– हाथी की सूंड के माफिक अपनी नाक के सामने एक हाथ हिलाएं।

ऊब– हाथ पर सिर टिकाकर बैठ जाएं और चेहरे पर बोरियत का भाव हो।

नया विचार– चेहरे पर अचानक आये खुशी के भाव के साथ अपने सिर की ओर इशारा करें।

चलना– उस स्थान पर कुछ कदम चलें।

शहर– दोनों हाथ सिर के ऊपर करें जो गगनचुंबी इमारत का इशारा होंगे।

किसी से मिलना– अपने बगल में खड़े किसी व्यक्ति की ओर मुड़ें और हाथ मिलाएँ।

जादू– अपने हाथ उठाएं और उन्हें जादुई धूल बिखेरने की तरह हवा में लहराएँ।

बंदर– एक हाथ से अपना सिर खुजलाएँ और एक हाथ से दूसरे हाथ के नीचे वाली कांख को खुजलाएं।

क्या माजरा है? अपने हाथ खोल दें और प्रश्न पूछने की मुद्रा में अपने कंधे उचकाएँ।

ठीक है (सहमत होना) आपके देश में सहमत होने के लिये जो भी प्रचलित शारीरिक मुद्रा हो।

पागल– पागलपन के लिये आपके देश में जो भी प्रचलित शारीरिक मुद्रा हो।

मगरमच्छ– अपने फैली हुई बाहों से खटाक से बंद होने वाले मगरमच्छ के जबड़े बनाएं।

थकान– अपने शरीर को झुका लें।

सोना– अपने सिर को अपने दोनों हाथों में रख दें।

कहानी की रूपरेखा

विशाल हाथी

यह कहानी है विशाल हाथी, जादुई बंदर और पागल मगरमच्छ की। एक दिन विशाल हाथी ऊबा हुआ था, बहुत ज्यादा ऊबा हुआ था। फिर उसे एक विचार आया। मैं शहर जाऊंगा। वह बोला, तो उसने चलना शुरू किया और वह चलता गया, चलता गया, चलता ही गया। रास्ते में वह जादुई बंदर से मिला।

नमस्ते, जादुई बंदर, वह बोला।

नमस्ते जादुई बंदर ने कहा।

क्या माजरा है? विशाल हाथी ने पूछा।

मैं ऊब रहा हूँ। बहुत ज्यादा ऊब रहा हूँ। जादुई बंदर बोला मेरे पास एक तरकीब है, विशाल हाथी बोला। तुम मेरे साथ शहर क्यों नहीं चलते?

ठीक है, जादुई बंदर बोला।

तो इस तरह उन्होंने चलना शुरू किया और वे चलते गये, चलते गये, चलते ही गये। रास्ते में वे पागल मगरमच्छ से मिले।

नमस्ते, पागल मगरमच्छ उन्होंने कहा।

नमस्ते, पागल मगरमच्छ बोला।

क्या माजरा है? विशाल हाथी ने पूछा।

मैं ऊब रहा हूँ पागल मगरमच्छ बोला। बहुत ज्यादा ऊब रहा हूँ।

मेरे पास एक तरकीब है। विशाल हाथी बोला। तुम हम लोगों के साथ शहर क्यों नहीं चलते।

ठीक है। पागल मगरमच्छ ने कहा।

तो उन्होंने चलना शुरू किया और वे चलते गये, चलते गये, चलते गये, चलते गये, चलते गये, चलते ही गये, चलते ही गये, चलते ही गये।

आह, मैं तो थक गया, विशाल हाथी बोला।

आह, मैं भी थक गया, जादुई बंदर बोला।

आह, मैं भी थक गया, पागल मगरमच्छ बोला। और वे सब सो गये।

कहानी कहना

4. बच्चों से खड़े होने को कहें और यह सुनिश्चित कर लें कि वे सभी आपको देख पा रहे हों। फिर से यदि संभव हो, तो गोला बनाना बेहतरीन विकल्प है। यदि आप उन्हें पिछले पाठ में भंगिमाएं सिखा चुके हैं, तो उन्हें सामने लाएं। बच्चों से कहें कि वे कहानी को सुनें और हर बार जब उन शब्दों में से कोई शब्द आए जिनका आप अभ्यास करते रहे थे, तो उसके अनुरूप उपयुक्त भंगिमा बनाएं।

5. कहानी सुनाएँ। सुनाते समय भंगिमाएँ भी बनाते जाएँ। बच्चों को प्रोत्साहित करें कि वे भी आपके साथ भंगिमाएँ बनाएँ।

6. इसी कक्षा में या अगली किसी कक्षा में कहानी फिर से सुनाएं। बार–बार सुनाए जाने पर आप महसूस करने लग सकते हैं कि अब आपको भंगिमाए बनाने की जरूरत नहीं है।

बाद की गतिविधि

• भंगिमाओं के साथ कहानी कहने के बाद आप विभिन्न गतिविधियाँ कर सकते हैं।

• कहानी पर आधारित एक कार्टून पट्टी या किताब बनायें।

• भंगिमाओं वाले शब्दों के लिये लिखित कहानी में जगह छोड़ें।

• बच्चों से कहानी की तस्वीरों को क्रम में लगाने को कहें और प्रत्येक के लिये एक वाक्य लिखें।

• उनसे कहानी में कुछ परिवर्तन करने के संबन्ध में सोचने को कहें।

• कहानी को कुछ दर्शकों के सामने प्रस्तुत करें। आप मुखौटों, हैटों इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं।

विविधताएँ–

• यदि शब्द जाने–पहचाने हैं, तो बच्चों को भंगिमाएँ दिखलाएँ और उनसे शब्दों के बारे में अनुमान लगाने को कहें।

• तस्वीरों के द्वारा शब्दों को प्रस्तुत करें और फिर बच्चों से कहें कि वे स्वयं शब्दों के अनुसार भंगिमाएँ तैयार करें।

• भंगिमाओं के साथ शब्दों का प्रयोग करने के बाद बच्चों से कहानी के बारे में अनुमान लगाने को कहें।

• यदि कहानी तीन या चार चरित्रों वाली है, तो बच्चों को प्रत्येक चरित्र के लिये एक बच्चे के हिसाब से छोटे समूहों में बांट दें और जैसा–जैसा आप बताते जाएं वैसी–वैसी भंगिमाएँ करने के लिये उनसे कहें।

टिप्पणियाँ

आप एक या एक से ज्यादा पाठों के लिये कहानी कहने से पहले कहानी के पहले की गतिविधि करने के इच्छुक हो सकते हैं। एक बुनियादी ढाँचे को दोहराकर आगे बढने वाले इस प्रकार की कुछ वास्तविक बाल कहानियाँ भी हैं जिनका इस तरह की गतिविधि के लिये उपयोग किया जा सकता है।

1.5 हम कौन हैं?

स्तर – दो व तीन

आयु समूह–बी व सी

समय– या तो अलग–अलग पाठों में 15–15 मिनट के तीन कालखंड या 15–30 मिनट तैयारी के लिए और 15 मिनट प्रदर्शन के लिए।

उद्देश्य–भाषा– पिछले पाठों की भाषा को दोहराना और उसका पुनर्अभ्यास करना।

अन्य– चरित्र का चित्रण करने के लिये उपयुक्त भंगिमाओं, शारीरिक भाषा और स्वर के बारे में सोचना और प्रयोग करना तथा एक लघु नाटिका में मंचन करने (प्रवेश, प्रस्थान और शारीरिक गतिविधियों) के बारे में सोचना।

वर्णन– बच्चे एक नाटिका की तैयारी करने के लिये दो या तीन के समूहों में काम करते हैं जहां चरित्रों के एक समूह के बीच कुछ बातचीत होती है। जैसे–हम मान लेते हैं, कि एक बूढ़े व्यक्ति और जल्दबाजी कर रहे व्यक्ति के बीच बातचीत। कक्षा नाटिका को देखती है और फिर चरित्रों के बारे में अनुमान लगाती है।

सामग्री–कार्ड, जिन पर चरित्र लिखे हों, जैसा कि बॉक्स में दिखाया गया है (ये बच्चों की मातृभाषा में भी लिखे जा सकते हैं) या कमरे में काफी जगह होना चाहिये।

तैयारी 1. एक सरल संवाद चुनें जिस पर आप बच्चों से काम करवाना चाहते हों। तय करें कि बातचीत कहां होती है, उदाहरण के लिये सड़क पर या किसी होटल में। यदि आपके बच्चे वाकपटु हैं, तो आप उन्हें सिर्फ परिस्थिति समझाकर बातचीत का जिम्मा उन्हीं पर छोड़ सकते हैं। बातचीत और परिस्थिति के उदाहरण नीचे देखिए।

उदाहरण–सड़क पर होने वाली एक बातचीत

(अ) क्षमा कीजिये! पार्क कहाँ है?

(ब) वह उधर है।

(अ) कहां, मैं नहीं देख पा रहा हूँ।

(ब) उधर देखिये जहाँ मैं इशारा कर रहा हूँ। वहाँ, नदी के पास।

ऐसी स्थिति जहाँ बच्चे अपने मन से सोचकर बातचीत करते हैं

शनिवार की दोपहर है। एक व्यक्ति टीवी देखना चाहता है। दूसरा बाहर जाकर फुटबॉल खेलना चाहता है और तीसरा व्यक्ति थोड़ी शांति और मौन चाहता है।

2. ऐसे कार्ड तैयार करें जिन पर चरित्र लिखे हों (चरित्रों के लिये सुझाव देखें) हर बच्चे के लिये आपको एक कार्ड चाहिये पर चरित्रों का दोहराव किया जा सकता है 24 बच्चों की कक्षा के लिये आठ चरित्र पर्याप्त हैं।

उदाहरण– चरित्रों के लिए सुझाव

एक बहरा व्यक्ति

जल्दबाजी करता एक व्यक्ति

टूटे हुए हाथ वाला एक व्यक्ति

टूटे हुए पैर वाला एक व्यक्ति

एक व्यक्ति जिसे बहुत तेज जुकाम हुआ है

एक बूढ़ा व्यक्ति

एक व्यक्ति जिसने बहुत सा सामान खरीदा हुआ हो

रोलर स्केट्स पर चलता एक बच्चा

एक बहुत थका हुआ व्यक्ति

कुत्ते के साथ एक व्यक्ति

एक व्यक्ति जिसका मिजाज बिगड़ा हुआ हो

कक्षा में बच्चों को उनकी नाटिका के लिये तैयार करना

इसके लिये एक पूरे पाठ की जरूरत हो सकती है।

1. यदि बच्चों को अलग अलग चरित्र निभाने की आदत नहीं है, तो आप शुरू में चरित्र के भीतर घुसने में उनकी मदद कर सकते हैं। आपके कार्डों पर लिखे चरित्रों में से किसी एक को बोर्ड पर लिखना है।

2. उस चरित्र के शारीरिक रूप के बारे में सोचने के लिये बच्चों की मदद करें। स्वयं या फिर बच्चों से उस चरित्र की तस्वीर बोर्ड पर बनाने को कहें। फिर बच्चों से अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग करने को कहें और उनसे यह दिखाने को कहें कि वह चरित्र कैसे खड़ा होता है, कैसे चलता है, किस तरह अपना सिर पकड़ता है इत्यादि।

3. चरित्र के व्यक्तित्व से तारतम्य स्थापित करने के लिये कुछ इस तरह से उनकी मदद करें। चरित्र के दिमाग में से निकलता हुआ एक विचार वृत्त बनाएं। यदि चरित्र थका हुआ या बुरे मिजाज में है, तो आप बच्चों से पूछ सकते हैं कि उन्हें ऐसा क्यों लगता है। बच्चों से पूछें कि उन्हें क्या लगता है कि वह चरित्र क्या सोच रहा है और क्या महसूस कर रहा है।

4. सभी बच्चों से खड़े होने को कहें और फिर उनसे वह चरित्र बनने को कहें। उनके द्वारा उपयोग किये जाने वाली शारीरिक मुद्राओं और भंगिमाओं पर अपनी टिप्पणी दें और उन्हें जितना संभव हो उतना सृजनशील होने के लिये प्रोत्साहित करें।

5. उनसे उस चरित्र के अंदाज में अपना नाम बुलवाएं। अपनी आवाजों का प्रयोग वे किस तरह करते हैं इस पर टिप्पणी करें।

नाटिका की तैयारी करना

6. आपने जो चरित्र चुने हैं उन्हें बोर्ड पर लिख दें। बच्चों को बता दें कि वे सब कोई न कोई चरित्र बनने जा रहे हैं। आप पहले, दूसरे और तीसरे चरण को दोहरा सकते हैं यदि आपको लगता है कि कक्षा को अपने चरित्र से तारतम्य बिठाने में मदद चाहिए।

7. कार्ड बांट दें और बच्चों से अपना अपना चरित्र होने की कल्पना करने को कहें।

8. यदि आप किसी वार्तालाप का इस्तेमाल करने जा रहे हैं तो उसे बच्चों को सिखा दें।

9. बच्चों को स्थिति समझा दें, उदाहरण के लिये–किसी बस में हो सकता है कि आप दृश्य के हिसाब से कुछ डेस्क और कुर्सियां खिसकाना चाहें, इसमें बच्चों की मदद ले लें। सारा दृश्य सरल ही रखें। यह सुनिश्चित कर लें कि प्रवेश और निकास स्थान सुस्पष्ट हों – उदाहरण के लिये–कमरे के दरवाजे, चौराहे पर मिलती सड़कें एवं किसी घर का प्रवेश द्वार।

10. बच्चों को जोड़ों या छोटे समूहों में बांट दें। वार्तालाप पर काम करने के लिये उन्हें काफी समय दें। उन्हें याद दिला दें कि वे जगह का पूरा उपयोग करें न कि एक जगह खड़े होकर अभिनय करते रहें। जब वे यह काम कर रहे हों तो उनके बीच में घूमते रहें और उनकी नाटिकाओं पर टिप्पणी करें।

नाटिका का प्रदर्शन

11. इसी पाठ में या फिर किसी दूसरे पाठ में, कुछ समूहों से अपनी नाटिकाएं दिखाने को कहें। बाकी कक्षा अनुमान लगाएगी कि वे कौन हैं।

12. इन प्रदर्शनों पर अपनी प्रतिक्रिया दें। बच्चों से पूछें कि उन्हें क्या अच्छा लगा और प्रदर्शन को और कैसे सधारा जा सकता है।

13. यदि आप यह गतिविधि नियमित रूप से करने वाले हैं और यदि उचित हो, तो गतिविधियों के सकारात्मक बिन्दुओं और बच्चों द्वारा दिये गये सुझावों का एक पोस्टर बनाएं। अगली बार जब आप ऐसी गतिविधि ा करेंगे तो बच्चे उससे मार्गदर्शन ले सकते हैं।

टिप्पणियां–यदि आपके बच्चे इस प्रकार की गतिविधि के लिये नये हैं, तो पहला भाग बच्चों को उनकी नाटिका के लिये तैयार करना। संभवतः एक पूरा पाठ ले सकता है। यदि आप किसी नाटक की तैयारी कर रहे हैं, तो आप इस गतिविधि का उपयोग बच्चो को उनकी भूमिकाओं को विकसित करने में तथा अपने संवादों को याद करने में मदद करने के लिए कर सकते हैं।

विविधताएं यदि आपके पास वीडियो कैमरा है, तो समूहों के प्रदर्शन देने की बजाय आप दृश्यों का वीडियो बना सकते हैं।

–बच्चे दृश्य के लिये संवाद लिख सकते हैं या उसका वर्णन लिख सकते हैं।

के साथ इन इशारों का अभ्यास करें और फिर उनसे पूछें कि क्या उन्हें लगता है कि वे इशारे स्पष्ट हैं या वे उन्हें बदलना चाहते हैं।

7. कुछ बच्चों से बारी–बारी से कक्षा को नियंत्रित करवाएं। उनकी भंगिमाओं पर टिप्पणी दें, पर पहले उन्हें यह स्पष्ट कर दें कि भंगिमाएं और हाव भाव बड़े तथा जानबूझकर किये गए होने चाहिए और अचानक नहीं बदले जाने चाहिए।

8. हर समूह से एक संगीत सभा की तैयारी करने को कहें। जब समूहों की तैयारी पूरी हो जाए तो वे अपने अपने कार्यक्रम को कक्षा के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

टिप्पणियाँ–यह तकनीक किसी भी लघु छंद या गीत के साथ उपयोग की जा सकती है। इस वर्ग के दूसरे छंद और गीत तैयार करने में भी यह तकनीक उपयोगी है।

2.गाने, छंद और धुनें

गाने और छंद अभिनय के लिये पाठों के प्रचुर स्रोत उपलब्ध कराते हैं। ये छोटे बच्चों की कक्षाओं में खासतौर पर लाभप्रद साबित होते हैं, जो कई बार अपनी खुद की भाषा नहीं बना पाते। लय और माधुर्य की मदद से भाषा को सीखना और उसे याद रखना आसान हो जाता है तथा शारीरिक गतिविधि और मुद्राएं अर्थ को स्पष्ट करने में मदद करते हैं। गाने बच्चे के पूरे व्यक्तित्व को हर तरह से – दृश्य के श्रवण और गत्यात्मक (शारीरिक) माध्यमों के द्वारा आकर्षित करते हैं। गाने, छंद और धुनें एक ज्यादा स्वतंत्र तरह के अभिनय की ओर शुरुआती कदम हो सकते हैं। बच्चों को शब्द देकर हम उन्हें स्वतंत्र छोड़ देते हैं ताकि वे शारीरिक भाषा और मुद्राओं के द्वारा भावनाओं तथा चरित्र को अभिव्यक्त करने पर ध्यान दे सकें। बाद में, जब उनका आत्मविश्वास बढ़ जाता है और वे अपने शरीर की संभावनाओं से परिचित हो जाते हैं, तब वे अपने खुद के शब्द भी इस्तेमाल करने लग सकते हैं।

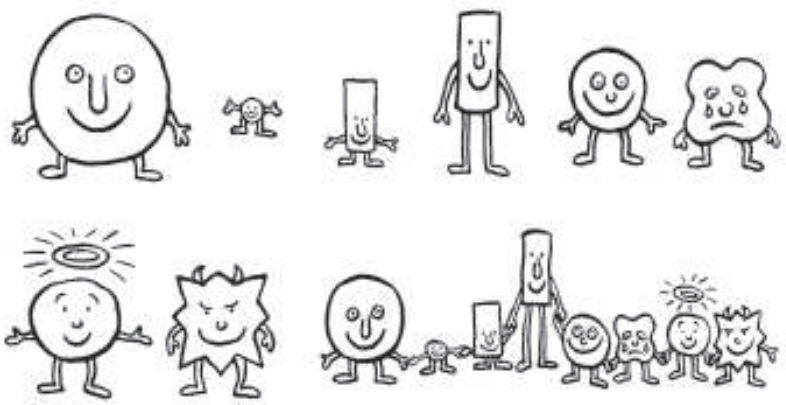

आप अक्सर देखेंगे कि निर्देश दो हिस्सों में होते हैं। पहले भाग में बच्चे एक पूरी कक्षा की तरह से गाने या गीत के शब्दों और उसके अनुसार भंगिमाओं को सीखते हैं। दूसरे भाग में वे छोटे–छोटे समूहों में अपने खुद के रूपांतर पर काम करते हैं। वे भंगिमाओं को बदल कर या गद्य को अपनाकर इसे अपना रंग दे सकते हैं। आमतौर पर सबसे अच्छी बात होती है कि ये दोनों भाग अलग–अलग पाठों में आएं। पाठों के बीच का जो समय होता है उससे भाषा को मन में बिठाने और आत्मसात करने का मौका मिलता है, फिर बाद में भंगिमाओं और छंद को जोड़ना आसान हो जाता है।

किसी गतिविधि पर कितना नियंत्रण रखना है इसके बारे में शिक्षकों और बच्चों, दोनों का दृष्टिकोण अलग हो सकता है। शिक्षक के लिये, कभी–कभी यह मुश्किल होता है कि बच्चों को उनके काम में पूरी स्वतंत्रता दे दी जाये और कुछ बच्चे निर्णय करने के लिये मिली पूरी स्वतंत्रता के बीच असहज महसूस करते हैं। आपको यह तय करना होगा कि आप किस तरह का संतुलन चाहेंगे और फिर उसकी तरफ कदम दर कदम आगे बढ़ें।

2.1 गीत का आयोजन

स्तर – सभी

आयु वर्ग सभी

समय – 10–15 मिनिट

उद्देश्य–भाषा– शब्दों पर जोर देने और लय का अभ्यास करना

अन्य– सामूहिक रूप से गाने का अभ्यास करना, शारीरिक मुद्राओं और सामूहिक गतिशीलता के द्वारा संवाद करने पर काम करना।

वर्णन– बच्चे एक लघु गीत सीखते हैं और उसे सामूहिक रूप से गाते हैं। वे अपने शब्दों की गति और स्वर को नियंत्रित करने के लिये शारीरिक मुद्राएं ईजाद करते हैं और एक संगीत सभा की तैयारी करते हैं।

सामग्री–यदि आप चाहते हैं कि बच्चे पढ़ने का अभ्यास करें, तो बड़े–बड़े कार्ड बनाएं। प्रत्येक पर उस गीत का एक शब्द या वाक्यांश लिखा हो।

2.3 मैं बड़ा हूँ, मैं छोटा हूँ

स्तर – 1

आयु वर्ग – ए व बी

समय 20 मिनट कविता सीखने के लिए। 20 मिनट प्रदर्शन की तैयारी के लिए (किसी दूसरे पाठ में)।

उद्देश्य भाषा– विशेषणों (बड़ा, छोटा, नाटा, लंबा, अच्छा, बुरा, खुश, दुखी) को प्रस्तुत करना और उनका अभ्यास करना।

अन्य– बच्चों को प्रेरित करना कि वे अलग–अलग गतिविधियों के साथ उनके अनुरूप विशेषणों को जोड़ें तथा सामूहिक गतिशीलता पर काम करें।

वर्णन–बच्चे किसी कविता पर अभिनय करते हैं

तैयारी 1. कविता को याद करें

मैं बड़ा हूँ, मैं छोटा हूँ

मैं बड़ा हूँ।

मैं छोटा हूँ।

मैं नाटा हूँ।

मैं लंबा हूँ।

मैं खुश हूँ।

मैं दुःखी हूँ।

मैं अच्छा हूँ।

मैं बुरा हूँ।

हम दोस्त हैं।

कविता पूरी हुई।

2. इन चित्रों का अभ्यास करें।

कक्षा में कविता याद करना

1. विश्षेणों को सिखाने के लिए यहां दिए गए चित्रों जैसे चित्र बोर्ड पर बनाएं।

2. प्रत्येक विशेषण के लिए बच्चों से कोई भंगिमा या स्वांग सुझाने को कहें।

3. आप विशेषण बोलते जाएं और बच्चों से उनके अनुसार भंगिमाएं बनवाएं।

4. एक चरित्र के मुंह से निकलता हुआ एक संवाद–गोला बनायें। उसमें मैं बड़ा हूँ लिखें। बाकी चरित्रों के लिये भी संवाद–गोले बनायें और बच्चों से पूछें कि वे क्या कह रहे हैं। शब्दों को इन गोलों में लिख दें।

5. बच्चों से खड़े होने को कहें। कविता की पहली आठ पंक्तियां एक साथ कहें, साथ में भंगिमाएं भी बनाते जाएं।

मैं बड़ा हूँ।

मैं छोटा हूँ।

मैं नाटा हूँ।

मैं लंबा हूँ।

मैं खुश हूँ।

मैं दुखी हूँ।

मैं अच्छा हूँ।

मैं बुरा हूँ।

6. फिर उन्हें अंतिम दो पंक्तियां सिखाएं और उनसे इन पंक्तियों के लिये उपयुक्त भंगिमा या स्वांग के बारे में सोचने को कहें।

हम दोस्त हैं।

कविता पूरी हुई।

7. कविता कहते हुए भंगिमाएँ दोहराएँ।

कविता पर अभिनय करना

1. कविता को कक्षा के सामने रखें, उसे बोलते जाएँ और साथ में भंगिमाएँ भी बनाते जाएं।

2. बच्चों को चार या आठ के समूहों में बाँट दें। उन्हें बताएँ कि आप उनसे पूरी कविता पर अभिनय कराना चाहते हैं। इस समय या तो आप बच्चों को मार्गदर्शन दे सकते हैं या फिर उन्हें स्वतंत्र रूप से काम करने दे सकते हैं। यह निर्भर करेगा बच्चों की उम्र पर तथा अकेले काम करने के उनके अनुभव पर। किसी भी स्थिति में उन्हें ये चीजें तय करना होंगी।

कविता का कौन सा भाग किसको कहना है (प्रत्येक बच्चा एक पंक्ति कहे सब मिलकर कहें)

.वे किस तरह खड़े होंगे?(लाइन में या गोले में?)

.क्या वे चलेंगे–फिरेंगे? (आगे–पीछे चलेंगे या गोले में)

.कविता कैसे शुरू होगी और कैसे खत्म होगी?

3. बच्चों को अपनी प्रस्तुति का अभ्यास करने के लिए 10–15 मिनट दें। जब वे उस पर काम कर रहे हों, तो कक्षा में चक्कर लगाते हुए उन्हें प्रोत्साहित करते रहें और जहां जरूरी हो वहां उनकी मदद करें। उन्होंने जो कुछ भी किया हो उस पर अपनी निष्पक्ष राय दें। यदि आप यह कहें कि आपको उनका काम पसंद आया, तो उनके काम पर और रोशनी डालने के लिये उन्हीं से पूछें कि उन्हें क्या लगता है कि आपको उनका काम क्यों पसंद आया।

बाद की गतिविधि. एक या ज्यादा समूहों से अपनी कविता को कक्षा के समझ प्रस्तुत करने को कहें।

. कविता के लिये बच्चे खुद ही तस्वीरें बनाएं।

विविधता 1 बड़े बच्चों के साथ आप इस गतिविधि को और चुनौतीपूर्ण और सृजनात्मक बना सकते हैं। कविता की पहली चार पंक्तियां प्रस्तुत करके शुरुआत करें, और फिर लोगों तथा उनकी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये दूसरे विशेषणों (जैसे वृद्ध, युवा, गर्म, ठंडा, गंदा, स्वच्छ, दयालु, स्वार्थी) के बारे सोचने के लिए अपने अपने दिमाग लड़ाएं। बच्चों से कविता में चार या आठ पंक्तियां और जोड़ने को कहें। फिर उनसे ऊपर की ही तरह अपनी प्रस्तुति को तैयार करने को कहें।

विविधता 2 कविता में आ रहे व्यक्ति को बदल दें, जैसे इसके लिए तुम, वह, हम या वे का इस्तेमाल कर सकते हैं। पर प्रस्तुति में की जानी वाली भंगिमाओं से कर्ता सर्वनाम का तात्पर्य अर्थात वह किसके लिए आ रहा है यह बिलकुल स्पष्ट समझ में आना चाहिए।

3 पुतलियां और सहायक वस्तुएं बनाना

छोटे विद्यार्थियों की कक्षा में पुतलियां काफी बहुउपयोगी साधन होती हैं। बच्चे उन्हें बनाते समय भाषा का उपयोग करते हैं। कई बार वे शिक्षक की तुलना में पुतलियों की सहायता से समझायी गयी बात जल्दी समझते हैं और आमतौर पर बच्चों को पुतलियों को चलाने के प्रति काफी उत्साह रहता है। पुतली बनाने की प्रक्रिया अपने आप में एक लाभप्रद कला की गतिविधि है और अंतिम उत्पाद वस्तु, पुतली आगे की गतिविधि में अहम भूमिका अदा करती है।

जिस तरह बच्चे पुतलियों की ओर प्रतिक्रिया करते हैं, वह देखना बहुत आकर्षक होता है। वे हकीकत को भी छोड़ने के लिये तैयार होते हैं और पुतली के साथ ऐसे बर्ताव करते हैं जैसे वह वास्तविक हो। यह विद्यार्थियों को भाषा का सृजन करने के लिए प्रेरित करने का उपयोगी तरीका है। (अंग्रेजी पढ़ाने के संदर्भ में) कई शिक्षकों के पास सिर्फ अंग्रेजी बोलने वाली पुतली होती है और वे अपने बच्चों से पूरे पाठ के दौरान अंग्रेजी बुलवाने के लिए प्रभावशाली ढंग से इसका उपयोग कर सकते हैं। इसके अलावा पुतलियां संवाद की वास्तविक चुनौतियों को प्रस्तुत करती हैं क्योंकि बच्चे दूसरे विद्यार्थियों द्वारा बनायी गई पुतलियों के नाम, उम्र, पसंद और नापसंद खोजने की कोशिश करते हैं। जब बच्चे किसी पुतली को अपने वक्ता के रूप में इस्तेमाल करते हैं, तो वे अक्सर अपनी चुप्पी से निजात पाते हैं और उसके पीछे छुपकर वे उस गतिविधि में जिस तरह से भाग ले पाते हैं, अगर उन्हें खुद वह भूमिका करने को कहा जाए, तो वे शायद उस तरह से न कर पाएं। भाषा सीखने की तरफ एक सीढ़ी पार हो जाती है।

इस अध्याय में आप विभिन्न तरह की पुतलियों को बनाने के निर्देश पाएंगे। वे सभी बहुत सरल हैं तथा अस्थायी तरीकों जैसे मुट्ठियों पर चेहरे से लेकर लंबी चलने वाले तरीके जैसे मोजे वाली पुतलियां शामिल हैं। आप पहले से तैयार पुतलियां भी इस्तेमाल कर सकते हैं, पर यदि बच्चे खुद उन्हें बनाएंगे तो उनके भीतर पुतलियों के प्रति अपनत्व का एहसास होगा जब वे उन्हें नाटक की गतिविधियों में इस्तेमाल करेंगे। इस तरह से गाना, संवाद, प्रकटीकरण, नाटक सब कहीं ज्यादा व्यक्तिगत और यादगार हो जाते हैं। अधिकांश पुतलियां 10–15 मिनट में बनायी जा सकती हैं और फिर आप भाषा पैदा करने के लिये उनका उपयोग करने पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

यहां बड़े सरल पुतली रंगमंच बनाने के लिए भी निर्देश दिए गए हैं। ये रंगमंच बुनियादी हैं और जब बच्चे कक्षा के अपने बाकी साथियों को पुतलियों की गतिविधियां दिखाते हैं, तो ये उसे एक अलग रंग प्रदान करते हैं क्योंकि इन गतिविधियों का मुख्य उद्देश्य जनता के लिए कुछ बनाना नहीं है बल्कि पुतलियों के इस्तेमाल में बच्चों को आने वाले मज़े का भाषा निर्माण के लिये उपयोग करना है।

अध्याय के आखिरी भाग में सरल सहायक सामग्री बनाने के लिए कुछ निर्देश दिए गए हैं। जैसे–टोपी या मुखौटे, जिन्हें आप गाने, स्वांग या नाटक करते समय इस्तेमाल कर सकते हैं। ये सब बनाना आसान है और इनके लिये बड़ी विस्तृत सामग्री या बहुत अधिक समय की जरूरत नहीं होती। इसके बावजूद ये बच्चों को उनकी भूमिका के भीतर घुसने में तथा नाटक की दुनिया का हिस्सा बनने में मदद करने के लिए बहुत उपयोगी उपकरण हैं। पुतलियों की तरह ये उन बच्चों के लिये कवच का काम करते हैं जिन्हें बोलने में झिझक महसूस होती है।

3.1 उंगली पर चेहरा

स्तर– 1.2

आयु समूह– अ, व, ब

समय– 5.10 मिनट

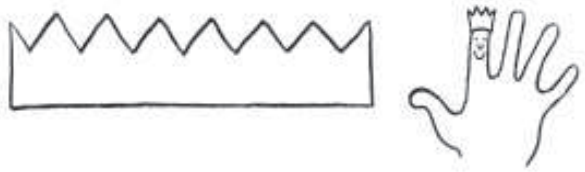

वर्णन– बच्चे अपनी उंगलियों पर चेहरे बनाते हैं। वे अपने लिए टोपी या स्कर्ट भी बना सकते हैं।

उद्देश्य– भाषा. निर्देशों का पालन करना।

अन्य– अभिनय करने के लिए पुतलियां तैयार करना या हस्त–संयोजन पर काम करना।

सामग्री–धोए जा सकने वाले (वॉशेबल) फेल्ट–टिप वाले पेन सफेद या रंगीन कागज की पट्टियां यदि आप स्कर्ट बनाना चाहते हों, तो कैंची और उंगलियां।

तैयारी– अपनी उंगली पर पुतली बनाने का अभ्यास करें।

कक्षा में–

1. बच्चों को बता दें कि उन्हें पुतली बनाना है और आप उन्हें उसे बनाना सिखाने वाले हैं।

2. वॉशेबल पैनों से अपनी पहली उंगली की आधी उंचाई तक एक चेहरा बनाए।

3. कागज की एक पट्टी लें और उसे अपनी उंगली के सिरे से लगाते हुए गोलाकार में चिपका लें।

4. बच्चों से पूछ लें कि उन्हें किस–किस चीज की जरूरत है। सुनिश्चित कर लें कि गतिविधि शुरू करने से पहले सभी के पास जरूरी सामग्री हो।

5. बच्चों को अपनी पुतलियां बनाने के लिये 5–10 मिनट दें।

विभिन्नता–बच्चे अपने साथी की उंगली पर पुतली बनाते हैं।

3.2 मुट्ठी पर चेहरा

स्तर – 1.2

आयु समूह– अ, व, ब

समय– 5.10 मिनट

उद्देश्य–भाषा– निर्देशों का पालन करना।

अन्य– पुतलियां बनाना।

वर्णन– बच्चे अपनी मुट्ठियों पर चेहरे बनाते हैं (चित्र देखें)। वे पुतली से बुलवाने के लिये अपने अंगूठे को उठा–बिठा सकते हैं।

सामग्री– वॉशेबल फेल्ट–टिप पेन और हाथ।

तैयारी– अपनी मुट्ठी पर पुतली बनाने और उसे बात करवाने का अभ्यास करना।

कक्षा में–

1. यदि आप किसी नाटक के लिये पुतलियों का उपयोग करने वाले हों, तो बच्चों को बता दें कि चरित्र कौन–कौन से हैं।

2. उनसे अपनी मुट्ठियाँ बंद करने को कहें और उन पर आँखें, होंठ और बाल बनाने को कहें।

3. अपने अंगूठे को उठाने और बैठाने का अभ्यास करें ताकि आप बच्चों को दिखा सकें कि पुतली को बोलते हुए कैसे दिखाना है।

4. बच्चों को जोड़ों में बांट दें और उनसे एक–दूसरे की मुट्ठियों पर पुतलियाँ बनवाएं।

3.3 उंगली पर चढ़ायी जाने वाली पोंगली की पुतली (फिंगर ट्यूब पपेट)

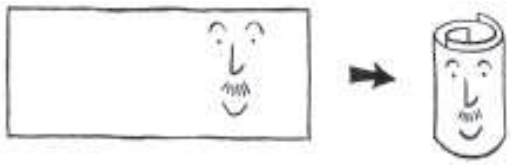

स्तर– 2.3

आयु समूह– अ व ब

समय– 15 मिनट

उद्देश्य– भाषा– निर्देश देना और प्राप्त करना या शारीरिक शब्दावली।

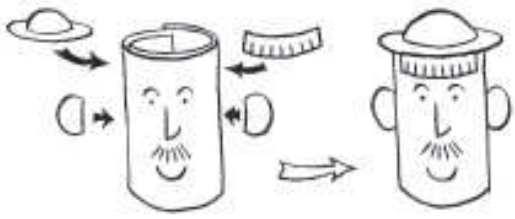

अन्य– सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करना और कक्षा में इस्तेमाल करने हेतु पुतलियाँ बनाना।

वर्णन–बच्चे कागज की एक पोंगली बनाते हैं ताकि उसे अपनी उंगली पर फिट कर सकें। वे उस कागज पर एक चेहरा और पोशाक बना देते हैं। इन पुतलियों में यह फायदा है कि यह थोड़ा ज्यादा समय तक चल सकते हैं और सिर्फ उंगली पर चेहरा बना लेने की तुलना में ज्यादा विस्तृत हो सकते हैं। आप इन पुतलियों को छंद – लालाजी लालाजी एक लड्डू दो – के साथ प्रयोग कर सकते हैं।

सामग्री– सफेद या रंगीन कागज के टुकड़े और रंगीन पेन या फैल्ट टिप वाले पेन।

तैयारी– बच्चों को दिखाने के लिए एक पुतली खुद तैयार करें।

कक्षा में–

1. बच्चों को अपनी पुतली दिखाएं और उन्हें बताएं कि उन्हें भी वैसी ही पुतली बनाना है।

2 कागज का आयताकार टुकड़ा काट लें। उसे बच्चों की उंगलियों की ऊंचाई के लगभग होना चाहिए और इतना लंबा होना चाहिए कि उसे दो बार लपेटा जा सके। दोहरा लपेटने से कागज को थोड़ी और मजबूती मिल जाती है।

3. पुतली के नैन–नक्श बनाएं। रंगीन कागज के टुकड़े और रंगीन पेनों का इस्तेमाल करते हुए उसके बाल, कान व बटन इत्यादि बनाएं। जब आप ऐसा करें तो कान बनाएं, सिर पर चिपकाएं जैसे सरल निर्देश देते चलें।

4. बच्चों से पूछें कि उन्हें कौन–कौन सी सामग्री चाहिए और उन्हें बता दें कि शुरुआत के पहले वे यह सुनिश्चित कर लें कि उनके पास सारी सामग्री मौजूद हो।

5. एक बार फिर निर्देशों को दोहराएं।

6. उन्हें बताएं कि वे बारी–बारी से एक–दूसरे को पुतली बनाने के बारे में निर्देशित करते रहें। जब वे काम कर रहे हों, कक्षा में घूमें, उनके काम पर टिप्पणी करें और जरूरत हो तो उनकी मदद करें।

7. एक सरल–सी पुतली बनाने में बच्चों को लगभग 15 मिनट लगेंगे। पर यदि वे कुछ ज्यादा विस्तृत पुतली बनाना चाहते हों तो वे ज्यादा समय भी ले सकते हैं।

3.4 स्पंज पुतली

स्तर– सभी

आयु समूह– अ व ब

समय– 20 मिनट

उद्देश्य–भाषा– निर्देशों का पालन करना।

अन्य– सहयोग पर काम करना और एक–दूसरे की मदद करना।

वर्णन बच्चे एक नहाने वाले स्पंज को आधार बनाकर पुतली बनाते हैं। आप इन पुतलियों को पाठ्यपुस्तक को सजीव बनाने में इस्तेमाल कर सकते हैं।

सामग्री हर बच्चे के लिये सस्ता नहाने वाला स्पंज, गोंद और कागज, कार्ड या फेल्ट के टुकड़े।

तैयारी बच्चों को दिखाने के लिए पहले खुद एक पुतली बनाएं।

कक्षा में–

1. अपनी जरूरत का सारा सामान पास में ही रखें। बच्चों को स्पंज दिखाएं और उनसे कहें कि जब आप पुतली बनाएं तो वे लोग आपको ध्यान से देखें। उन्हें सिखाते समय पूरी प्रक्रिया को जबानी बताते चलें।

2. अपनी उंगलियों और अंगूठे के लिये स्पंज के पीछे छेद कर लें।

3. आंख, कान, बाल, दांत इत्यादि काट के बनाएं, फिर इन्हें स्पंज पर चिपका दें।

4. छेदों में अपनी उंगलियां डालें और उनका उपयोग स्पंज को बात करवाते दिखाएं।

5. बच्चे काम शुरू करें इसके पहले उनसे उनकी जरूरत की सामग्री इकट्ठी करवा लें।

6. उनसे जोड़ियों में अपनी पुतलियां बनाने को कहें, जहां वे एक–दूसरे की मदद भी करते रहें और सुझाव भी देते रहें।

7. जब वे लोग अपनी पुतलियां बना रहे हों तो कक्षा में घूमें और उन्हें प्रेरित करते रहें।

3.5 ओरीगमी पुतली

स्तर– सभी

आयु समूह– ब, व, स

समय– आधार स्वरूप बनाने के लिए 15 मिनट और उसे सजाने के लिए 15 मिनट।

उद्देश्य– भाषा– बोले जा रहे निर्देशों का पालन करना।

अन्य– हस्त कौशल विकसित करना। शारीरिक लक्षणों के आधार पर एक चरित्र गढ़ें।

सामग्री– ए 4 आकार का एक कागज जो कम–से–कम एक तरफ खाली हो या मोमचॉक या फेल्ट नोक वाले पेन, रंगीन कागज, कैंचियां एवं गोंद।

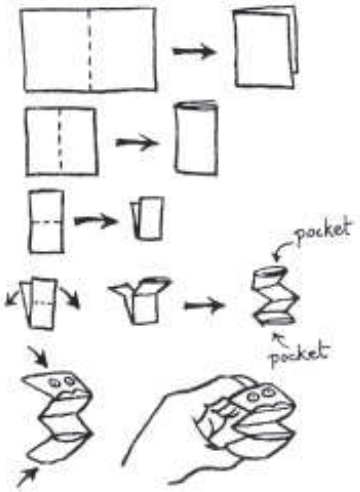

वर्णन– बच्चे बोले गए निर्देशों का पालन करते हैं और एक ए4 आकार के कागज के टुकड़े से एक ओरीगामी पुतली बनाते हैं। इन पुतलियों को इस्तेमाल करने हेतु 4.8 पुतलियों के वार्तालाप में एक सुझाव दिया गया है।

तैयारी–

1. पुतली का आधार स्वयं बनाएँ। सुनिश्चित कर लें कि आप उसे हवा में बना सकें ताकि अपने बच्चों को सारे मोड़ दर्शा सकें।

2. पुतली कैसे बनाना है इसको समझाने का अभ्यास करने के लिए हो सके, तो पहले अपने किसी साथी को यह समझाकर देखें। इससे आपको संभावित समस्याओं के बारे में पता चल सकता है।

3. बच्चों को दिखाने के लिए एक पुतली बनाएँ और उसे सजाएँ।

कक्षा में–

1. अपनी पुतली बच्चों को दिखाएँ और उन्हें बताएँ कि उन्हें भी वैसी ही एक पुतली बनाना है।

2. कागज बाँट दें।

3. पुतली बनाने के लिए इस प्रकार के निर्देश दें

कागज को बीच में से इस तरह मोड़ लें

अब इसे फिर से बीच में से मोड़ लें

अब इसे इस तरह मोड़ें

अब इस तरह का एक जिगजैग बनाएँ

इन छोटी–छोटी जेबों को देखें

अपनी उंगलियाँ इन जेबों में डालें और अपनी पुतली को बोलता हुआ दिखाएं।

4. पहले ऊपर के निर्देशों के अनुसार बच्चों से जोड़ों में पुतलियां बनवाएं फिर वे अपने खुद की पुतली बना सकते हैं।

5. जब वे अपनी पुतली बना चुके हों, तब बच्चों को उसका चेहरा बनाना सिखाएं। बच्चे कागज की आकृतियों को काटकर चिपका सकते हैं।

3.6 मोजे की पुतली

स्तर– सभी

आयु समूह– ब व स

समय– 40 मिनट

उद्देश्य– भाषा– निर्देशों का पालन करना।

अन्य– कहानी में इस्तेमाल के लिए पुतली तैयार करना।

वर्णन– बच्चे एक मोजे को आधार बनाकर एक पुतली बनाते हैं। जब आप अपनी चार उंगलियां मोजे के अंगूठे वाले सिरे में रखते हैं और अपनी हथेली या अपना अंगूठा मोजे की एड़ी में रखते हैं, तो आप एक चेहरा बनाते हैं, जो खुलता और बंद होता है। हालांकि इन्हें बनाने में ज्यादा समय लगता है, पर ये पीछे बतायी गयी पुतलियों से ज्यादा मजबूत होते हैं और ज्यादा समय तक चलते हैं। वे आपकी अपनी पुतली के रूप में इस्तेमाल किये जाने के लिए भी उपयुक्त हैं, जो सिर्फ अंग्रेज़ी बोलती है।

4.1 हां और ना वाली पुतलियों में इन्हें इस्तेमाल करने के लिए एक सुझाव दिया गया है।

सामग्री– प्रत्येक बच्चे के लिये एक पुराना मोजा, रंगीन ऊन, आंखों के लिए टेबल टेनिस की गेंदें या सूती ऊन की गेंदें (वैकल्पिक), रंगीन कार्डो या फेल्ट के टुकड़े, रंगीन पेन या मोमचॉक।

तैयारी–

1. इस पाठ के कम–से–कम एक हफ्ता पहले बच्चों से कह दें कि उन्हें एक पुराना मोजा लेकर आना है। बच्चों के खुद के मोजे शायद छोटे पड़ गए किसी बड़े बच्चे या फिर किसी वयस्क वयक्ति का मोजा उपयुक्त रहेगा।

2. कई पुतलियां बनाएं, प्रत्येक पूर्णता के अलग अलग चरणों पर। ये तब उपयोगी रहेंगी जब आप बच्चों को यह दिखाएंगे कि पुतली कैसे बनाना है।

कक्षा में–

1. अपनी पूर्ण हो चुकी पुतली को बच्चों को दिखाएं और उन्हें बताएं कि उन्हें भी वैसी ही पुतली बनाना है।

2. बच्चों को वे सारी सामग्री दिखा दें, जो उन्हें लगने वाली है, उनके नाम बता दें और बोर्ड पर उनकी एक सूची लिख दें। अब बच्चों से कहें कि वे अपनी जरूरत की साम्रगी का इंतजाम करें।

3. गतिविधि के सारे चरण उन्हें एक–एक करके दिखाएं। उन्हें समझाएं कि उन्हें क्या करना है, साथ में उनके सामने उसका प्रदर्शन भी करते जाएं। जब सारे बच्चे एक चरण पूरा कर लें उसके बाद ही अगला चरण दर्शाएं। पुतली इस तरह से बनाएं। अपना हाथ मोजे में डालें और उस जगह निशान बना दें जहां बाल रहेंगे। अब उस जगह पर ऊन के छोटे टुकड़ों को या तो चिपका दें या फिर सिल दें।

4. कार्ड में से एक अंडाकार टुकड़ा काट लें जो मोजे के मुंह के अंदर फिट बैठता हो। इसे लाल रंग से रंग दें और जगह पर चिपका दें। आप दांत और जीभ भी चिपका सकते हैं। ये कोई सांप या ड्रैकूला बनाने के लिये बड़े उपयोगी होंगे।

5. अब टेबल टेनिस या सूती ऊन की गेंदों से आंखें बना दें या फिर कार्ड के टुकड़ों पर काले बिन्दु बनाकर भी आप ऐसा कर सकते हैं। अब उन्हें जगह पर चिपका दें।

विविधता– आप एक मोजे और एक दस्ताने का इस्तेमाल करके बाहों वाली एक सरल–सी पुतली बना सकते हैं। बाहों के लिए मोजे में छेद कर लें और दस्ताने को मोजे के भीतर पहन लें।

4 पुतलियों का इस्तेमाल

पिछले अध्याय में बताए गए उपयोगों के अलावा भी पुतलियों के कई अन्य उपयोग हैं। पुतलियों को गानों, धुनों, संवादों, नये प्रयोगों और अध्याय 5 में बताए गए नाटकों में इस्तेमाल किया जा सकता है। इनसे बच्चों को छोटी –सी से जगह में भी, अभिनय में व भाषा के इस्तेमाल में अपनी कल्पना शक्ति का खुलकर उपयोग करने का प्रोत्साहन मिलता है। पुतलियां आपको विशेष पात्र जैसे भूत, दानव, डायनासौर इत्यादि बनाने का मौका देती हैं, जिन्हें मंच पर प्रदर्शित करना मुश्किल होता है। इनका उपयोग आपके द्वारा बच्चों को सुनाई जाने वाली कहानियों में और बच्चों द्वारा खुद बनायी जानेवाली कहानियों में हो सकता है।

पुतलियों को इस्तेमाल करने में उसी तरह के कौशल की जरूरत होती है जैसा अभिनय के लिए जरूरी होता है जैसे – अपनी आवाज का उपयोग करना, पुतलियों का इस्तेमाल कर रहे लोगों के बीच सहयोग का होना और चीजों को याद रखना – पर इसके अलावा इसमें कुछ अलग कौशल भी जरूरी होता है। पुतली चालकों को सीखना होता है कि पुतलियों को कैसे चलाना है। इसके अलावा उनका मुंह समय पर खोलना, पुतलियों को स्थिर रखना, उनको उचित तरीके से पलटाना और इधर–उधर चलाना और साथ ही सावधानी से भीतर प्रवेश कराना और बाहर निकालना – ये सब सीखना जरूरी होता है। किसी व्यावसायिक पुतली चालक के भीतर ये सभी कौशल होना अनिवार्य होता है पर बच्चों के लिये तो पुतलियों पर इतना नियंत्रण रखना जरूरी है जिससे उनका नाटक या नाटिका रोचक बन जाए और दर्शकों के रूप में बैठे उनके साथियों को समझ में आए। यदि आप बच्चों से इन पुतलियों का नियमित रूप से उपयोग करने के लिए कहने वाले हों, तो प्रतिक्रिया सत्रों में इन कौशलों पर ध्यान केन्द्रित करना उचित होगा तथा बच्चों में उनके प्रति जागरुकता पैदा करने में उनकी मदद करना होगी।

पुतलियाँ, बच्चों द्वारा भाषा की अपनी कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों में विविधता और कभी–कभी जादुई एहसास जोड़ देती हैं। आप पाएंगे कि जो बच्चे हर समय सहयोग नहीं करते या जो कक्षा में बहुत अधिक रुचि नहीं दिखाते, उनका रुख भी पुतलियों के प्रति बड़ा सकारात्मक हो जाता है। इस गतिविधि में दृश्य, श्रवण और शारीरिक माध्यम का ऐसा गठजोड़ होता है जो बच्चों को आकर्षित कर ही लेता है।

4.1 हाँ और ना वाली पुतलियाँ

स्तर–सभी

आयु समूह– अ, व, ब

समय– 20 मिनट

उद्देश्य– भाषा– किसी दी गई वाक्य–संरचना (इस उदाहरण में किसी के पास कुछ होना) के प्रश्नों, सकारात्मक बातों, नकारात्मक बातों को प्रस्तुत करना और उनका अभ्यास करना।)

अन्य– पुतलियों के साथ जोड़ों में काम करने का अभ्यास करना।

वर्णन– शिक्षक किसी संरचना के प्रश्नों, उसकी सकारात्मक तथा नकारात्मक बातों को प्रस्तुत करने के लिए एक लाल तथा एक हरे मोजे वाली पुतली का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए– क्या तुम्हारे पास है? हां, है। नहीं, नहीं है। बच्चे अभ्यास करने के लिये अपनी खुद की पुतलियां बना सकते हैं।

सामग्री– लाल और हरे (या फिर कोई अन्य विरोधाभासी रंग वाले) रंग के दो मोजे वाली (या कोई अन्य) पुतलियां या अभ्यास के लिए जरूरी सामान। जैसे– मुझे पसंद है के लिए फल, मेरे पास है के लिए खिलौने, मैं करने वाला हूँ के लिए अलग–अलग प्रकार की गेंदें, रैकेट इत्यादि।

तैयारी–

1. पुतलियाँ बनाएँ।

2. प्रस्तुतीकरण का अभ्यास करें, खासतौर पर यदि आपको पुतलियों का उपयोग करने की आदत नहीं है।कक्षा में– इस उदाहरण में यह संरचना है– क्या तुम्हारे पास है? हां, है। नहीं, नहीं है। आप दूसरी संरचनाओं के लिये आवश्यकतानुसार यह प्रक्रिया अपना सकते हैं।

1. बच्चों को पुतलियां दिखाएं। यदि आप पहली बार उनका इस्तेमाल कर रहे हों तो बच्चों को उनके नाम बताएं। उदाहरण के लिए– योलैंडा हां ;हरी पुतली) और निकी ना ;लाल पुतली)। उन्हें समझाएं कि योलैंडा हां हमेशा हां कहता है, जबकि निकी ना हमेशा नहीं कहता है ।

2. पुतली के द्वारा बच्चों से उनके नाम पूछवाएं, और एक हां नहीं वाला प्रश्न पुछवाएं (उदाहरण के लिए, क्या तुम मेरे हो यदि संभव हो तो बच्चों द्वारा पुतलियों से प्रश्न करने को कहें, जहां योलैंडा से हां उत्तर दिलवाएं और निकी से नहीं।

3. आप जो खिलौने लाए हैं वे बच्चों को दिखाएं। वैकल्पिक तौर पर आप किसी पेंसिल केस की वस्तुओं का भी उपयोग कर सकते हैं। यह सुनिश्चित कर लें कि जो भी चीज इस्तेमाल होने वाली हैं चाहे खिलौने या दूसरी वस्तुएं, बच्चे उनके नामों से परिचित हों।

4. बच्चों को स्थिति स्पष्ट कर दें कि योलैंडा और निकी की एक खिलौनों की दुकान है। योलैंडा बहुत सी चीजें बेचना चाहता है, जबकि निकी उन्हें अपने लिए रखना चाहता है।

शिक्षक	गुड मॉर्निंग, योलैंडा। गुड मॉर्निंग, निकी
योलैंडा	गुड मॉर्निंग।
निकी	गुड मॉर्निंग।
योलैंडा	क्या मैं आपकी कुछ मदद करूं?
शिक्षक	मुझे एक कार चाहिए। क्या तुम्हारे पास कार है?
योलैंडा	हाँ, हमारे पास है। (शिक्षक को कार देने के लिये बढ़ता है)।
निकी	नहीं, हमारे पास नहीं है। (कार छीन लेता है और उसे छुपा देता है)।
शिक्षक	अच्छा क्या तुम्हारे पास रोबोट है?
योलैंडा	हाँ, हमारे पास है। (शिक्षक को रोबोट देने के लिये बढता है)।
निकी	नहीं, हमारे पास नहीं है। (उससे रोबोट ले लेता है और उसे छुपा देता है)।

इसे तब तक जारी रखें जब तक आपको यह न लगने लगे कि अब बच्चे खुद पुतलियां इस्तेमाल करने के लिये तैयार हो चुके हैं।

5. बच्चों को प्रश्न सिखा दें और फिर उन्हें आपकी भूमिका करने दें और पुतलियों के माध्यम से प्रश्न पूछने दें।

6. जाँचें कि क्या बच्चे जवाब दे पाते हैं और वार्तालाप की कोशिश करने के लिये तीन स्वयंसेवकों की मदद लें।

बाद की गतिविधि– बच्चे अपने खुद की पुतलियां बनाते हैं और तिकड़ियों में वार्तालाप का अभ्यास करते हैं।

4.2 अनुमान लगाने वाले खेल

स्तर– सभी

आयु समूह– ब, व, स

समय– 10.15 मिनट

उद्देश्य–भाषा– शब्दावली को दोहराना और उसका पुनः इस्तेमाल करना, हां या ना वाले प्रश्न पूछना।

अन्य– बच्चों को प्रोत्साहित करना कि वे परिकल्पनाएं बनाकर तथा उनका परीक्षण करके प्रश्नों को सुलाझाएं।

वर्णन– बच्चों से हल करवाने के लिये एक प्रश्न बनाने के लिए शिक्षक एक कठपुतली का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिये, कठपुतली बच्चों को बताती है कि उसे क्या खाना पसंद है और क्या नहीं। इसका आधार भोजन का प्रकार भी हो सकता है (उदाहरण के लिये, उसे सफेद रंग का भोजन अच्छा लग सकता है, पर रंगीन नहीं) या उस खाद्य पदार्थ की स्पैलिंग हो सकती है (उदाहरण के लिये, उसे दोहरे अक्षर वाला भोजन अच्छा लग सकता है और बगैर दोहरे अक्षर वाला अच्छा नहीं लग सकता)। प्रश्न सुलझाने के लिये बच्चे पुतली से प्रश्न पूछते हैं।

सामग्री– एक कठपुतलीय फल और सब्जियां या उनके फ्लैशकार्ड।

कक्षा में–

1. बच्चों को फल और सब्जियाँ दिखा दें और सुनिश्चित कर लें कि बच्चों को उनके नाम पता हों।

2. उनसे पूछें कि उन्हें कौन से फल और सब्जियां पसंद हैं और क्या नापसंद है। जांच करें कि क्या वे ''क्या आपको पसंद है'' ? वाला प्रश्न पूछ सकते हैं।

3. उन्हें समझाएँ कि पुतली उन्हें बताने वाली है कि उसे क्या पसंद है और क्या नापसंद तथा उन्हें इसके पीछे के कारण का अनुमान लगाना होगा।

4. पुतली से मुझे गाजर पसंद हैं, मुझे सेब पसंद नहीं हैं, मुझे आलू पसंद हैं, मुझे संतरे पसंद नहीं है कहलवाएं। बच्चों को यह सोचने के लिये प्रेरित करें कि पुतली की पसंद और नापसंद में क्या बात साझा है (इस मामले में, उसे सब्जियाँ पसंद हैं पर फल नहीं)।

5. बच्चों से कहें कि वे जोड़ों में अपने विचारों की चर्चा करें और फिर अपने अनुमान की सच्चाई को परखने हेतु पुतली से पूछने के लिये कुछ प्रश्नों पर विचार करें।

6. बच्चों को उनके प्रश्न पूछने दें।

यदि बच्चे भ्रमित हो रहे हों, तो पुतली की पसंद–नापसंद की सूची बोर्ड पर लिख दें। उनको उत्तर की तरफ ले जाने के लिये जरूरी प्रश्न पूछें।

विविधता–यह गतिविधि अलग विषयों के साथ भी की जा सकती है, उदाहरण के लिये, खेल। पुतली से मैं फुटबॉल नहीं खेल सकता, मैं तैर सकता हूँ, मैं टेनिस नहीं खेल सकता, मैं स्की कर सकता हूँ ;पुतली गेंद के साथ खेले जाने वाले खेल नहीं खेल सकता)।

टिप्पणियाँ –एन्ड्रयू राइट की 1000 पिक्चर्स फॉर टीचर्स टू कॉपी में लोगों द्वारा खेले जा रहे अलग–अलग खेलों की आसान तस्वीरें हैं।

अभ्यास

प्रश्न–3 कक्षा में पढ़ाने के दौरान पुतलियों का उपयोग करने से बच्चों में किन किन कौशलों का विकास हो सकता है?

प्रश्न–4 किसी कहानी या गीत को नाटक रूप में ढ़ालने के लिए कौन कौन सी बातें सहायक होंगी?

प्रोजेक्ट– कोई दो कहानियाँ चुनिये, एक कहानी को बच्चों को बिना हाव भाव के सुनाइये।अब दूसरी कहानी को हाव– भाव से सुनाइये या नाटक रूप में करवाइये। इन दोनो तरीकों पर बच्चों की समझ का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

भारतीय चित्रकला की कहानी

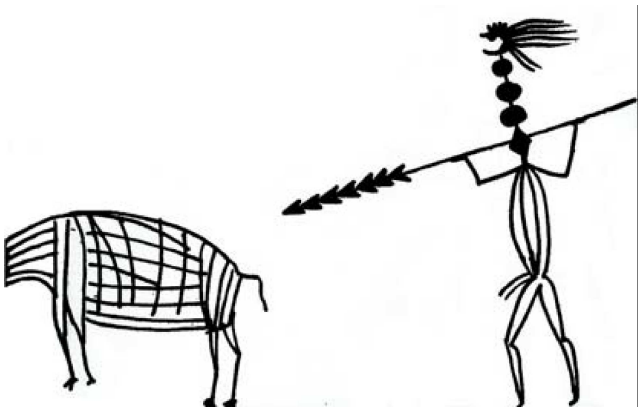

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

नव जनवाचन आंदोलन

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने
'सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट' वेफ सहयोग से किया है।
इस आंदोलन का मकसद आम जनता में
पठन–पाठन संस्कृति विकसित करना है।

भारतीय चित्राकला की कहानी
माणिक वालावलकर
पुस्तकमाला संपादक
तापोश चक्रवर्ती
कॉपी संपादक
राधेश्याम मंगोलपुरी
कवर एवं ग्रापिफक्स
जगमोहन
प्रथम संस्करण
नवंबर, 2007
सहयोग राशि
35 रुपये
मुद्रण
आवकृष्ट ग्रापिफक्स
गुड़गांव, हरियाणा

Bharatiya Chitrakala Ki Kahani
Manik Walawalkar
Series Editor
Taposh Chakravorty
Copy Editor
Radheshyam Mangolpuri
Cover & Graphics
Jagmohan
First Edition
November, 2007
Contribuation
Rs. 35
Printing
Aakrisht Graphics
Gurgaon, Haryana

Publication and Distribution
© Bharat Gyan Vigyan Samiti
Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block, Saket , New Delhi - 110 017
Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773
Email : bgvs_delhi@yahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com
website: www. bgvs.org
BGVS NOVEMBER 2007 2K 0035 NJVA 0094/2007

भारतीय चित्रकला की कहानी

इकाई – 6

भारतीय चित्रकला की कहानी

– माणिक बालावलकर

भारत के किसी भी गांव की सुबह देखें– प्रसन्न वातावरण में पुताई किया हुआ आंगन, उसमें बनाई हुई सफेद रंगोली और उसमें शुभसूचित करने वाला हल्दी–कुमकुम का तिलक लगभग हर दिन का स्वागत ऐसे ही रंगों और रेखाओं से होता है। रंगोली की इन रेखाओं से यह घर या आंगन किस प्रदेश का है, यह आप बता सकते हैं। कैसे? रेखाओं के लयदार बल से और उनसे बनते आकारों से। यह महाराष्ट्र की रंगोली है, बंगाल की अल्पना है, दक्षिण की कोलम या राजस्थान का मंडल है यह आप बता सकते हैं। इस नजाकत भरी रंगोली का आस्वाद लेकर आगे बढ़ें तो छोटी–सी सीढ़ियों के पार घर का दरवाजा दिखता है। इस लकड़ी के दरवाजे की चौखट पर भी कुछ–न–कुछ नक्काशी देखने को मिलती है। इस नक्काशीदार दरवाजे को लांघकर घर में झांके तो पता चलता है, घर कितना भी छोटा और सादा हो, उसमें जगह–जगह कला के नमूने दिखाई देते हैं। घर के पुराने बर्तन, दीए, लकड़ी की अलमारियां और ऐसी कई चीजों पर पारंपरिक कारीगरी के निशान बने होते हैं।

एक वक्त ऐसा था कि सर्वसामान्य मनुष्य का जीवनमान भी सौंदर्य से स्पर्शित था। हमारे त्यौहारों की विधि और उनसे संबंधित रंगसंगति इसकी साक्षी है। भारत के विभिन्न जातियों में 'जीवती' यानी मातृ देवता की पूजा होती है। अलग–अलग प्रदेशों में नाग, हाथी, शेर आदि प्राणियों की भी पूजा होती है। इस पूजा के बहाने घर की औरतें दीवारों पर चित्र बनाती हैं। कई जगहों पर लोग अपना घर ऐसे ही चित्रों से सजाते हैं। इतना ही नहीं, नवजात शिशु के जन्म और घर में किसी की मृत्यु जैसे प्रसंगों पर भी चित्र बनाने की प्रथा है। रंगोली हो या ऐसे चित्र, भारतवासियों के लिए ये केवल चित्र नहीं हैं। उनके लिए यह जन्म से मृत्यु तक जीवन की अनंत भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

चित्रकला का उद्‌गम कैसे हुआ, इसकी एक कथा भारतीय पुराणों में लिखी हुई है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 35 वें अध्याय के प्रारंभ में यह कथा है। एक बार नारायण ऋषि तप के लिए बैठे थे। इंद्रदेव ने अपनी सारी अप्सराओं को उनकी तपस्या भंग करने के लिए भेज दिया, किन्तु ऋषि ने उन अप्सराओं को देखकर, उन पर मोहित होने की बजाय अमृतरस से उर्वी पर, यानी जमीन पर, एक लावण्यवती का चित्र बनाया। यही लावण्यवती यानी उर्वशी थी। ऋषि ने इस चित्र में प्राणों की स्थापना की और वह चित्र जीवित हो गया। ऋषिवर द्वारा निर्मित इस सुंदर अप्सरा को देखकर इंद्र की सारी अप्सराएं शर्मिंदा होकर वहां से चली गईं। इसके पश्चात नारायण ऋषि ने चित्र का शास्त्र तैयार कर उसे विश्वकर्मा को सिखाया। और यहीं से चित्रकला का जन्म हुआ।

हम अपने आस–पास अनेक चित्र देखते हैं – कभी घरों में, कभी मंदिरों में, कभी कार्यालयों में और कभी कला–दीर्घाओं में। आपको कौन–सा चित्र पसंद आता है? अगर हम यह सवाल पूछें तो आपमें से हर एक का जवाब अलग–अलग होगा। किसी को पशु–पंछियों के चित्र पसंद आएंगे, किसी को इंसानों के, किसी को सिर्फ पेड़–पौधों के चित्र अच्छे लगेंगे। कोई कहेगा, मुझे वस्तु–चित्र या संकल्प–चित्र पसंद हैं। चित्र अच्छा लगता है इसका मतलब क्या होता है? चित्र का विषय, आकार, रंग, रेखाओं से परिपूर्ण बना हुआ चित्र अच्छा लगता है। फिर भी इस अच्छा लगने का मतलब क्या होता है? किसी चित्र का विषय बहुत अच्छा है पर उसकी रेखाएं और आकार अच्छे न हों तो क्या होगा? विषय ठीक से समझ में आएगा नहीं और फिर चित्र ज्यादा अच्छा नहीं लगेगा। और हम केवल 'चित्र ठीक है', ऐसी टिप्पणी कर छोड़ देंगे। इसका मतलब है कि चित्र में आवश्यक हर घटक ठीक से चित्रित किया गया हो तो ही चित्र अच्छा और सुंदर होता है। अब यह अच्छा चित्र बनाएं कैसे? आपका जवाब होगा हाथ में पेन्सिल या चॉक लेकर। एक तरह से यह भी सही है। वैसे छोटे बच्चे के हाथ में भी पेन्सिल या चॉक थमा दो तो वह भी दीवारों पर कुछ–न–कुछ जरूर बना देता है। थोड़ी समझ आने पर उसे घर, आदमी, पर्वत, पंछी जैसे आकार बनाना आने लगता है। धीरे–धीरे वह इन्हीं आकारों को मिलाकर एक समूचा

चित्र बनाने लगता है। इस चित्र की शुरूआत होती कहां से है? बिंदु से अनेक बिंदु मिलाकर एक रेखा बनती है और रेखाओं को मोड़कर तैयार होते हैं आकार। इन्हीं आकारों में फिर रंग भरकर चित्र बनता है। कई चित्रों में रंग नहीं होते, केवल रेखाएं होती हैं। ऐसे चित्रों को रेखांकन कहते हैं अर्थात ऐसे चित्रों में भी विचार व भाव–भावनाएं होती हैं। किसी भी चित्र की रेखाओं में, आकारों में, रंगों में यदि विचार, भाव–भावनाओं को शामिल किया गया हो तो ही उससे अच्छी अभिव्यक्ति हो सकती है।

इस किताब में हम बहुत से चित्र देखेंगे भी और उनकी जानकारी भी लेंगे। लेकिन उससे पहले 'चित्र कैसे देखते हैं,' आइए इसके बारे में थोड़ी बात करते हैं। कई बार चित्र के साथ में उसकी जानकारी लिखी होती है– कलाकार का नाम, चित्र की कला–अवधि, आकारमान और चित्र का माध्यम। यह बात सच है कि सिर्फ जानकारी पढ़कर हम चित्र को समझ नहीं पाएंगे। लेकिन इस जानकारी से चित्रकार ने जिस परिस्थिति में चित्र का निर्माण किया है, उसका अनुमान लगा सकते हैं। चित्र के आकारमान से चित्र में बनाए गए आकार और प्रतिमाओं का अंदाजा होता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि चित्र का माध्यम चित्रकार की पहचान बनता है। अपनी कला निर्मिति के लिए चित्रकार ने यही माध्यम क्यों अपनाया, यह हम सोचते हैं। चित्र के बारे में यह पढ़ना तो आवश्यक है, लेकिन उससे भी आवश्यक है चित्र को बार–बार देखकर उसे अनुभव करना। चित्र समझने के लिए उससे घंटों तक बातें करनी पड़ेगी और अगर एक बार उससे आपकी दोस्ती हो गई तो चित्र खुद–ब–खुद अपनी कहानी बताने लगता है।

कोई चित्रकार अपनी कलाकृति में इंसान, पशु–पक्षी और वस्तु की प्रतिमाएं निकालता है तो कोई चित्रकार केवल रंग और रेखाओं के संयोग से चित्र बनाता है। जिनमें प्रतिमाएं होती हैं, उन्हें प्रतिरूप चित्र कहते हैं और जिनमें ऐसे विशिष्ट आकार, प्रतिमाएं नहीं होतीं, उन्हें अप्रतिरूप या अमूर्त चित्र कहते हैं। अमूर्त चित्र समझ में ही नहीं आता, ऐसा कहकर वे इसे मॉडर्न आर्ट कहते हैं। आपने कभी आंखें मूंदकर शांति का अनुभव किया है? ऐसी शांति को महसूस करते वक्त बंद आंखों के सामने कुछ रंग, आकार नजर आते हैं। उसमें कोई विशिष्ट कहानी या प्रसंग नहीं होता। वह तो केवल मन के विचारों का प्रतिबिंब होता है। होली खेलते वक्त हम यह नहीं सोचते कि अपने दोस्तों को हम किस आकार या रंग से रंगें? हम तो बस रंगों की बौछार करते हैं। हम मन के उसी आनंद को पूरे माहौल में प्रतिबिंबित करते हैं। अमूर्त चित्र ऐसा ही होता है, निराकार आनंद जैसा।

चित्र बनाने के लिए आजकल कई अलग और नए माध्यम उपलब्ध हैं। इन माध्यमों की वजह से चित्र को एक निश्चित रूप प्राप्त होता है। यह बताने का तात्पर्य इतना ही है कि हर चित्रकार का अपना एक माध्यम होता है। उत्तम बनाने के लिए केवल चित्रकारी का ज्ञान उपयुक्त नहीं है। इसकी भी एक कथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण में है। वज्र नाम का एक शिष्य मार्कण्डेय ऋषि के पास शिल्पकारी सीखने के लिए आता है। वह ऋषिवर से मूर्तिशास्त्र सिखाने की विनती करता है। मार्कण्डेय ऋषि उससे कहते हैं, मूर्तिशास्त्र सीखने के लिए चित्रकारी आनी जरूरी है।

''तो फिर मुझे चित्रकारी सिखाएं।'' ऐसी विनती वज्र करता है।

चित्रकला का ज्ञान पाने के लिए नृत्य सीखना जरूरी है। ऋषि समझाते हैं। वज्र नृत्य सिखाने की विनती करता है। ऋषि कहते हैं, वाद्य के ज्ञान बिना नृत्य नहीं आ सकता। ''तो वाद्य सिखाइए।''

वज्र की इस विनती पर मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं, वाद्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य और गीत का ज्ञान भी आवश्यक है।

आखिर गीतशास्त्र से वज्र की शिक्षा शुरू होती है। मतलब यह है कि सब कलाएं एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। सबमें से थोड़ा–थोड़ा रस लेकर ही हमें उसे अनुभव करना चाहिए, सीखना चाहिए।

गुफाचित्र–भीमबेटका (म.प्र.)

यह चित्र मध्यप्रदेश के भीमबेटका गुफाओं में है आदिमानव द्वारा चित्रित किया हुआ, लगभग दस हजार वर्ष पुराना चित्र। इन गुफाओं की खोज हाल ही में हुई है। महाराष्ट्र के पुरातत्व–विद्या के अभ्यासक एवं

संशोधक श्री हरिभाऊ वाकणकर ने इन गुफाओं की खोज की। पुरातत्व–विद्या अर्थात पुरातन अवशेषों का अभ्यास। भीमबेटका जैसी गुफाएं पूरे भारत में कई जगहों पर पाई जाती हैं। लेकिन अभ्यासकों ने इन भीमबेटका गुफाओं को अति प्राचीन और अधिक महत्वपूर्ण माना है।

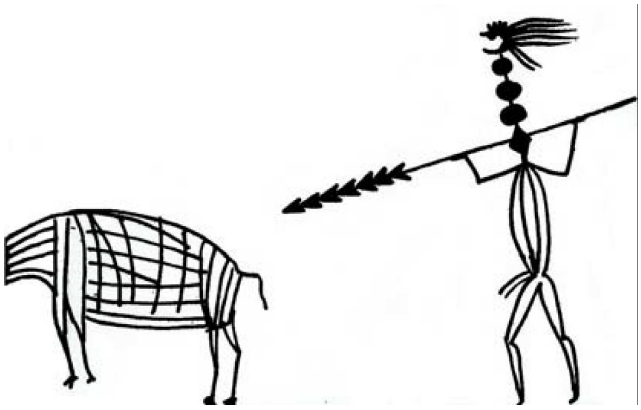

गुपफाचित्र भिमबेटका, म.प्र.गुफाचित्र का बनाया हुआ अभ्यास आरेखन

इन चित्रों को गौर से देखें तो समझ में आता है कि यह केवल दीवारों व छतों पर बनाए हुए चित्र ही नहीं हैं, बल्कि इन्हें पत्थरों में हल्का–सा तराशा गया है। आदिमानव का जीवन कैसा था, इसकी कल्पना आप कर सकते हैं। घने जंगलों में अपनी अन्न, वस्त्र और निवास की मूल जरूरतों को पूरा करते हुए वह शिकार करता था। उसका सारा जीवन इस शिकार से ही जुड़ा हुआ था। इसलिए उसके गुफाचित्र भी इसी विषय के हैं। गाय, बैल, सुअर, हिरण ऐसे लगभग 452 प्राणी इन गुफाचित्रों में दिखाए गए हैं। कई प्राणियों के पेट में उसके बच्चे भी चित्रित किए गए हैं, मानो जैसे उसका 'एक्स–रे' निकाला हो।

शिकार और इन मूल जरूरतों का चित्र बनाने से क्या संबंध हो सकता है? आजकल हम किसी काम पर जाने से पहले भगवान की पूजा करते हैं। वैसे उस वक्त भी आदमी शिकार करने से पहले उस प्राणी के बारे में सोचकर भगवान की पूजा करके चित्र बनाता था। शिकार के लिए आवश्यक तकनीक और मानसिक शक्ति वह चित्र बनाकर प्राप्त कर लेता था। चित्र में प्राणी के शरीर में घुसे हुए बाण दिखाए गए हैं। प्राणी को कहां बाण मारने से उसकी तुरंत मृत्यु होगी, शायद इसका भी अभ्यास चित्र के माध्यम से किया गया होगा। जिस प्राणी का शिकार करना है, लोग उसका चित्र बनाकर उसकी पूजा करते होंगे– यह भी एक संभावना है। प्राणी प्रकृति का एक घटक है। उसका शिकार करने से प्राणीशाप देंगे, उससे बचने के लिए ऐसी पूजाएं होती होंगी अभ्यासकों का यह मानना है। चित्र बनाने के लिए ऐसी कई प्रेरणाएं हैं। यह गुफाचित्र देखते हुए हम उस आदिम जमाने में खो जाते हैं। उस समय के जीवन का विचार करते हुए सोचने भी लगते हैं कैसे जिए होंगे ये आदिम लोग?

अजंता गुफाचित्र

मध्यप्रदेश से अब हम चलते हैं महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में यहां का हरा–भरा खूबसूरत परिसर, पहाड़ों से बहते हुए पानी का संगीत, पंछियों का गुंजन, साथ में फैली हुई सुनहरी धूप। ये हैं अजंता की गुफाएं और यह उपर दिया हुआ चित्र इन्हीं गुफाओं का प्रसिद्ध चित्र 'प्रद्यपाणि बोधिसत्व' है। इस चित्र के बारे में थोड़ा और जान लें तो यह दोबारा या वहां जाकर प्रत्यक्ष रूप से देखते वक्त इसका आनन्द दुगुना हो जाएगा। अजंता की गुफाओं के इन चित्रों का गुप्तकाल में निर्माण हुआ पहली सदी से छठी सदी के काल में। भीमबेटका के गुफाचित्र और अजंता के गुफाचित्र के काल में काफी अन्तर है। कागज, कपड़ा, रंग वाले माध्यम शिल्पकारी के पत्थर या लकड़ी जैसे माध्यम से कम टिकाऊ हैं। समय की गोद में वे जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही कुछ इस बीच की कालावधि में हुआ होगा। सिंधु संस्कृति से शुंगकाल तक की शिल्पकला और वास्तुकला के अवशेष मिले हैं।

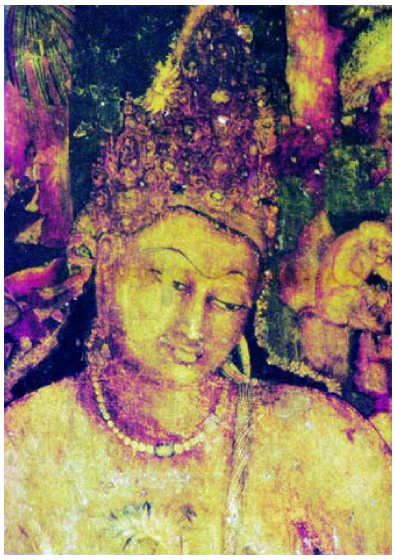

चित्रकारी के ऐसे महत्वपूर्ण अवशेष न मिलने के कारण हम सीधे गुप्तकाल में आते हैं। अजंता के ये गुफाचित्र भीमबेटका के गुफाचित्रों की तरह केवल दीवारों पर बनाए हुए नहीं हैं। इन गुफाओं की दीवारों की सतह विशिष्ट प्रकार के प्लास्टर से पोतकर बनाई गई है। इस पुताई की प्रक्रिया में 'प्रेफस्को तंत्र' और 'टेंपरा तंत्र' ऐसे दो प्रकार हैं। 'टेंपरा तंत्रा' में सूखी सतह पर चित्र बनाते हैं और 'प्रेफस्को तंत्रा' में सतह गीली होती है।

अजंता चित्र के विषय बौद्धधर्म से संबंधित हैं। इनमें प्रमुख विषय है 'जातक कथा' अर्थात् भगवान बुद्ध के पुनर्जन्म की कथा। इसके अलावा, उस वक्त की दैनंदिन जीवनचर्या, प्राणी, पंछी इत्यादि के कुछ चित्र देखने को मिलते हैं। ये चित्र बौद्धधर्म से काफी जुड़े हुए हैं। इसी काल में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार पूरे भारत में बड़े पैमाने पर हुआ। यही उसका प्रमुख कारण है। ये निर्मित चित्र इस प्रचार का ही एक हिस्सा थे। इन चित्रों के लिए प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल किया गया था। हल्दी से बना पीला रंग, दिए की कालिख से बना काला रंग, पेड़ के पत्तों से बना हरा रंग, लेपिझ लाझुली के पत्थर से बना नीला रंग और मिट्टी के लाल रंग से विविध छटाएं बनाई जाती थीं।

प्रक्रिया जानने के बाद अब फिर से 'प्रद्यपाणि बोधिसत्व' देखते हैं। बोधिसत्व भगवान बुद्ध का ज्ञान प्राप्ति से पहले का राजस रूप है। प्रद्य अर्थात् कमल और पाणि यानी हाथ। हाथ में धारण किया हुआ नीलकमल इस चित्र का आकर्षण बिंदु है। हाथ की लयदार मुद्रा किसी कुशल नृत्यांगना जैसी दिखती है। भगवान बुद्ध राजा के रूप में दिखाए गए हैं। माथे पर मुकुट, गले में माला, कंधे पर जनेऊ, हाथ में कड़ा, कमर का वस्त्र, कमरपट्ट के मोतियों की पिरावट बड़ी सुंदरता से चित्रित की गई है। बुद्ध की पूरी प्रतिमा दाईं ओर झुकी हुई है, लेकिन उनका चेहरा हल्का–सा बाईं ओर झुका है। इस कारण चित्र में एक विशिष्ट लय का निर्माण होता है। चेहरे पर दिखाए गए शांत और संयमी भाव, कमल पंखुड़ियों जैसी अर्धोन्मीलित आंखें, सीधी नाक और माथे से हनुवटी तक फैला हुआ उजले चेहरे का स्मितहास्य बुद्ध के राजसी रूप को अधिक उठाव देता है। हर बार यह चित्र देखते हुए कुछ और नया पाने का आनन्द मिलता है। इस बोधिसत्व के पीछे राजमहल का कुछ हिस्सा, आदमी, पंछी जैसे आकार भी दिखते हैं। यहां अंकित ये चित्र आपको केवल उसकी भव्यता का अंदाजा दे सकते हैं। 'प्रद्यपाणि बोधिसत्व' हो या 'काली रानी', 'मां और बच्चा' हो या 'इंद्र और अप्सरा' सभी चित्र सुंदर हैं। यह सब पढ़ने के बाद, अजंता जाकर ये चित्र प्रत्यक्ष रूप से देखने पर आपको अधिक आनन्द आएगा।

लघुचित्र शैली

चित्र की जानकारी में 'लघुचित्र शैली', यह ठीक पढ़ा आपने! जैसे भित्तिचित्र–दीवार आकार का, वैसे ही 'लघुचित्र', अर्थात् छोटे आकार का। सामान्य–तौर पर ऐसे चित्र कागजों पर बनाए जाते हैं। सामान्य चित्र की तरह यह तुरंत नहीं बनता। 'लघुचित्र' बनाने के लिए एक खास किस्म का कागज हाथ से बनाया जाता था। इस पर बारीक रेखाओं से बाहरी आकार बनाकर उसे प्राकृतिक रंगों से रंगा जाता था। उसपर फिर बारीकियां दिखाते थे और सबसे आखिर में सुनहरे रंग का लेपन होता था। इसके लिए खरा सोना इस्तेमाल करते थे। चित्र के सभी रंग एक–दूसरे में घुल मिलकर थोड़ा सौम्य हो आएं और चित्र थोड़ा चमकीला लगे, इसके लिए चिकने पत्थर से चित्र पर घिसाई होती थी। लघुचित्र का आकार कम–से–कम 8×10 सेंटीमीटर और अधिक से अधिक 70×50 सेंटीमीटर होता था। आकारों की लयदार बाहरी रेखाएं और सपाट रंग–लेपन, लघुचित्रशैली की विशिष्टता मानी जाती है। भारतीय चित्रकारों को यह चित्रशैली मुगल चित्रकारों ने सिखाई और मुगलों को पारसी चित्रकारों ने। इससे आप इसका अंदाजा लगा सकते हैं कि यह परम्परा कितनी पुरानी है और कितनी दूरी तय करके आई है।

जंगली हाथी पर अंवुफश की कोशिश में अकबर, माध्यम– कागज पर नैसर्गिक रंग, चित्रकार–मिसकीन

मुगल लघुचित्र शैली

बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर,शााहजहां, औरंगजेब ये नाम आपने इतिहास में पढ़े होंगे। अकबर की कथाएं, शाहजहां का ताजमहल,शिवाजी महाराज और औरंगजेब की जंगली हाथी पर अंकुश की कोशिश में अकबर, माध्यम–कागज पर नैसर्गिक रंग, चित्रकार–मिसकीन कथाएं प्रसिद्ध हैं। इन्हीं बादशाहों के जमाने में मुगल लघुचित्र शैली का निर्माण हुआ। यह समय था 15 वीं से 17 वीं सदी का। उस वक्त भारत मुगलों के अधीन था। इन सभी रईस बादशाहों ने कई चित्रकार अपने दरबार में रखे थे। मीर सैयद अली, अद्व–अल–साजैद ऐसे मुगल लघुचित्रकारों ने बासवान, मिसकीन, दासवथ जैसे भारतीय चित्रकारों को तैयार किया। आगे चलकर इन्हीं चित्रकारों ने 'दरबारी चित्रकार' के रूप में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया। मुगल लघुचित्र के विषय थे राजा का शौर्य और पराक्रम। हमझनामा, अकबरनामा (अकबर चरित्र), तुतीनामा तोते की कथाएं, रमझनामा महाभारत जैसे उस जमाने के ग्रंथों की विषय–वस्तु पर भी काफी चित्र बनाए गए। साहित्य और चित्रकारी का घना संबंध यहां देखने को मिलता है।

ऊपर का यह चित्र अकबरनामा से है। इसमें तिरछी चित्रकारी की गई है। चित्र के एक सिरे से दूसरे सिरे तक झेलम नदी का पुल बनाया गया है। तिरछी रेखाओं के कारण चित्र दो हिस्सों में बंट सकता है। चित्र दो हिस्सों में न बंटे चित्रकार 'मिसकीन' ने चित्र के उपरी हिस्से में राजमहल दिखाकर इसकी सावधनी बरती है। झेलम नदी के पुल से गुजरने वाले दो मदोन्मत्त हाथी और उन पर अंकुश रखने वाले बादशाह अकबर इस चित्र में दिखाए गए हैं। भागते हुए हाथी, नदी का खौलता हुआ पानी, पानी में अस्तव्यस्त नाव और सेवक उनके हावभाव से चित्र में एक गति का निर्माण होता है। चित्र की गर्म और ठंडी रंगसंगति चित्र–विषय की गति का पूरक है। चित्र देखते हुए हमारी नजर भी चित्र के आकारों की तरह भागने लगती है। अकबर बादशाह के शौर्य और ताकत, उसके रहन–सहन का हमें एहसास होता है। अकबर बादशाह के उसी ठाट से हम भी अपने–आप चित्र में शामिल हो जाते हैं।

अकबर के बाद बादशाह जहांगीर को प्रकृति से लगाव था। उसने अपने 'मन्सूर' जैसे चित्रकारों से पशु, पंछी, फूल, पेड़–पौधे आदि विषय पर चित्र बनवाए। 'जेब्रा', 'तुर्की मुर्गा' उन्हीं में से कुछ प्रसिद्ध चित्र हैं। शाहजहां को चित्रकला से अधिक वास्तुकला में रुचि थी। आगरे का ताजमहल उसके वास्तु–प्रेम का सबसे बड़ा साक्षी है। उसने अपने दरबारी चित्रकारों से वास्तुकला के नमूने चित्रें में बनवाए। उसके बाद बादशाह औरंगजेब गद्दी पर बैठा। इसे चित्रकला में कोई विशेष रुचि नहीं थी। इस दौरान उसके और उसके अधीन राजाओं के दरबारी चित्रकारों को काम मिलना मुश्किल हुआ। फिर धीरे–धीरे ये चित्रकार हिन्दू राजपूत राजाओं के आश्रय में चले गए। यह पढ़ते हुए समझ में आता है कि राजा–महाराजाओं ने अपनी–अपनी पसंद के अनुसार चित्रकारों से चित्र बनवाए। इसलिए यह चित्रकारी दरबारी कला कहलाती है।

राजपूत लघुचित्र शैली

राधा–कृष्ण वाला चित्र काफी सुंदर है न? यह चित्र राजपूत लघुशैली के किशनगढ़ नामक उप–शैली का है। राजपूत शैली मुख्य रूप से दो हिस्सों में बंटी हुई है। पहला प्रकार है राजस्थानी लघुशैली। इसमें भी और उप–प्रकार हैं। इन उप–प्रकारों के नाम उनके प्रदेशों के नाम के अनुसार रखे गए हैं जैसे मेवाड़, बूंदी, जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, कोटा इत्यादि। दूसरा प्रमुख प्रकार है पहाड़ी लघुचित्र शैली। इसके उप–प्रकार हैं बशोली, कुलु, गुलेर, जम्मू, कांगड़ा, गढ़वाल आदि। इनमें से कुछ नाम जाने–पहचाने लगते हैं न? हो सकता है। आखिर ये भी तो भू–प्रदेशों के ही नाम हैं।

इन सभी शैलियों में थोड़ा–बहुत फर्क है, जिसके कारण हम उसको अलग से पहचान सकते हैं। इसके बारे में हम अधिक विस्तार से नहीं सोचेंगे। लेकिन थोड़ी जानकारी लेना आवश्यक है। राजस्थानी शैली में बाहरी रेखाएं गहरी होती हैं। चित्र की रंगसंगति तेजस्वी है बिल्कुल राजस्थानी लोगों की पगड़ी की तरह, उनके घाघरे और चोली के रंगों की तरह। पहाड़ी चित्रशैली में नाजुक रेखाएं, सौम्य रंगसंगति दिखाई देती है कुल्लू, जम्मू या हिमाचल के शांत ठंडे मौसम के जैसी। मजे की बात यह है कि राजपूत लघुचित्र शैली के विषय मुगल लघुचित्र शैली से बिल्कुल ही भिन्न हैं। इस लघुचित्र शैली में गीत–गोविन्द, भागवत पुराण जैसे राधाकृष्ण के प्रेमकाव्य पर आधरित चित्र दिखते हैं। इतना ही नहीं, इनमें रागमाला ;भारतीय संगीत के रागों के भाव, बारहमासा, नायक–नायिका भेद पर आधरित चित्र हैं। राजपूत लघुचित्र शैली प्रकृति, स्त्री–पुरुष की प्रेम भावनाओं, भक्ति–रस को महत्त्वपूर्ण मानती है।

राधा और कृष्ण, माध्यम– कागज पर नैसर्गिक रंग, चित्रकार–निहालचंद

यहां दिया गया यह चित्र किशनगढ़ शैली का है। राधा और कृष्ण का यह चित्र भक्ति–रस का आविष्कार

कह सकते हैं। इसमें दिखाई गई राधा को 'बनीठनी' भी कहते हैं। 'बनीठनी' अर्थात् सजधज कर तैयार हुई चतुर स्त्री। किशनगढ़ के राजा सावंत सिंह खुद कृष्णभक्त थे। वह खुद एक उत्कृष्ट कवि भी थे। उन्होंने 'नागरीदास' उपनाम से प्रेम–काव्य लिखे। उनकी प्रेयसी उनकी सौतेली मां की दासी थी, जिसे वे प्यार से 'बनीठनी' कहते थे। सावंत सिंह के दरबारी चित्रकारों ने राजा के काव्य पर आधारित चित्र बनाए। उसमें काव्यानुरूप अपने राजा को कृष्ण रूप में और उनकी प्रेयसी को राधा रूप में चित्रित करके, उनके भक्ति–प्रेम को अजर–अमर कर दिया। बनीठनी राधा का चेहरा देखें तो चौड़ा मस्तक, लम्बी झुकी हुई आंखें, उनके किनारे की कमल जैसी गुलाबी छटा, धनुष की आकृति वाली भौंहें, गालों पर लहराती बालों की लटें, सीधी लंबी नाक, पतले होठों पर मुस्कुराता कोमल चेहरा। राधा का यह चेहरा बहुत ही मोहक दिखता है। उसके परिधान, मोतियों के गहने, उसकी बारीकियां, सुनहरी नक्काशी वाली पारदर्शक चुनरी उसकी मोहकता को और बढ़ाते हैं। कृष्ण तो मूलतः देवता स्वरूप हैं। उनका भी चौड़ा माथा, कमल की आकृति वाली भौंहें, कमल जैसी आंखें, सीधी नाक, नाजुक हनुवटी, संवेदनशील होठों पर दिखाया गया कृष्ण हास्य, केसरिया रंग की खूबसूरत पगड़ी कृष्ण का यह राजस रूप, राधाकृष्ण का एक–दूसरे की ओर देखना, यह सब उचित प्रेम–भावना व्यक्त करता है। बनीठनी के बारे में एक और बात है। इसके हास्य की तुलना लिओनार्दो–दा–विंची के 'मोनालिसा' से की जाती है। इसे 'भारतीय मोनालिसा' भी कहा गया है। आपने 'मोनालिसा' का चित्र देखा है? नहीं? तो जरूर देखिए और बताइए आपको क्या लगता है?

वारली चित्रकला

क्या आपको ऐसा लगता है कि यह गोल और त्रिकोणी इंसान आपने कहीं देखे हैं? शायद हो सकता है। आजकल ये चित्र बड़े–बड़े सरकारी कार्यालयों में, उपहार–गृहों में और बड़े–बड़े घरों में भी दिखने लगे हैं। यह 'वारली चित्रकला' है। असल में भीमबेटका की आदिम चित्रकारी से जुड़ी हुई, आदिम चित्रकला परम्परा, भारत के अलग–अलग प्रदेशों में आज भी मौजूद है। संथाल, गोंड़, वारली इन्हीं में से कुछ हैं। महाराष्ट्र के थाने जिले में यह वारली चित्रकारी कई वर्षों से शुरू है। लेकिन इसकी खोज हाल ही के कुछ सालों में हुई। श्री भास्कर कुलकर्णी नामक चित्रकार ने यह चित्रकारी पूरी दुनिया के सामने लाई थी। वारली समाज आज भी आदिमानव का जीवन ही व्यतीत कर रहा है। वारली घरों में आज भी त्यौहारों के बहाने औरतों द्वारा दीवारों पर चित्र बनाने की प्रथा है। यहां पारम्परिक प्रथा से तो स्त्रियां चित्र बनाती हैं, पर यह सुनकर ताज्जुब होगा कि उनके अच्छे चित्रकार के तौर पर, जिसे राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया है, 'जीव्या सोम्या म्हशा' नामक पुरुष चित्रकार है।

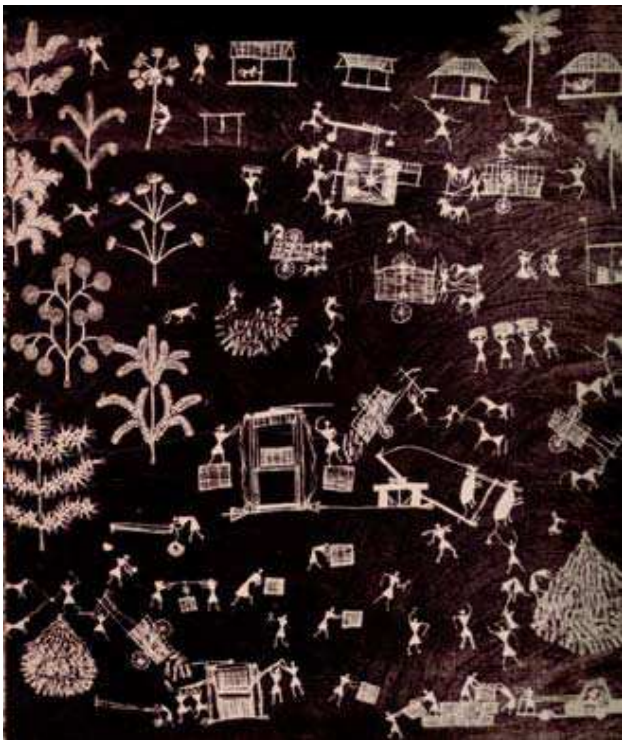

वारली लोग गोबर या गेरु से दीवारों की पुताई करते हैं। फिर उस पर चावल के गीले आटे से चित्र बनाते हैं। इनके घरों के सामने खजूर के पेड़ होते हैं। इसी पेड़ का कांटा वे चित्र बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। पहले इनका सारा जीवन जंगल में खाना जमा करते हुए बीतता था। आजकल ये लोग थोड़ी–बहुत खेती करने लगे हैं। यही कारण है कि इनके चित्रों में पेड़, पंछी, बादल, खेत, बिच्छू, सांप, कीट, पहाड़, पहाड़ों पर बना मंदिर और भगवान भी होते हैं। गोलाकार खड़े हुए लोग और बीचों–बीच तारपा वाद्य बजाने वाला पुरुष यह

वारली चित्र का सबसे प्रसिद्ध आकार है। यह वारली नृत्य का चित्र है। पूनम की रात में ये लोग 'तारपा' नामक सामूहिक नृत्य करते हैं। वारली आदिम लोग प्रकृति में रहकर प्रकृति के ही चित्र बनाते हैं। आप इनके बनाए चित्र देखें। चित्र में दिखाई गई प्रकृति की बारीकियों का आनन्द जरूर लीजिए। कीड़े, मोर के सुन्दर आकार, घरों के अनाज में लगे चूहे, बीच में ही भागने वाला हिरण, पेड़ पर बैठे मोर का शिकार ऐसी कई छोटी–छोटी बारीकियां आपको दिखेंगी। आजकल इनके गांव में रेलगाड़ी, ट्रक, वगैरा आने–जाने लगे हैं। इसीलिए ये आकृतियां भी इनके चित्रों में दिखने लगी हैं। यह सब चित्र में ढूंढ़ना वाकई मजेदार अनुभव होता है। ऐसा ही अनुभव गोंड़, संथाल चित्र ढूंढ़ने में होता है।

पट्टचित्र देखाबा

भारत जैसे बहुरंगी, बहुढंगी और बहुभाषिक देश में सदियों से अनेक परंपराएं रही हैं। आदिम कला परंपराओं

माध्यम–कपड़ा, कागज पर नैसर्गिक रंग ;पटचित्र–ओड़ियाद्ध

के साथ यहां लोक परंपराएं भी हैं। पट्टचित्र, कलमकारी, मधुबनी ये ऐसी ही कुछ लोक परंपराएं हैं। गांव में रहने वाले लोगों को शायद पट्टचित्र मालूम होगा। पट्टचित्र किसी कथा पर आधारित चित्र–शृंखला होती है। आमतौर पर रामायण, महाभारत, कृष्ण गाथा इसके विषय होते हैं। पट्टचित्र निर्मिति आजकल बहुत ही कम हो गई है। लेकिन इसकी प्रस्तुति आज भी अनेक गांवों में होती है। किसी एक रात में गांव की स्त्रियां, बच्चे, पुरुष इकट्ठा होते हैं। किसी घर या मंदिर का बड़ा–सा आंगन लोगों से भर जाता है। कलाकार पट्टचित्र लेकर आता है। दिए के उजाले में कलाकार एक–एक चित्र प्रस्तुत कर गाने लगता है। गाना रूकते ही कथा शुरू हो जाती है। गाना, फिर कथा ऐसे कथा आगे बढ़ती है। आज का सिनेमा या ऐनिमेशन फिल्म का यह शुरूआती रूप है। संथाल परगना में इसको 'जादूपटुआ' कहते हैं। बंगाल में 'पट्टदेखाबा',

राजस्थान में 'पट' तो महाराष्ट्र में यह 'चित्रकथी' के नाम से जाना जाता है। उड़ीसा, गुजरात, आंध्रप्रदेश में भी यह पट्टचित्र परंपरा है। इन सभी शैलियों में थोड़ा बहुत फर्क है। महाराष्ट्र की चित्रकथा कागज पर बनाई जाती है। भारत के बाकी जगह पर पट्टचित्र कपड़े पर बनाए जाते हैं। कपड़े पर बनाए इस चित्र को गोलाकार लपेटकर रखते हैं। कागज पर बने चित्र को एक के ऊपर एक रखते हैं। पट्टचित्र के लिए पूरे भारत में प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल होता है। भारतीय चित्रकला की यह दृश्य–श्रव्य कला–परंपरा बड़ी ही आकर्षक है। यह सब पढ़कर क्या आपको नहीं लगता कि आप भी अपने आस–पास के पट्ट चित्र ढूंढ़कर उनके कलाकारों के साथ उनकी प्रस्तुति देखते हुए कोई रात गुजारें?

कलमकारी चित्र

पट्टचित्र की तरह 'कलमकारी' भी कपड़े पर बनाई जानेवाली चित्र–परंपरा है। यह मुख्यतः आंध्र की चित्र–परंपरा के चित्र हैं, जो वहां के मंदिरों में लगाए जाते हैं। कलमकारी शब्द 'कलम' फारसी शब्द से आया है। कलम अर्थात् लेखनी। सूती कपड़े पर कलम से चित्र बनाए जाते हैं। चित्र में लेखनी का इस्तेमाल होने से यहां रेखाओं का महत्त्व अधिक है। यह लेखनी खजूर या बांस की लकड़ी से बनती है। रेखांकन के लिए नुकीली, तो रंग–कार्य के लिए गोलाकार लेखनी बनाई जाती है। इन चित्रों के परंपरागत विषय सहज रूप से पुराण–कथाओं पर आधरित हैं। ऊपर के चित्र में कृष्ण–अर्जुन का संवाद है। इन चित्रों में मर्यादित रंगसंगति का इस्तेमाल होता है। देवताओं के चित्र नीले, मानवाकृति पीले और राक्षस लाल रंग से दिखाए जाते हैं। आजकल पारंपरिक कलमकारी से बड़ी चित्र रचनाएं बनाने वाले कारीगर कम हो गए हैं। लेकिन आज भी बड़ी दुकानों में फूलपत्तों की कलमकारी वाले बेडशीट, कुर्ते–पैजामे, परदे आदि कपड़े देखने को मिलते हैं।

कलमकारी चित्र आंध्रप्रदेश माध्यम–कपड़े पर रंग

मधुबनी चित्रशैली

'मिथिला' का नाम आपने रामायण में पढ़ा होगा। मिथिला प्रदेश बिहार में है। इसी मिथिला की कला को मधुबनी कहते हैं। इसके मुख्य विषय रामायण पर आधारित होते हैं। मूलतः मधुबनी चित्र घरों पर बनते हैं। पूजा घर, बैठक खाना मेहमान जहां बैठते हैं और शादी का कमरा ऐसी तीन जगहों पर चित्र बनाने की परंपरा है। आजकल कागज पर भी चित्र बनाए जाते हैं। इन चित्रों में भी लोक चित्र–परंपरा जैसे प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल

होता है। एक और मजे की बात यह है कि रंग सतह पर ठीक से चिपके, इसके लिए इसमें बकरी के दूध और बबूल के पेड़ के चिक का मिश्रण किया जाता है। मिथिला की चित्रकृति में आज भी घरों में बनाई गई कैचियों का ही इस्तेमाल करते हैं। रंग–लेपन और बारीकियां दिखाने का साहित्य उतना विकसित नहीं है। शायद इसीलिए इन चित्रों का ग्रामीण लहजा आज भी कायम है। आजकल इन चित्रों की विदेशों में बड़ी मांग है। इसलिए भारतीय कारीगरों के मेलों और बाजारों में ऐसे चित्र देखने को मिलते हैं।

मधुबनी चित्र बिहार

भारतीय समकालीन चित्रकला

(आजादी के पहले और बाद की भारतीय चित्रकला)

समकालीन अर्थात् आज का। हमने आदिम और लोकचित्रकला भी देखी। सालों–साल अपनी विशिष्टताओं के साथ इनका निर्माण होता रहा है। पर कला प्रवाह अपना मूलस्वरूप कायम रखकर दृश्य प्रवाह बदलता रहा है जैसे अजंता के बुद्ध चित्र, मुगल लघुचित्र और राजपूत चित्र शैली।

17 वीं शती में भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन हुआ। व्यापार उद्योग के लिए आयी हुई इस कंपनी ने धीरे–धीरे यहां के राजकाज और समाजकाज में भी अपना पैर पसारना शुरू किया। बाद में पूरे भारत पर ही कब्जा किया। भारत को अपनी स्वतंत्रता के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ा। 1947 में भारत फिर से आजाद हुआ। इस दौरान का इतिहास सभी को ज्ञात है। भारत की स्वतंत्राता के पूर्व और पश्चात की चित्रकला इसी इतिहास से संबंधित है। इतिहास का नाम सुनकर घबराइए मत। यह पूरा इतिहास चित्रमय है। पर इसे देखते वक्त संयम से रूककर विचार जरूर करना पड़ेगा।

हमने 17 वीं शती तक की लघुचित्र शैली देखी। इस शती तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी जड़ें पूरे भारत में फैला ली थीं। इस कंपनी के अधिकारियों के साथ आए हुए चित्रकारों ने यहां के प्राकृतिक दृश्य, यहां की जातियों के उद्योग और व्यवसाय, उनके चित्र, और रहन–सहन तथा राजा–महाराजाओं का व्यक्ति चित्र बनाना शुरू किया था। भारतीय चित्रकारों ने इससे पहले फोटो जैसे दिखने वाले, छाया प्रकाश दिखाने वाले चित्र देखे ही नहीं थे। लघुचित्र शैली सुंदर थी, पर उसमें लयदार रेखाएं, सपाट रंग–लेपन था और विषय भी राधाकृष्ण के थे। खुद का भी चित्र बना सकते हैं भारतीय चित्रकारों को इसका पहली बार एहसास हुआ। यहां से भारतीयों को यथार्थवादी चित्र–शैली की आस लगी। आज भी अगर कोई आपका चित्र बनाए तो आपको अच्छा ही लगता है। है न?

17 वीं शती के मध्य में चित्रकला से संबंधित और एक घटना घटी। मद्रास, कलकत्ता, मुंबई और लाहौर में कला–शिक्षा देने वाली संस्थाएं ब्रिटिश मार्गदर्शन में शुरू हुईं। उसका परिणाम आपके सम्मुख है। भारत की पारंपरिक चित्रकला निर्मिति ठंडी हो गई। भारतीय चित्रकला ब्रिटिश पद्धति से दी जाने वाली शिक्षा लेने लगे।

इसमें यथार्थवादी चित्रण कैसे करें, यथार्थ दृश्य में पास और दूर की चीजें कैसे दिखाएं, वस्तु पर दिखने वाले छाया–प्रकाश और मौसम का परिणाम कैसे दिखाएं, यह सब सिखाया जाता था। भारतीय चित्रकारों ने पहले कभी इसके बारे में सोचा नहीं था। भारतीय चित्रकार इन बाहरी चीजों की बजाय आत्मा, मन, जैसे विषय पर चित्रनिर्मिति करते थे। यहां से हमारी चित्रनिर्मिति में पूरा बदलाव आया।

राजा रवि वर्मा

राजा रवि वर्मा भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों में सबसे प्रमुख नाम है। इनका जन्म 1847 में केरल के किल्लीमन्नुर गांव में हुआ। भारत में कला शिक्षण शुरू होने का यह समय था। रवि वर्मा के मामा चित्रकार थे। राजा रवि वर्मा का प्राथमिक शिक्षण उनके इसी मामा के पास हुआ। आगे भी इनका कला शिक्षण किसी भी कला संस्थान में नहीं हुआ। वे खुद अपने–आप ही चित्रकला सीखते गए। त्रावणकोर संस्थान में आने वाले ब्रिटिश चित्रकारों के चित्रण का वे बारीकी से निरीक्षण करते थे। त्रावणकोर के दीवान माधवराव ने राजा रवि वर्मा को चित्रकारी के लिए प्रोत्साहित किया। राजा रवि वर्मा ने रावण–जटायु युद्ध कृष्ण–शिष्टाई, कृष्ण–बलराम, नल–दमयंती, शकुंतला, मत्स्यगंधा जैसे पौराणिक विषय पर चित्र बनाए। इसके लिए इस्तेमाल किया हुआ केनवास और तैलरंग माध्यम पाश्चात्य थे। उनके द्वारा बनाया हुआ केरल स्त्री का चित्र 'नायर सुंदरी' के नाम से बड़ा ही मशहूर है। 1873 में 'शिकागो' की प्रदर्शनी में उनके 10 चित्र चुने गए थे। उस समय विदेश जाना और अपने चित्र प्रदर्शित करना उतना आसान नहीं था। बहुत ही लंबा और महंगा सफर था और कई सारी कठिनाइयां होती थीं। पर राजा रवि वर्मा ने यह कर दिखाया था। पाश्चात्य देशों में अपने चित्र प्रदर्शित करने वाले ये पहले भारतीय चित्रकार थे।

राजा रवि वर्मा का इस क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह है 'ओलियोग्राफ' की निर्मिति। ओलियोग्राफ मुद्रा–चित्रण का प्रकार है। आज केलेंडर या चित्र का मुद्रण जितना आसान है, उतना विकसित तंत्रज्ञान उस वक्त नहीं था। उन्होंने जर्मनी से उस वक्त का विकसित तंत्र ज्ञान भारत में लाया और मुंबई में एक छपाई प्रेस शुरू किया। वहां उन्होंने अपने चित्रों का मुद्रण करके उसकी प्रतियां निकालीं। ये कॉपियां आम लोग भी आसानी से खरीद सके, ऐसी कीमतों में बेचीं। कैनवास पर बना मूल चित्र खरीदना सामान्य लोगों के बस में नहीं था। पर उनका पसंदीदा चित्र उनके पास हो, इसलिए यह अच्छा उपाय था। भारत के आम लोगों के घरों में राजा रवि वर्मा के चित्र पहुंचने का यही कारण था।

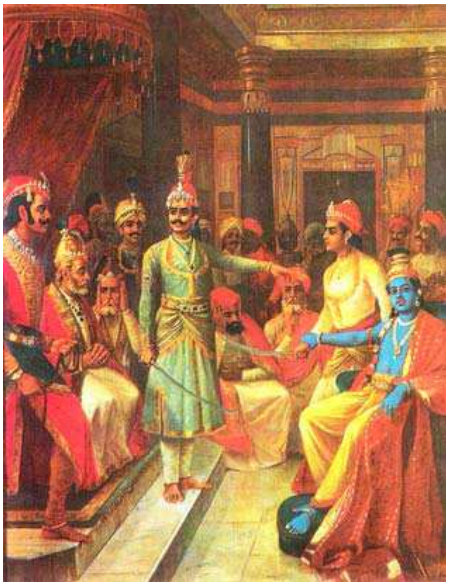

कृष्ण शिष्टाई, माध्यम–कैनवास पर तैल रंग, चित्रकार–राजा रवि वर्मा

यहां दिया गया रवि वर्मा का चित्र लघुचित्र शैली के कृष्ण और अजंता के बुद्ध से बिल्कुल ही अलग है। इसका कारण यथार्थवाद है। यह पहले के चित्रों में नहीं था। यथार्थवाद अर्थात वास्तव में जैसा दिखेगा वैसा ही, हुबहू! इस चित्र में पांडवों का दूत बनकर कौरवों के दरबार में गए हुए श्रीकृष्ण का चित्रण है। कृष्ण का जोश और कौरवों का अहंकार दोनों भावनाओं का मिलाप इस चित्र में दिखाया गया है। चित्र की रचना ऐसे की गई है, मानो असल में दरबार भरा हो। राजदरबार का चित्र होने के कारण, दरबारी लोगों के अधोवस्त्र, मुकुट और दूसरे गहने, दरबार की वास्तुश्याम वर्ण कृष्ण पर विशिष्ट दिशा में दिखाए गए प्रकाश की वजह से छाया–प्रकाश का एक अनूठा खेल दिखता है। यूरोपियन शैली का यथार्थवादी चित्रण करने का यही कला–तंत्र राजा रवि वर्मा ने आत्मसात कर लिया था। आज आप उनके बनाए मूल चित्र केरल के राष्ट्रीय कला संग्रहालय में और बड़ौदा के सयाजीराव गायकवाड़ के राजमहल में देख सकते हैं। रवि वर्मा के चित्रों को मिली प्रसिद्ध के कारण ही उन्हें 'चित्रकारों का राजा' और 'राजाओं का चित्रकार राजा रवि वर्मा' कहा जाता है।

त्रिंदाद

यह चित्र चित्रकार त्रिंदाद का है। 19 वीं शती के आखिर में और 20 वीं शती के शुरू में मुंबई कलाकारों का प्रमुख केन्द्र था। सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट में उस वक्त भारत भर से अनेक कलाकार आकर कला सीख रहे थे। त्रिंदाद ऐसे ही एक गांव से आए हुए चित्रकार थे। इनके चित्रों में उनके गोवा की पार्श्वभूमि की झलक दिखती है। ईसाई, पुर्तगाली लोग गोवा में बड़ी संख्या में थे। इसलिए वहां के चाल–चलन, त्यौहार, उत्सव और दैनंदिन चाल–चलन पर उसकी छाप नजर आती है। फिडल एक यूरोपियन वाद्य है। यह वाद्य बजाने वाला एक वादक इसमें चित्रित किया गया है। उसका चेहरा, त्वचा पर लाल रंग की आभा और उसका पहनावा भारतीय संस्कृति का नहीं है यह देखते ही पता चलता है। अंधेरे एकांत में बैठा हुआ वादक तन्मयता से वाद्य पकड़े है। त्रिंदाद ने छाया–प्रकाश से एक अलग ही वातावरण की निर्मिति की है। उनके रंग–लेपन में रंगों के स्ट्रोक्स राजा रवि वर्मा के चित्रों में नहीं दिखेंगे। यह मुक्त रंग–लेपन ब्रिटिश अकादमी से प्रभावित था। ब्रिटिश अकादमिक शैली के यथार्थवाद का मुंबई के चित्रकारों पर कैसा असर था, इसका यह अच्छा उदाहरण है।

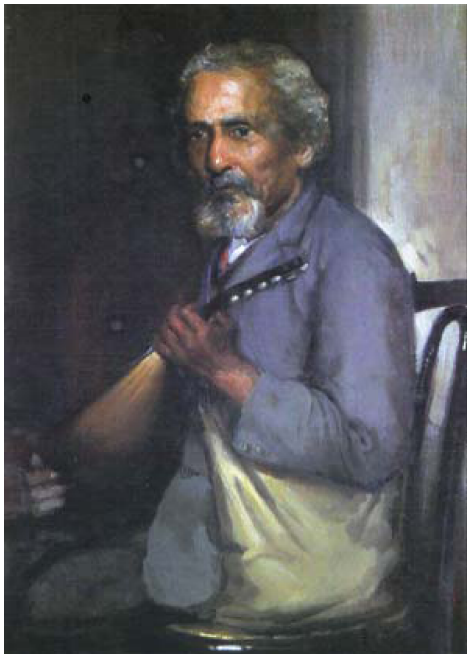

पिफडलर, माध्यम–कैनवास पर तैलरंग, चित्रकार– त्रिंदाद

अवनीन्द्रनाथ टैगोर

भारतमाता माध्यम–कागज पर जल, चित्रकार–अवनीन्द्रनाथ टैगोर

यह उस वक्त का चित्र है जब भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वदेशी का अभियान जोर पकड़ रहा था। अपने देश में बनने वाली वस्तुओं का ही विचार करना है यह विचार 'स्वदेशी' आंदोलन के माध्यम से सामने आया। राष्ट्राभिमान जगाने का प्रयास शुरू हुआ। 'स्वेदशी' आंदोलन ने भारत में इतिहास रचा। ऐसा ही एक पूरक आंदोलन बंगाल में शुरू हुआ, जिससे 'बंगाल स्कूल' या 'बंगाल शैली' कहा गया। बंगाल शब्द होने के बावजूद इसका केवल बंगाल प्रांत से संबंध नहीं था। इसका संबंध था केवल भारतीयता से। अवनीन्द्रनाथ टैगोर इस आंदोलन के उद्‌गाता थे। यह सर्वपरिचित रवीन्द्रनाथ टैगोर के भतीजे थे। अवनीन्द्रनाथ की टैगोर घराने की सुरक्षित और सुशिक्षित पृष्ठभूमि थी। वे उच्चविद्या विभूषित थे। स्वामी विवेकानंद, आनंद कुमारस्वामी, बहन निवेदिता, रवीन्द्रनाथ टैगोर इतना ही नहीं, महात्मा गांधी ने भी यूरोपियन कला का विरोध किया था। अवनीन्द्रनाथ का इन विभूतियों के साथ सीध संबंध था और उन्होंने 'बंगाल स्कूल' के आंदोलन की शुरूआत की। वह साल था 1895 का। अवनीन्द्रनाथ खुद एक चित्रकला शिक्षक थे। 'कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट' और शांति निकेतन के 'कलाभवन' में उन्होंने विद्यादान का कार्य किया। नंदलाल बोस, असित कुमार हलधर, के. व्यंकटप्पा, क्षितेंद्रनाथ मजूमदार जैसे कलाकारों की एक पीढ़ी का उन्होंने निर्माण किया। नंदलाल बोस ने आगे चलकर भारतीय कला में बड़ा योगदान दिया। हरिपुरा कांग्रेस के अधिवेशन में म्युरल यानि दीवार चित्र बनाने के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया था।

अवनीन्द्रनाथ का शिक्षक के रूप में योगदान महत्त्वपूर्ण है ही, लेकिन वे एक उत्तम चित्रकार भी थे। 'भारतमाता' उनकी शैली का उत्तम उदाहरण है। अवनीन्द्रनाथ के चित्रविषय अरबीयन नाईट्स, उमर खयाम, साहित्य और भारतीय पुराण–कथाओं पर आधारित हैं। इन विषयों पर उनके अनेक चित्र प्रसिद्ध हैं। लेकिन भारतमाता का यह चित्र उससे बहुत ही अलग है, फिर भी यह महत्वपूर्ण कलाकृति है। भारत जैसे बहुभाषिक सांस्कृतिक देश में भारतीयता की एक ही प्रतिमा दिखाना आसान नहीं था। उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक विविध वेशभूषा है। एक ऐसी वेशभूषा, शरीर का ढांचा, एक ऐसा रूप तैयार करना जो भारत के किसी एक प्रदेश का नहीं, बल्कि पूरे भारत का हो एक अत्यंत मुश्किल काम था। अवनीन्द्रनाथ ने इस मुश्किल काम को किया। इस चित्र में भारतमाता की आकृति अस्पष्ट, धुंधली पार्श्वभूमि से धीरे–धीरे उपर आ रही है, ऐसा आभास होता है। उसने केसरिया वस्त्र–परिधान धारण किए हैं। हाथ में माला व ग्रंथ जैसे आयुध हैं। ये आयुध हिंसक नहीं हैं, बल्कि अहिंसा का अवलंब करने वाले हैं। उसके वस्त्र किसी विशिष्ट प्रदेश के नहीं हैं। वे पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक स्त्री के रूप में यह भारतीयता का सुलभ दृश्यरूप है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम अधिकतर लोगों को साहित्यकार के रूप में मालूम है। शांति निकेतन और रवीन्द्रनाथ टैगोर का एक–दूसरे से अटूट रिश्ता है। इतिहास की किताबों में रवीन्द्रनाथ चित्रकार थे, ऐसा पढ़ने को मिलता है। लेकिन उनके चित्र अधिकतर कहीं देखने को नहीं मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण है कि रवीन्द्रनाथ ने 65 साल की उम्र में गंभीरता से चित्र बनाना शुरू किया। उनके जो कुछ गिने–चुने चित्र हैं वे शांति निकेतन के कलादालान में देखने को मिलते हैं। शांति निकेतन के मनोहारी वातावरण में चप्पल निकालकर हम वहां के कलादालान में प्रवेश करते हैं और रवीन्द्र संगीत की ताल पर थिरकती हुई रवीन्द्रनाथ की सहज सुंदर कला–कृतियां हमारे सम्मुख होती हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्यिक और तत्वज्ञ थे। दिनभर वे खूब लिखते थे।

लिखते–लिखते कई शब्द मिटाए जाते तो कभी कोई विचार–पूर्ण रूप धारण करने तक वे अपनी ही धुन में खो जाते थे। उसी कागज पर गीर्गीटा यानि पेन से ऊल–जलूल आव फतियांद्ध जाता था। यही शब्द मिटाते हुए और गीर्गीटा हुआ जोड़कर चित्र बन जाता है। यह बात एक बार उनके ध्यान में आई। फिर क्या, और बहुत सारे चित्र बनने लगे। रोज नए–नए चित्र बनाना और रंग भरना अलग नहीं था। लिखाई के कोरे कागज, स्याही, लेखनी यही उनके चित्र के माध्यम थे। उसी से लिखना, उसी से चित्र बनाना और रंग भरना भी उसी से। इन चित्रों के विषय अधिकतर मन के काल्पनिक आकार, आस–पास की औरतें, बच्चों के दुखी चेहरे होते थे। रवीन्द्रनाथ का संवेदनशील मन दुखी मन की ओर खिंच जाता और उनके चित्रों में वह व्यक्त होता था। वे कहते थे, मैं निर्णय लेकर चित्र नहीं बनाता, चित्र बनाते–बनाते प्रतिमाएं आकार लेती हैं। यह पढ़कर लगता है कि अब हम भी बेझिझक गीर्गीटा सकते हैं। उसे कोई चित्र कहे या न कहे।

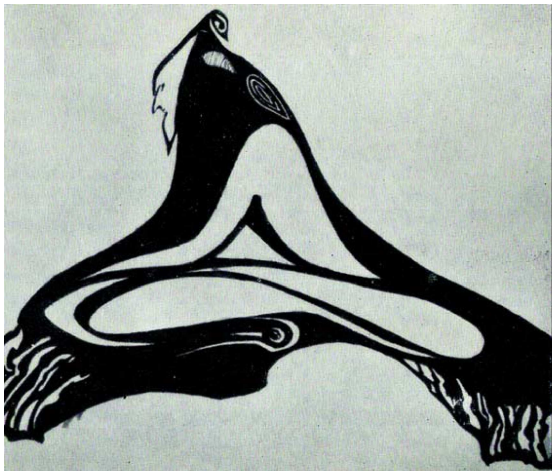

शीर्षकहीन, माध्यम–कागज पर स्याही, चित्रकार–रवीन्द्रनाथ टैगोर

जामिनी रॉय

जामिनी रॉय हैं बंगाल के चित्रकार। 'बंगाल स्कूल' से इनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं था, पर यूरोपीय चित्रकला से उबकर उसे छोड़कर उन्होंने नया रास्ता अपनाया। खुद की एक स्वतंत्र शैली बनाई। यथार्थवादी चित्रण पद्धति के कारण लोग यूरोपियन शैली की ओर आकर्षित हो रहे थे, वहीं जामिनी रॉय उससे क्यों उकता गए, यह समझना जरूरी है। उनका बचपन गुजरा बंगाल के एक छोटे से गांव में। गरीब किसान के घर में उनका जन्म हुआ। घर में पैसे की अमीरी नहीं थी, पर आसपास निश्छल, निष्पाप लोग थे। प्रकृति की अमीरी थी, त्यौहार–उत्सव थे, पारंपरिक कथा और प्रथा थी। इन्हीं की संगत में वे बड़े हुए।

संथाल लोक जीवन, कालिघट चित्र–परंपरा का उन पर काफी प्रभाव था। ऐसे हालात में कला महाविद्यालयी शिक्षा का पराया लगना स्वाभाविक था। वे गांव वापस लौट आए। सहज–आसान आकार बनाकर उसमें रंग भरना शुरू किया। ये रंग भी नैसर्गिक थे। गोल चेहरा, मत्स्याकृति आंखें, धनुष्काकृति भौंहें, शरीर पर कम से कम आभूषण, ठोस और लयदार बाहरी रेखाएं, सपाट रंग–लेपन भारतीय कला की विशिष्टता को उन्होंने अपने अभ्यास से नया रूप दिया। संथाल देहाती महिलाएं, ग्रामीण खिलौने, ग्रामीण जनजीवन, पुराणकथा ये उनके चित्रों के विषय थे। जामिनी रॉय को रवीन्द्रभारती विद्यापीठ ने डॉक्टरेट देकर सम्मानित किया। भारत सरकार ने भी उन्हें प्रद्यभूषण पुरस्कार देकर उनके योगदान को प्रणाम किया है।

अमृता शेरगिल

वारली, मधुबनी जैसी कई चित्र परंपराएं हमने देखीं। यहां की महिलाओं ने इन परंपराओं को जतन करके आगे बढ़ाया, पर उन्हें भारतीय स्त्री चित्रकार की पहचान नहीं मिली। किसी विशिष्ट परिस्थिति या प्रसंग के बारे में उन्हें क्या लगता है, इन चित्रकर्ताओं ने अपने चित्रों में कहने का प्रयास नहीं किया। कहते भी कैसे? एक तो ये महिलाएं पढ़ी–लिखी नहीं थीं और दूसरे यह कि भारत में पुरूष–सत्तात्मक समाज है। यहां स्त्री को खुद की राय रखने के लिए बहुत ही धैर्य दिखाना पड़ता था। इस पृष्ठभूमि में पहला महिला नाम सुनाई दिया 1934 के बाद। यह नाम था अमृता शेरगिल। यहां आप जो चित्र देख रहे हैं उसमें सभी औरतें हैं। इसमें भी वे आकर्षक और सुंदर नहीं हैं। गांव की सीधी–सादी औरतें हैं। वे न तो राधा हैं, न नायिका न माता हैं, न देवी। भारतीय स्त्री का उस वक्त का प्रतिबिंब इसमें है। ऐसा क्यों था? अमृता शेरगिल का जन्म यूरोप में हुआ। उनके पिता सिख और माता हंगेरियन थीं। उनकी पढ़ाई यूरोप में हुई और उन्होंने कला शिक्षा का 'मक्का' समझे जाने वाले पेरिस के आर्ट स्कूल से कला की शिक्षा प्राप्त की। स्वाभाविक तौर पर उनके कार्य में यूरोपीय संस्कृति के स्फूर्त और स्वतंत्र विचार दिखते थे। 1934 में वे यूरोप से भारत लौटीं और भारतीय संस्कृति की खोज में पूरे भारत में घूमीं। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विचारों को समझकर उन्होंने उससे एक कदम आगे जाने का प्रयास किया।

शृंगार करती औरतें माध्यम–कैनवास पर तैलरंग, चित्रकार– अमृता शेरगिल

अमृता शेरगिल ने रवि वर्मा की तरह कैनवास और तैलरंगों का इस्तेमाल किया। इसकी वजह यह थी कि वे अपनी भावनाएं इस माध्यम में अधिक अच्छी तरह से व्यक्त कर सकती थीं। लेकिन उनके चित्र विषय ग्रामीण जनजीवन से संबंधित रहे। ऊपर के चित्र का नाम है 'शृंगार'। चित्र देखने पर समझ में आता है कि स्त्री को उन्होंने केवल सुडौल, सुंदर, आकर्षक नहीं दिखाया है। उन्होंने स्त्री के अंतर्मन तक पहुंचने की कोशिश की है।

मानो ये महिलाएं किसी सहेली से बात कर रही हों, ऐसी संवेदनशीलता का भाव उनके चित्र में दिखाई देता है। यह चित्र देखते हुए हमें भी उसी संवदेनशीलता से शृंगार करने वाली स्त्री में झांकना पड़ेगा ठीक से, तभी हम उसको समझ सकेंगे।

एम.एफ. हुसैन

आपने गजगामिनी, मीनाक्षी फिल्में देखी हैं? चित्रकार एम.एफ. हुसैन का नाम इन फिल्मों की वजह से घर–घर में पहुंचा। चित्रकार हुसैन का बचपन बड़ी गरीबी में गुजरा। पंढरपुर गांव से मुंबई आया हुआ यह लड़का चलचित्रों के बड़े–बड़े इश्तेहार रंगता था।

आगे *प्रोगेसिव आर्टिस्ट ग्रुप* से उसका संबंध हुआ और इसी से उसका पूरा जीवन बदल गया। *प्रोगेसिव आर्टिस्ट ग्रुप* के बारे में बताना यहां बहुत जरूरी है। न्यूटन सुजा, एस.एफ. रजा, एच.ए. गाडे, सदानंद बाकरे और एम.ए.हुसैन इन सबने मिलकर शुरू किया इस ग्रुप को। यह स्वतंत्र भारत के कलाकारों का पहला संगठन था। इसमें से कई कलाकार फिर विदेशों में स्थापित हुए। गायतोंडे, सामंत, रायबा, हजरनीस ऐसे कुछ कलाकार इस संगठन में सहभागी हुए। इस ग्रुप के रजा, हुसैन, और गायतोंडे का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। विलक्षण बुद्धिमत्ता व कल्पना–शक्ति और बेजोड़ मेहनत के बल पर चित्रकार हुसैन का व्यक्तित्व बनता गया। बचपन से ही होर्डिंग के बड़े आकारों को रंगने की आदत की वजह से बड़ा चित्र बनाने का दबाव उनके मन में कभी आया ही नहीं। शुरू के दिनों में उन्होंने खुद की मिट्टी से, बचपन की यादों से, आजू–बाजू के लोगों से प्रेरित होकर चित्रों का निर्माण किया।

घोड़ा, माध्यम कैनवास पर तैलरंग,चित्रकार–एम.एफ.हुसैन

आगे चलकर वे राजकीय–सामाजिक घटनाओं पर आधरित विषय संबंधित चित्रों में व्यक्त करने लगे। मदर टेरेसा, जमीन, सरस्वती, घोड़े जैसी उनकी विविध चित्र–शृंखलाएं प्रसिद्ध हैं। इसमें घोड़े की चित्र–शृंखलाएं अपनी रेखाओं और रंग–योजना के कारण काफी मशहूर हुईं। अत्यंत स्फूर्त और जोशपूर्ण रेखाएं चित्र की विशिष्टताएं हैं। घोड़े का यह चित्र इसी शृंखला से लिया गया है। घोड़े की रफ्तार, उसकी ताकत, दौड़ते वक्त उसके भाव, मुड़ा हुआ पूरा शरीर? यह सब जोरदार रंग–लेपन से उन्होंने खूबी से दिखाया है। चित्र देखते वक्त मन में सवाल आता है कि घोड़े की जो रफ्तार है कहीं उसी रफ्तार से तो यह चित्र बनाया गया नहीं होगा?

रजा

भारतीय तत्वज्ञान और अभ्यास से जिनके विचार तैयार हुए और इन विचारों की अभिव्यक्ति जिनके चित्रों से हुई उन्हीं में से एक हैं रजा। इस किताब की शुरूआत में बिंदु के बारे में हमने पढ़ा है। बिंदु से रेखा और आकार तैयार होते हैं। केवल चित्रकला ही नहीं, सारे विश्व की उत्पत्ति बिंदु से हुई है इस संकल्पना का इन्होंने अभ्यास किया।

?

माध्यम– कैनवास पर तैलरंग, चित्रकार– रजा

प्रकाश देने वाले सूर्य का गोल, रात के चंद्रमा का गोल जैसी प्रतिमाएं इनके शुरू के चित्रों में दिखाई देती हैं। धीरे–धीरे सूर्य, चंद्र जैसे विशिष्ट संदर्भ जाकर केवल बिंदु या गोल अस्तित्व के रूपों में रजा के चित्रों में आने लगे। साथ ही त्रिकोण, चौकोर जैसे मूलभूत आकार और कभी–कभी इस सारे से जुड़ा हुआ भारतीय तत्वज्ञान का कोई लोक। जिसे आप देख रहे हैं यह चित्र भी ऐसे ही चित्रों में से एक है। इन्होंने जैसे त्रिकोण, चौकोर मूलभूत आकारों की योजना की, वैसे ही लाल, पीला, नीला जैसे शुद्ध रंगों का प्रयोग किया। इनका बचपन मुंबई में बीता और महाविद्यालय की पढ़ाई भी वहीं हुई। प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के शुरू के कलाकार सभासदों में से रजा भी एक कलाकार थे। बाद में वे पेरिस में स्थापित हो गए। आज भी यूरोप में रहकर वे भारतीय तत्वज्ञान पर आधारित कला–निर्मिति कर रहे हैं।

वी.एस.गायतोंडे

इस किताब की शुरूआत में हमने अमूर्त चित्र कैसे देखा जाए, उसे कैसे समझा जाए इसके बारे में थोड़ा–बहुत पढ़ा है। भारतीय कला–इतिहास में अमूर्त चित्रशैली के लिए चित्रकार गायतोंडे बड़ा ही जाना–माना नाम है। जैसा कि हमने पहले देखा है, अमूर्त चित्रों में कोई पहचानने लायक विशिष्ट प्रतिमा नहीं होती। यह चित्र तो केवल आकारों से बनता है। गायतोंडे के शुरू के चित्रों को छोड़कर लगभग सभी अमूर्त चित्र हैं। इनका कला शिक्षण मुंबई के सर जे.जे. कला महाविद्यालय में हुआ, लेकिन बाद में वे दिल्ली में रहने लगे। इसी वजह से उनकी कर्मभूमि दिल्ली रही। वे काफी चिंतन और मनन करते थे। उनका भारतीय अध्यात्म और बौद्ध–जैन तत्वविज्ञान का अभ्यास था। इसी अभ्यास से उनकी चित्रनिर्मिति हुई है। चित्र बनाने की प्रक्रिया उनके लिए मानो समाधि क्षण की अनुभूति होती थी। चित्र और उनके चित्र–विचार एकरूप हो जाते थे। इनके चित्रों में गहरे रंग की पृष्ठभूमि से

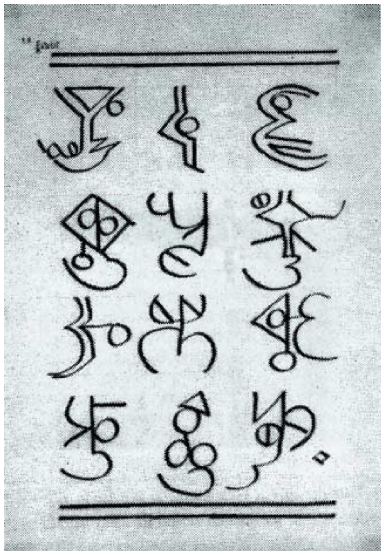

चित्रकार– वी.एस.गायतोंडे

धीरे–धीरे स्पष्ट होने वाले आकार दिखाई देते हैं। छापे गए चित्र रेखांकन को आप बहुत देर तक देखते रहेंगे तो आपको आकारों का खेल महसूस होगा। थोड़ी ही देर में आप इस चित्र के बारे में स्वतंत्राता से सोचने लगेंगे।

मनजीत बावा

भारतीय मिथकों पुराणकथा के संदर्भ के प्रति अलग ही दृष्टिकोण रखते हैं। मनजीत बावाका। इसको इन्होंने अपने चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। इनके चित्रों में देवी–देवताओं की विविध प्रतिमाएं अभिनव रूप में दिखाई देती हैं। उन्होंने शुद्धलाल रंग की पृष्ठभूमि पर एक पांव वाली गाय और छह हाथों वाले भगवान की आकृतियों की रचना की है। ऐसी विचित्रता–पूर्ण रचनाएं उनकी चित्र की निर्मिति की विशेषता रही है। शुद्ध रंगों की योजना जैसे मनजीत बावा के चित्रों की खासियत है, वैसे ही भारतीय पौराणिक कथाओं के मिथक का अर्थ निकालकर उसे अपने चित्र में प्रस्तुत करना भी। कृष्ण, दुर्गा, शिव, गणेश, हनुमान जैसे विविध विषयों पर उनके द्वारा बनाए गए चित्र प्रसिद्ध हैं।

प्रभाकर बरवे

'मेंढ़े' वाला चित्र प्रभाकर बरवे की प्रसिद्ध किताब 'कोरा केनवास' से लिया गया है। बरवे के चित्रों में पत्थर, मिरची, पेड़, पशु, बीज, जैसे छोटी–बड़ी वस्तुओं के आकार दिखते हैं। 'निसर्ग के मूलाक्षर' नामक चित्र में अभी–अभी जमीन से ऊपर आया हुआ नन्हा पौधा, पेड़, पत्ता, पंछी, मछली, फल, फूल जैसे अनेक आकार हैं। आपने कभी आसमान में हाथी के आकार का बादल देखा है, या फिर पेड़ के पत्ते जैसे दिखने वाला मछली का आकार, या फिर किसी उबड़–खाबड़ बादल में चेहरा? ऐसे कई आभासी आकार इनके चित्रों में दिखते हैं। प्रकृति के प्रति गहरी श्रद्धा और खुद के चित्र से सच्चे रहे बरवे ने 'कोरा केनवास' नामक किताब में लिखा है, नाभि के मूल से पेंटिंग का जन्म होना चाहिए। वहां से निकले आकार भूख जितने ही सच्चे होते हैं।

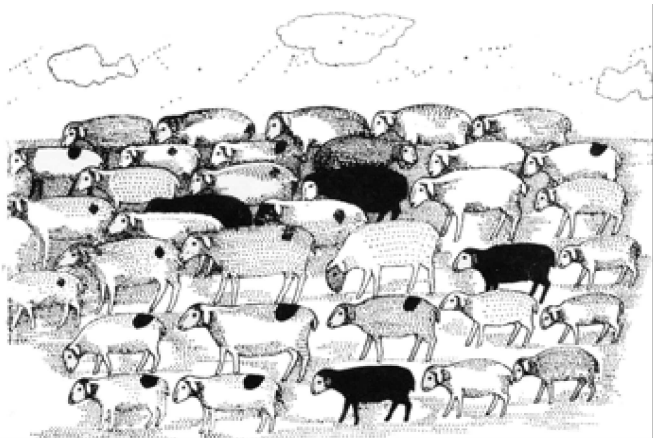

मेंढे (रेवड़), माध्यम–कागज पर रेखांकन चित्रकार– प्रभाकर बरवे

भुपेन खक्कर

भुपेन खक्कर चित्रकार के तौर पर मशहूर नहीं थे। इनका जिक्र कला विचारक और समीक्षक के तौर पर

होता है। भुपेन खक्कर गुजरात प्रांत के महत्त्वपूर्ण चित्रकार हैं। इनकी बहुत–सी चित्र प्रतिमाएं आम लोगों की आज की परिस्थिति के बारे में कहती थीं। इनके इस चित्र का नाम है 'गर्भावस्था में भक्त' (The Pregnant Devotee) इस चित्र की संकल्पना के बारे में उन्होंने एक जगह लिखा है, देवनंदन नामक उनक एक मित्र एक बार उनके घर आए। वे ठण्ड की सुबह में मोटी–सी चादर सर और पूरे शरीर पर लपेटकर हाथ में माला लिए जाप कर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा आभास होता था मानो सामने कोई स्त्री बैठी है। ऐसी ही बैठी अवस्था में भुपेन खक्कर ने उनका चित्र बनाया। शरीर पर लपेटी यह चद्दर साड़ी जैसी लगती है और देवनंदन की तोंद गर्भावस्था की सूचना देती है। प्रातः पहर में हाथ में माला लिए कृष्ण नाम का जाप करने वाले देवनंदन पेट में भक्ति–रस से गर्भावस्था में हैं, ऐसा लगता था।

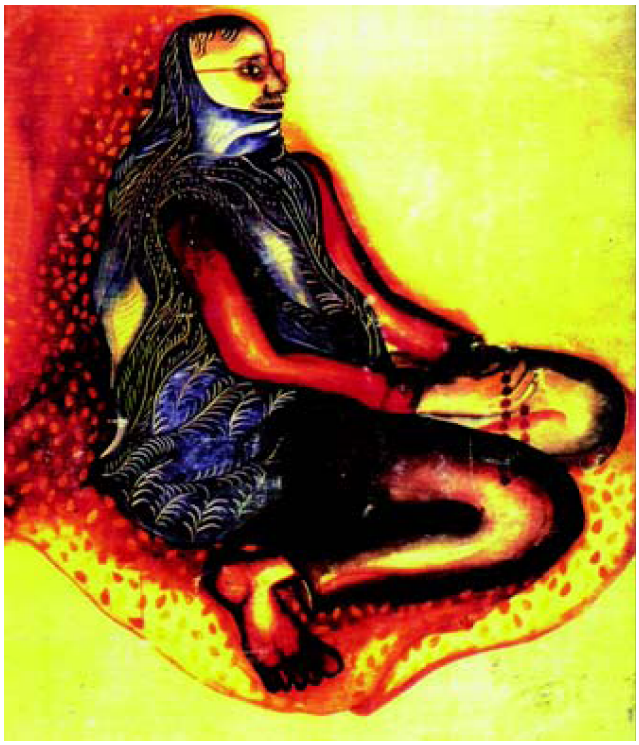

गर्भावस्था में भक्त, माध्यम– कागज पर जलरंग, चित्रकार– भूपेन खक्कर

नसरीन मोहम्मदी

नसरीन मोहम्मदी के अमूर्त चित्रों पर जैन, बौद्ध और ताओ विचार प्रणाली का प्रभाव था। इन्होंने कुछ समय एम.एस. यूनिवर्सिटी, फकल्टी ऑफ फाईन आर्ट्स, बड़ौदा के कला महाविद्यालय में शिक्षक के रूप में काम किया था। चित्र बनी रेखाओं को केसे देखें, ऐसा प्रश्न आपके मन में उठना स्वाभाविक है। लेकिन अमूर्त चित्र इतनी आसानी से स्पष्ट नहीं होता। हां, अगर आपने नसरीन के छाया–चित्र देखे हों तो आपको उनकी चित्र बनाने की प्रक्रिया शायद समझ आए। उनके एक छायाचित्र में जमीन पर बारह बजे की धूप गिरी हुई दिखाई देती है। जमीन पर कोई एक सीढ़ी, जमीन पर रखी वस्तुओं का उपरी पृष्ठभाग और इनका खड़ा हिस्सा इतना ही हमें दिखता है। मतलब पृष्ठभाग पर पड़ी कड़क धूप और खड़े हिस्से की 'गहरी छांव' की केवल रेखाएं इस छायाचित्र में हैं। वह छाया–चित्र यहां छाप नहीं सके हैं, पर इस चित्र के रेखाओं की रचना भी ऐसे ही दृश्य से जुड़ी हुई है अर्थात् ऐसा चित्र केवल देखकर समझ लेना थोड़ा मुश्किल होगा। पर आप भी ऐसे ही नजरिये से अपने इर्द–गिर्द देखना शुरू करेंगे तो छाया–प्रकाश के इस लुभावने खेल में रेखाओं के कई दृश्य आपको भी जरूर दिखाई देंगे।

सुधीर पटवर्धन

'आम इंसानों के प्रति आत्मीयता रखने वाले और इंसानों के चित्रकार' ऐसी ही सुधीर पटवर्धन की पहचान है। इन्होंने महाविद्यालय में चित्रकारी की बाकायदा पढ़ाई नहीं की। पेशे से ये डॉक्टर हैं रेडियोलोजिस्ट। इनके चित्रों में इंसान के प्रति जो आत्मीयता दिखती है, इसका कारण इनकी वैद्य की शिक्षा और पेशा हो सकता है ऐसा इनका मानना है। इसके अलावा मार्क्सवादी आंदोलन में कुछ काल तक सहभागिता और मार्क्सवादी विचार–प्रणाली इनकी चित्रनिर्मिति की पूरक थी। यहां छपा हुआ चित्र केवल एक आरेखन है। 'मोर्चा की ओर' किसी मोर्चा से जुड़े हुए आदमी का स्केच है। गौर से देखें तो पता चलेगा कि उस आदमी के एक हाथ में लाठी है और इस लाठी पर उसके हाथों की मजूबत पकड़ है। एक पैर उपर उठाए वह रास्ता रोके खड़ा है। चेहरे पर उग्र भाव के साथ थोड़ी मायूसी छाई है। आम लोगों की मोर्चा और हड़ताल की वजह से होने वाली हालत का एहसास होता है। इनके अधिकांश चित्रों में आज के शहरी इंसान के दैनंदिन जीवन के विविध संदर्भ हैं।

शीर्षकहीन, माध्यम– कागज पर स्याही चित्रकार– नसरीन मोहम्मदी

चित्रकला को समझने के लिए हम एक साथ इस सफर पर चल पड़े थे। भीमबेटका गुफाओं के आदिमानव के चित्रों से हमने शुरूआत की। अब हम इसके अंतिम पड़ाव तक पहुंच गए हैं। भारतीय चित्रकला की यह लंबी कहानी, कई सदियों का यह सफर, पंचतंत्र की कथाओं जैसी सरस नहीं है। पर बुद्धि और मन को विस्मित रखने वाली जरूर है। इसकी कई महत्त्वपूर्ण घटनाएं हमने देखीं, पर और कई प्रकार के चित्र, उसकी कहानियां,शैली के बारे में हम जगह की मर्यादा के कारण यहां बता नहीं सकते। हम गुफा चित्रों से सीध अजंता चित्रों पर आ गए, और वहां से मुगल लघुशैली तक पहुंचे। अजंता चित्र शैली के बाद और मुगल लघुशैली से पहले मंदिर भित्ति चित्रों की बहुत बड़ी परंपरा भारत में रही है। आज भी दक्षिण के मंदिरों में और सिक्किम के पॅगोडा मंदिरों में मंदिर–चित्र दिखाई देते हैं। भारतीय कला इतिहास में लघुचित्र शैली भी महत्त्वपूर्ण है। इसके दो महत्त्वपूर्ण प्रकार भी हमने देखे। यह शैली आज भी अस्तित्व में है। आस्था हो तो नजदीकी कला–संग्रहालय में या आस–पास के गांवों में हम इन्हें खोज सकते हैं। क्या पता, ऐसी खोज में आज तक न मिला हुआ चित्र भी मिल जाए। राजा रवि वर्मा के बारे में हमने पढ़ा।

मोर्चा की ओर, माध्यम– कागज पर रेखांकन चित्रकार– सुधीर पटवर्धन

पर उनका केवल चित्र देखकर मन नहीं भरता। उनके प्रति और जानने के लिए किताबों और कला संग्रहालय का सहारा लेना पड़ेगा। वही बात 'बंगाल शैली' के बारे में भी है। अवनीन्द्रनाथ के कई और सुंदर चित्रों की बातें रह गई हैं। नंदलाल बोस, असित कुमार हलधर, क्षितेंद्रनाथ मजूमदार इनके चित्र यहां छाप नहीं सके। उनकी परंपरा को आगे चलाने वाले गणेश पाईन, के.जी. सुब्रह्मण्यम जैसे अनेक चित्रकार और उनके चित्रों के बारे में जानना आपको जरूर अच्छा लगता है। यह सब जानते हुए भी किताब की मर्यादा को ध्यान में रखना पड़ा। लेकिन यहां कुछ और कलाकारों के नाम बताना जरूरी है। पेस्तनजी बोमनजी, एम.एफपिठावाला, एम.वी. धुरंधर, एल.एस. तासकर, एन.एस. बेंद्रे, ए.केहेब्बर ये सब पहले की पीढ़ी के व्यक्ति–चित्रकार, निसर्गचित्रकार और रचनाकार हैं। इनकी चित्रकृतियां भी बड़ी अच्छी हैं। गायतोंडे, रजा, बरवे, नसरीन मोहम्मदी, भुपेन खक्कर, मनजीत बावा से लेकरसुधीर पटवर्धन तक के चित्र हमने देखे। समकालीन चित्रशैली के अलग–अलग चित्र बनाने वाले चित्रकार और उनकी चित्रकृतियां समझने के लिए इन चित्रकारों को यहां अंतर्भूत किया गया है। इनके अलावा समीर मोंडल, रोबीन मोंडल, अंजली इला मेनन, रीनी धुमाल अतुल दोडिया, टी.वी. संतोष, रियाज कोमू, नलिनी मलानी, अकबर पदमसी जैसे अनेक कलाकारों के चित्र आप देख सकते हैं। ये चित्र देखने के लिए आप किताबों का, अखबार का और सबसे महत्त्वपूर्ण कलादालान की मदद ले सकते हैं। चित्र कैसे देखें, उसका रसग्रहण कैसे करें, कैसे समझें, इसके बारे में हमने शुरू में पढ़ा है। फिर भी शुरू–शुरू में चित्र–प्रदर्शनी देखते वक्त शायद मुश्किल लगेगी। लेकिन चित्र से बातें तो करो, वह भी आपसे दोस्ती का हाथ बढ़ाएगा।

भारतीय तत्वज्ञान कहता है, कोई भी कला अलौकिक आनंद देती है। मतलब कोई भी चीज अगर आप खरीदते हैं या मिलती है तो वह वस्तु–विषय का आनंद है लौकिक आनंद। पर कलानिर्मिति देखने से, सुनने से या निर्माण करने से जो आनंद मिलता है वह अलौकिक आनंद है आत्मा का आनंद। यहां से आगे का सफर अब आपको तय करना है। बहुत चित्र देखने हैं, उन्हें समझने का आनंद भी लेना है। एक वाक्य याद आया, कहर कलाकार कोई खास इंसान नहीं होता, पर हर इंसान में एक खास कलाकार जरूर होता है। आपके अंदर का ऐसा ही कोई जाना–अनजाना कलाकार प्रेरित होकर चित्र बना सकता है। आगे के चित्र–सफर के लिए आपको हार्दिक शुभकामनाएं।

इकाई – 7

रिपोर्ट तैयार करना

स्थानीय वास्तुशिल्प,चित्रकलाए लोकगीत, नाटक प्राकृतिक सौन्दर्य से परिचय

1. शीर्षक
2. विषय सामग्रियों की सूची
3 .सारांश
4. प्रस्तावना
5. मुख्यपाठ
6. निष्कर्ष
6. अनुशंसाएं
8. परिशिष्ट

शीर्षक–

शीर्षक रिपोर्ट के सभी विषयों को दर्शाने वाला हो। यह एक वक्तव्य या प्रश्न के रूप में हो सकता है। लेकिन इसे संक्षिप्त रखें। लेकिन प्रस्तुति की तारीख ,किस उद्देश्य से रिपोर्ट तैयार किया गया है लिखें।

विषय सामग्रियों की सूची

यदि रिपोर्ट 10 पृष्ठों से ज्यादा है तो विषय सामग्रियों की सूची बनाएँ, यह नया पृष्ठ हों। इस सूची में प्रत्येक अनुभाग के पृष्ठों की संख्या का उल्लेख हो। पृष्ठांकन की शुरूवात परिचय से करें। परिचय से पहले सभी पृष्ठों के क्रमांक रोमन अंकों में देवें।

सारांश

इसे अनुभाग के सबसे अंत में लिखें, जब सारे अध्याय का लेखन कार्य समाप्त हो जाए। इसका लेखन इस प्रकार हो कि इस अध्याय को अलग से पढ़कर सम्पूर्ण रिपोर्ट के विषय में जानकारी हो जाए।

प्रस्तावना

प्रस्तावना के माध्यम से पाठकों के लिए परिदृश्य निर्मित किया जावेगा। यह रिपोर्ट क्यों लिखा गया है तथा इसकी पृष्ठभूमि क्या है इसका भी विवरण होना चाहिए। इस अध्याय में यह भी शामिल हो कि परिणाम तक पहुँचने के लिए कौन सी विधि का उपयोग किया जावेगा।

मुख्य पाठ

इस भाग में परिणामों की विवेचना होगी । इस हेतु शीर्षकों का उपयोग किया जाना चाहिए। प्रत्येक

खण्ड एक पृथक विचार को प्रतिपादित करे। इस भाग में ग्राफ,चित्र इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है।

———————————————————————————————————————

निष्कर्ष

इस भाग में रिपोर्ट के मुख्य बिन्दुओं को सम्मिलित करें ध्यान रहे कि इस भाग में कोई नई सामग्री प्रस्तुत न की जावे। यहॉ आप प्रमाणों के आधार पर अपना अभिमत प्रस्तुत कर सकते है?

———————————————————————————————————————

अनुशंसाएं

अनशंसाएं रिपोर्ट के निष्कर्षो एवं भविष्य के कार्यो के आधार पर की जानी चाहिए। इस भाग में यदि आवश्यकता हो तो विभिन्न उप खण्डों में अनुशंसाएं की जा सकती हैं।

———————————————————————————————————————

परिशिष्ट

इस भाग में सांख्यिकीय आंकड़ों ,गणना,प्रश्नावली उपयोग में लाई गई तकनीकी शब्दावली इत्यादि लिए जा सकते है।

———————————————————————————————————————